श्रीमते रामानन्दाय नमः

'विजय' ग्रन्थमाला की पहली मणि

वेदों में रामकथा
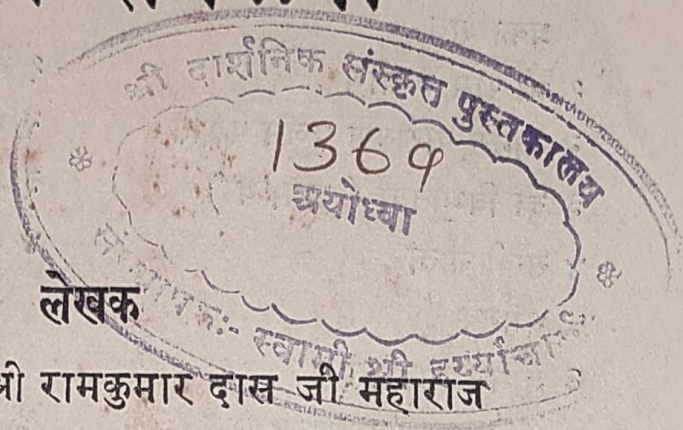
लेखक

मानस तत्वान्वेषी पं० श्री रामकुमार दास जी महाराज

'रामायणी, वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न'

संस्थापक 'श्री रामग्रंथागार' वरविश्राम बाग

मणिपर्वत श्री अयोध्या जी

प्रकाशक

सेठ श्री ब्रजमोहन दास जी 'विजय'

शुजाल पुर (मध्यभारत)

[सजिल्द निवछावरि ४)

लेखक की अब तक की कृतियाँ

प्रकाशित

१ श्री राम मन्त्रार्थ
२ मानस पारायण पूजन पद्धति
३ दो विभूतियाँ (अप्राप्य)
४ सखी गीता
५ धर्मरथ
६ मानस सिद्धान्त
७ श्री जानकी चरणचामर की सरला टीका
८ रजः प्रच्छालिनी (श्री जानकी चरणचामर का पद्यानुवाद)
९ मङ्गल पचीसी (पद्य)
१० संबाद बतीसी (रम्भा शुक संबाद का सरस पद्यानुवाद)
११ वेदों में राम कथा

अप्रकाशित

१ वेदों में कृष्ण कथा
२ मानस रत्न मंजूषा
३ मानस मनन
४ मानस समाधान रत्नावली (रा. च. मा. की दो सौ शङ्काओं का आलोचनात्मक शास्त्रीय समाधान)
५ सरल हवन पद्धति
६ भक्तमाल भूमिका भाष्य
७ भक्त भास्कर (३०० छप्पयों में)
८ मानस मुक्तावली
९ मानस की वैदिकता
१० तुलसी-मानस माल (सङ्कलित)
११ स्तोत्र मञ्जरी (संस्कृत)
१२ पद्य प्रलाप
१३ ब्रह्मा की झोली या विश्ववैचित्र्य
१४ श्री सीता गुण-गान

क्षमा याचना

बहुत सावधानी करने पर भी दोष कोश मानव स्वभाव वश दृष्टि दोष से प्रूफ देखने में चार छ अशुद्धियाँ आ ही गई हैं। उन एकाध अक्षरों की अशुद्धियाँ मूल और टीका मिलाकर पढ़ने से ठीक हो जाती हैं अतः विज्ञ पाठक उन्हें पढ़कर सुधार लेंगे। मन्त्रों के क्रम संख्या की गड़बड़ी से कोई विशेष हानि नहीं।

युक्तं यस्य वचो हरि-ध्वनि निभं यावन्न कर्णौ गतम्,
तावन् 'मानस'-विघ्नकारि-करिणो गर्जन्ति गर्वाकुलाः।
सोऽयं रामचरित्रमानसमहातत्वानुसंधायकः,
श्रीमान् 'रामकुमार' पण्डित वरः सम्बर्द्धयते सूक्तिभिः ॥ १ ॥
द्वाभ्यां संभूय गीतं रघुपतिचरितं रामयज्ञप्रसंगे,
द्वाभ्यामश्वोपनीतो रघुपतिपृतना निर्जिता द्रागुभाभ्याम्।

ले
ख
क

ले
ख
क
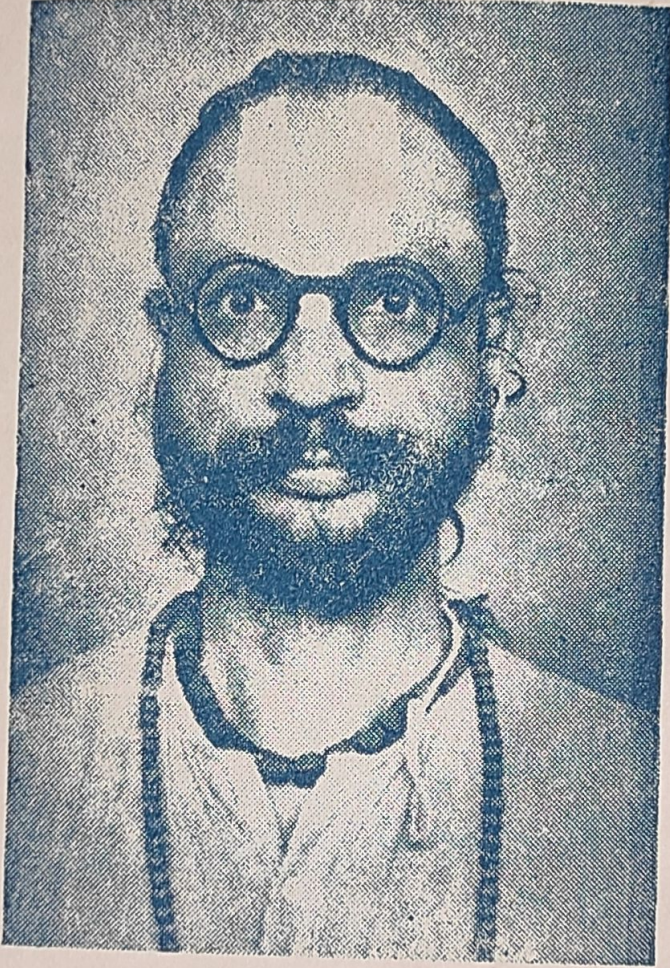
इंहो किन्त्वेक एव श्रुतिशत-सहितां रामगाथां गृणाति,
संदेहान् चोरयित्वा जयति गुणिगणान् राम पूर्वः कुमारः ॥ २ ॥
संशय-'तारक' नाशनशीलो, विबुध कदम्ब-विनोद सलीलः।
रामचरित मानस-सुविचारो जयतु सदा कवि रामकुमारः ॥ ३ ॥
(ये तीनों श्लोक-शास्त्रार्थ महारथी पण्डित श्री माधवाचार्य
शास्त्री (देहली) रचित हैं।)

श्रीमते रामानन्दाय नमः

भूमिका

भारत की सनातन प्रजा का धार्मिक विधान वेदों के आधार पर बना हुआ है। ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा कर्मकाण्ड इन तीन विभागों में वेद बाँटा गया है। ऋक्, यजु साम और अथर्व आदि चार नामों से वेदों को विश्व ने सुना है। वेद मानव जाति के प्रकाश का भण्डार है। प्राचीन महर्षियों ने उनके गूढतत्त्वों का अध्ययन किया और उस अध्ययन को उपनिषदों दर्शनों तथा पुराणों के रूप में मानवों को समझाया। युगों के अनुसार हजारों लाखों सद्ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं पर सभी में वेदों का प्रकाश घूमता हुआ उतरा। गुरुओं ने इसे अमृतत्त्व कहा और सुरक्षित रखकर पीढ़ियों को दिया।

वेदों की प्राचीनता सम्पूर्ण विश्व को मान्य हुई परन्तु उनकी रचना के सम्बन्ध में लोक एक मत नहीं हुआ। पाश्चात्य लोग वेदों की उत्पत्ति उस प्रकार नहीं मानते जिस प्रकार भारतीय विद्वान मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि वेद मनुष्यों के लिखे हुए हैं और ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पहले की रचना है। भारत के विद्वानों का मत इन विचारों के सर्वथा विरुद्ध है। उनका कहना है कि वेद अपौरुषेय हैं और बहुत-बहुत प्राचीन हैं। उनका यह भी विश्वास है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और पहले यह देवताओं को मिला है। इस विषय का प्राचीन ऋषियों ने कुछ संकेत भी किया है।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं,
योवै वेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं,
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।

(श्वेताश्वतरोपनिषद्)

सृष्टि के आरम्भ में जिसने पितामह ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उसी के लिये जिसने वेदों का उपदेश दिया। अपनी बुद्धि को प्रकाशित करने वाले

उस देव की मैं मुमुक्षु शरण लेता हूँ। यहाँ वेदों को उस परमपिता परमात्मा ने सृष्टि में उत्पन्न हुए सर्व प्रथम सृष्टि कर्ता ब्रह्मा को पढ़ाया। इस प्राचीन विश्वास पर सनातन धर्म के विद्वान् वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से प्रमाणों से पाश्चात्य विद्वानों के, ईसा से दो हजार वर्ष पहले वेदों की रचना हुई है, इन प्रचारों का खण्डन हो जाता है इस कारण वेदों का अत्यन्त प्राचीन होना सिद्ध होता है।

वेदों ने ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया है। वेदों की सारी ऋचाएँ ईश्वर महिमा का गान करती हैं इसलिये वेदों को ईश्वरीय ज्ञान से ओत-प्रोत कहा है। ईश्वर सम्बन्धी जितने भी मन्त्र हैं सभी वेदों में आये हैं और वे सब वैदिक कहलाते हैं। उपासना काण्ड को मानकर जितने भी भारत में सम्प्रदाय चले हैं सबके मन्त्र वेदों में मिलते हैं। वेदों के अन्दर भी सबसे प्राचीन ऋग्वेद है इसलिये ऋग्वेद में जिन उपासनाओं के मन्त्र हैं उन्हें बहुत ही महत्व दिया गया है ऐसा वैदिकों का मत है।

अवतारों का भी विवरण वेदों में अच्छी प्रकार से हुआ है। यद्यपि वेद अवतारों से पूर्व में ही सृजन हो चुके थे परन्तु उनमें परात्पर परमात्मा के भावि चरित्रों का भी वर्णन अवतारों के साथ पवित्र मानकर किया गया है। इनमें वेदों की प्राचीनता नष्ट नहीं होती क्योंकि ब्रह्म के सगुण, निर्गुण तथा अवतार के कार्यों का चित्रण ही वेद कहलाता है वही वहाँ हुआ है।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे,
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना।
तस्माद्रामायणं देवि वेद एव न संशयः।

(इत्यगस्त्य संहितावचन)

वेदों से वेद्य परब्रह्म जब दशरथनन्दन के रूप में अवतरित हुए तब वेदों ने भी प्राचेतस् भगवान् वाल्मीकि जी के मुख से स्वयं रामायण रूप में अवतार लिया, अतः भगवान् शिव भगवती पार्वती जी से कहते हैं, देवि! श्री रामायण स्वयं ही वेद है इसमें संशय नहीं है। इन पवित्र वचनों के आधार पर वेदों में निरूपित अवतारों के चरित्र या उनके वर्णन विशेषतः समुचित कहे जा

सकते हैं। प्राचीन काल से ऐसी ख्याति सुनी जाती है कि महर्षि वाल्मीकिजी ने वेद माता गायत्री के एक-एक अक्षर पर एक-एक हजार श्लोक लिखे और इसी प्रकार के पूरे मंत्र के चौबीस अक्षरों पर श्री रामायण रूप में सम्पूर्ण राम का चरित्र लगभग चौबीस हजार श्लोकों में लिखा। श्री वेदमाता गायत्री परात्पर ब्रह्म का स्मरण कराती है और उसी की ओर जीवों को आकृष्ट करती है। श्री रामायण भी परात्पर राम के अवतार का स्मरण कराती है और उन्हीं की ओर जीवों को खींचती है। श्री रामायण और ब्रह्म गायत्री एक हैं और दोनों वेद हैं यही भगवान् वाल्मीकि रचित रामायण के आरम्भ में प्रतिज्ञा हुई है।

प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः,
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्र पदमात्मवान्।
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।

(श्रीमद्वाल्मीकीये रामायणे चतुर्थ सर्गः)

भगवान् वाल्मीकि ऋषि ने रामावतार का वर्णन विचित्रपदों में और विलक्षण अर्थपूर्ण वाक्यों में किया है। सम्पूर्ण रामचरित्र को महाकाव्य श्री रामायण के रूप में उस महान् ऋषि ने पाँच सौ सर्ग में लिखा है इस प्राचीन प्रसिद्धि ने रामायण को वेद कहा है और इसी पर सारा ऋषि मण्डल रामायण की ओर उसे वेद मानकर झुका है।

वेदों ने अनेक अवतारों को कहा है परन्तु उनमें से रामावतार को लोक ने विशेष रूप से सुना है, इसलिये कि यह अवतार मर्यादा पूर्ण अवतार हुआ है। धर्म और सत्य के पवित्र आदर्श को मानव जाति के सामने स्थापित करने वाला यह अवतार परात्पर ब्रह्म का अवतार कहा गया है। ब्रह्मविद्या के महान् गुरु भगवान् वाल्मीकि, भगवान् अगस्त तथा भगवान् वशिष्ठादि ऋषियों ने रामावतार को विश्वकल्याण के लिए बताया है। उन्होंने राम के तेज, बल, वीर्य और पराक्रम को देखकर राम से अधिक क्या कोई इतना भी नहीं है यह निश्चय किया है। इन महान् ऋषियों का झुकाव राम के उदार और पवित्र चरित्रों के वर्णन में हुआ और इसी हेतु हजारों, लाखों और करोड़ों राम-

यणों की रचनाएँ भूलोक में हुईं। राम की उपासना जो अवतार के पहले लोक में प्रचलित थी और जिसका उद्गम सगुणब्रह्म की धारा से था, निर्गुण ब्रह्म के विचार भी जिसमें निहित थे—रामावतार के बाद प्रौढ़ हो गई। ज्ञान काण्ड और कर्मकाण्ड दोनों ही उसमें सहज रूप से मिल गये। वेदों के तत्वों को यथार्थ रूप से जानने वाले ऋषियों ने परात्पर राम की उपासना में रामावतार के रूप को स्थापित कर दिया। लोक ने परात्पर राम में और मर्यादा-वतार के राम में कोई अन्तर नहीं देखा। इस प्रकार रामोपासना की धारा लोक में युगान्तरों से बही और अब तक बह रही है। आज के संसार ने उसे श्री सम्प्रदाय के नाम से पहचाना है अथवा तो उसमें आचार्यपाद रामानन्द के परम्परया आचार्य रूप में प्रादुर्भाव होने से उसकी महती प्रतिष्ठा बढ़ी है और अब उसका नाम श्री रामानन्द सम्प्रदाय भी हुआ है।

प्राचीन काल में प्रजा को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि वैदिक ऋचाओं से जिस परंतत्त्व का ज्ञान होता है अवतार में आये हुए राम वही हैं। संहिता काल के ऋषियों ने वैदिक ब्रह्मतत्त्व को राम में देखा और सीधा निर्णय दिया 'राम एव परब्रह्म' राम परमात्मा परब्रह्म हैं उनकी उपासना करो। परमात्मा अवतार में आया और वेद भी नये रूप में मनुष्यों के सामने आये। भगवती आत्रेयी ने भगवान् वाल्मीकि के आश्रम से भगवान् अगस्त के आश्रम को जाते समय मार्ग में वन देवता को दण्डकारण्य में बताया कि वह भगवान् अगस्त के आश्रम में ब्रह्मविद्या के अध्ययन को जाती है, भगवान् वाल्मीकि के यहाँ उसे अध्ययन करने में विघ्न था। एक तो दो बालक लव और कुश जिन्हें महर्षि ब्रह्मविद्या का अध्ययन कराते हैं बड़े ही मेधावी हैं—उनके साथ वह अध्ययन नहीं कर सकती। दूसरे महर्षि स्वयं स्वरचित चतुर्विंशति साहस्त्रिका संहिता के प्रचार में हैं स्वतन्त्र दूसरे छात्रों को समय नहीं दे सकते।

"अथ स भगवान् प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मजस्तादृशं विबर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय" (उत्तर रामचरितम्)

अथ—पितामह ब्रह्मा की आज्ञा से भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सबसे पहले शब्द ब्रह्म का उतना सुन्दर रूपान्तर रामायण नाम के इतिहास में

किया है। इस कथन से प्राचीन युगों में रामचरित्र को वेद मान लिया गया। ब्रह्मविद्या के गुरुओं का झुकाव जब रामचरित्र की ओर हुआ तो साधारण प्रजा का झुकाव तो होना ही हुआ। युगों के परिवर्तनों से जब प्रजा में अविद्या के प्रभाव से अन्धकार का प्रसार हुआ और प्रजा को यह समझने की आवश्यकता हुई कि राम का अवतार परात्पर अवतार है तब वेदों में राम को या रामकथा को खोजने का समय आया। बड़ी-बड़ी विभूतियाँ उस समय आईं। और उन्होंने वेदों में घुसकर राम को और रामकथा को खोजा और संसार को बताया कि वेदों में रामचरित्र है और रामचरित्र में वेद है।

भारत के इतिहास में पिछिले युगों में ऐसे भी काल आये हैं जिनमें वेदों पर ही भयानक आपत्ति आई है। उन्हें नष्ट करने के अनेक उपाय किये गये हैं देश के प्रतापी ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके सुरक्षित रखा है परन्तु फिर भी वेदों के बहुत से अंश नष्ट हो गये हैं। ऋग्वेद संहिता के हजारों सूक्त लोप हैं यह ऋग्बेद के गुरुओं की सेवा में संहिता को नियम पूर्वक अध्ययन करते समय मैंने सुना है। म्लेच्छों का शासन भारत के अन्दर उससे भी अधिक भयानक आया, उसमें हिन्दू राष्ट्र की तलवार टूट गई और देश परतन्त्रता की शृङ्खलाओं में जकड़ गया। उस समय जो रोमाञ्चकारी संकट प्रजा ने सहा उसे लिखने में हृदय काँपता है। हिन्दुओं के विपुल धन, विपुल जन, विपुल साहित्य तथा विपुल सम्मान धूल में मिल गये। किसी प्रकार हिन्दू जाति जीवित रह गई यह भगवान की बड़ी कृपा हुई। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के आरम्भ से देश का भाग्य बदला और कुछ समय अच्छा आया। उसी समय हिन्दू धर्म के प्रतापी आचार्य रामानन्द का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने प्रजा में जीवन लौटाया। वे निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ थे। उनकी प्रतिभा से अत्याचारी सम्राट् काँप गये और अपने अत्याचार बन्द कर दिये। रामानन्द को इतिहास ने युगप्रवर्तक महापुरुष माना है इसलिये कि उन्होंने धर्म की मर्यादा को देश में सुरक्षित किया है। आचार्य रामानन्द के साथ उनके हजारों तेजस्वी शिष्य प्रशिष्य भी उत्पन्न हुए, उन्होंने देश भर में फैल कर प्रजा में सुख शान्ति की स्थापना की। रामोपासना का पुनः प्रचार हुआ

उसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम का पवित्र आदर्श था। लोक ने राम को दीन बन्धु और पतितपावन के रूप में देखा इसी से उनकी उपासना की ओर वह झुका। कुछ पीढ़ियों के बाद रामनन्द की परम्परा में गोस्वामी श्री तुलसीदास जी का पदार्पण हुआ। उन्होंने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना करके उसे विश्व को समर्पण किया। इस अनुपम ग्रन्थरत्न से भारतीय संस्कृति सुरक्षित हुई और प्रजा में सुख तथा शान्ति फैली। हिन्दी भाषा में रामायण पुनः वेदों के रूप से आई। इसका प्रभाव भी भारत में वैसा ही पड़ा जिस प्रकार पिछिले युगों में श्रीमद्वावाल्मीकीय रामायण का पड़ा था। इन पवित्र ग्रन्थों से जो उपकार हुआ है उसे संसार ही जानता है। यह विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का कार्य है।

गोस्वामी जी के कुछ ही पीछे हम फिर वैदिक क्रान्ति का समय देखते हैं। वेदों में राम कहाँ हैं ऐसे विमत वादियों के प्रश्न सुनते हैं? इस विवाद के समाधान करने को उस समय श्री आचार्य नीलकण्ठ का दर्शन होता है। विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्भवतः इन प्रतिभाशाली विद्वान का जन्म होता है। चतुर्धरवंशीय पं० गोविन्द सूरि के ये पुत्र थे और दक्षिण गोदावरी तट पर किसी कोपर नामक ग्राम में निवास करते थे। आचार्य नील कण्ठ ने 'मन्त्र रामायण' नाम के वैदिक ग्रन्थ की रचना की और उसमें संपूर्ण रामकथा को वेदों की ऋचाओं से सिद्ध किया। मन्त्रण रामायण में प्रायः ऋग्वेद संहिता के मन्त्र हैं तथा कुछ अन्यत्र से भी लिये गये हैं। उन मन्त्रों पर विस्तृत संस्कृत भाष्य है जिसे पढ़कर नीलकण्ठ के प्रखर पाण्डित्य का प्रदर्शन होता है। उपासना काण्ड का मुख्य मन्त्र जो षडक्षर मंत्रराज कहलाता है उसी ग्रन्थ के अन्दर ऋग्वेद के मन्त्र भाग से लेकर सिद्ध किया है। रामोपासकों को यह ग्रन्थ बड़े उपकार का स्वीकार हुआ है। भाग्य से यह ग्रन्थ आज उपलब्ध भी होता है परन्तु उसका प्रचार कम है। आचार्य नील कण्ठ ने और भी अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनमें से बहुत से उपलब्ध भी होते हैं। इस प्रकार हम पिछले युगों के क्रमशः इतिहास को पढ़ते हैं और यह स्वीकार करते हैं कि पिछले विद्वानों ने हमें बहुत कुछ सामग्रियाँ

दीं हैं जिनका हम उपयोग नहीं कर पाते हैं और उनकी खोज भी नहीं कर पाते हैं।

आज हमारे सामने वेदों का प्रश्न पुनः पुनः उपस्थित है। बहुत से बुद्धिवादी आडम्बरी जनता में यह प्रचार करते हैं कि वेदों में राम नहीं हैं। यद्यपि ऐसे कथन पर प्रजा कम विश्वास करती है फिर भी कुछ लोगों को भ्रम हो ही जाता है। ऐसी अवस्था में इस समय ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता है जिसमें वेदों का तात्पर्य सरल हिन्दी में समझाया गया हो और जनता जिसे पढ़ कर अपना भ्रम हटा सके। इस कमी को पूरा करने की इच्छा से श्री अयोध्या निवासी पं० श्री रामकुमारदास जी रामायणी ने 'वेदों में रामकथा' नामक ग्रन्थ को लिखा है। आपने बड़े परिश्रम से वेद मन्त्रों का सब प्रमाण खोज करके उनपर सुबोधिनी हिन्दी टीका की है। यह ग्रन्थ राम भक्तों के लिये बड़ा ही उपयोगी होगा। इससे देश और राष्ट्र का भी अधिक हित होगा ऐसा मेरा अनुमान है।

डा० आर, एस, डो० योगिराज गोवत्स

२८-१०-५७ हरिद्वार
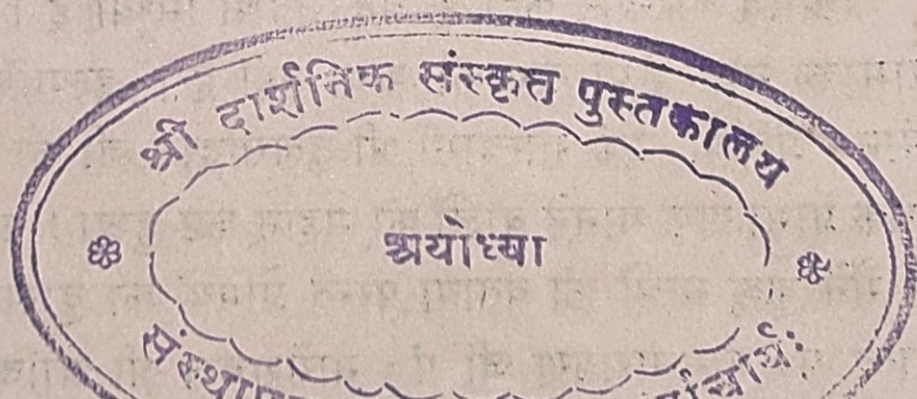
❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

प्राक्कथन

या बेदेषु कथिता त्रिपथगा लोक पावनी।
सा श्रीराम कथा दिव्या किञ्चदत्र विराजती॥
सूरिणा नीलकण्ठेन मन्त्ररामायणाभिधम्।
कृता संगूढ़ यद्भाष्यं तत्संक्षिप्तं कृता मया॥

सेमरावाँ (बाराबंकी) के कुछ मानस प्रेमियों ने १५ जनवरी सन् १९४५ ई० को एक तीन दिन का श्री रामायण सम्मेलन तथा तीन दिन का ही अखण्ड श्री हरि नाम सङ्कीर्तन किया था। सम्मेलन के अन्तिम दिन में अकबरपुर (जौनपुर) के प्रसिद्ध व्याख्यानदाता पं० श्री शंकरानन्द "प्रतिवाद भयंकर" ने अपने प्रवचन में कहा कि गोस्वामी तुलसीदास ने जो,

"वेद विहित तेहि दशरथ नाऊँ"
"नेति नेति जेहि वेद निरूपा"

वरणहु रघुपति विशद यश श्रुति सिद्धांत निचोरि,
जेहि इमि गावहिं वेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगतहित कोशल पति भगवान॥

आदि बार-बार कहा है वह सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि वेदों में कहीं भी राम का नाम तथा राम की कथा नहीं है। इत्यादि सुनकर उपस्थित सभी मानस प्रेमियों एवं गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की हर एक बात को वेदाधिक प्रामाणिक मानने वालों को महान् कष्ट हुआ। यद्यपि कि अन्तिम प्रवचन में मैंने कुछ मन्त्रों को बताया परन्तु प्रेमियों का दुःख न गया। सभा के उपरान्त पं० रामनारायण जी पं० नागेशदत्त जी आदि कई मानस प्रेमियों ने वेदों से श्री रामचरित्र सङ्कलन करके हिन्दी भाषा में टीका करने के लिए मुझे बारम्बार प्रेरित किया। मैंने मन्त्र रामायण का नाम पता बतला दिया तो भी उन भावुक रामायणियों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्हीं प्रेमियों की शुभ

प्रेरणा से मैंने मन्त्र रामायण का साधारण सा हिन्दी अनुवाद कर लिया। उसके दो वर्ष बाद "अखिल भारतीय रामायण सम्मेलन" के कलकत्ता वाले अधिवेशन में उन्हीं पं० शंकरानन्द जी ने प्रज्ञाचक्षु पं० बच्चू लाल जी 'सूर' से पूछा कि वेद में राम का नाम कहाँ है ? सूर जी ने कहा कि—जिन शाखाओं में राम का नाम है वे आज उपलब्ध नहीं हैं। इसका असली कारण यह है कि बच्चू सूर जी की "कर्णपिशाची" का प्रवेश वेदों में नहीं है। इससे वह कर्णपिशाची उन्हें वेद का मन्त्र तो बतला नहीं सकती थी। अतः सूर जी ने सोचा कि बड़ा भारी वेदज्ञ कहाने वाला इतना प्रसिद्ध व्याख्यान-दाता जब मुझ अन्धे से पूछ रहा है तो निश्चय ही प्राप्य शाखाओं में राम-नाम न होगा, इसलिए वाक् चातुरीमय उत्तर दिया था। उस सम्मेलन में आहूत होने पर भी गलाबाज न होने के कारण माँगने पर भी उस समय मुझे समय नहीं दिया गया कि मैं वेद का उद्धरण बतलाऊँ, दिखलाऊँ। परन्तु तभी से मैंने मन्त्र रामायण की हिन्दी टीका के ठीक करने में लग गया और शीघ्र ही टीका का प्रस्तुत रूप तैयार हो गया।

आज से चार सौ वर्ष पूर्व महाविद्वान एवं परम भगवद् भक्त श्री नील कण्ठ जी ने इस भारत भूमि को अलंकृत किया था। (कई लोगों का मत है कि सुप्रसिद्ध पं० श्री नीलकण्ठ दीक्षित ही मन्त्र रामायणादि के कर्ता हैं) महामहोपाध्याय पं० श्री कालीप्रसाद जी शास्त्री ने "विद्वद्वृत्तम्" के द्वितीय भाग में लिखा है कि "नीलकण्ठ सूरिः अयमीसोः षोडश्यां शताब्द्यां गोविन्द सूरेः सकासात् चतुर्धर वंशे गोदावर्याः पश्चिम तटवर्तिनि महाराष्ट्रस्य कूर्परे ग्रामे बभूव। अयं महाभारतस्य "भारत भावदीपिका" नाम्न्याष्टीकायास्कर्ता।"

इन्होंने वेदों से श्रीकृष्ण कथा सम्बन्धी एक सौ दस मन्त्रों का सङ्कलन "मन्त्र भागवत" नाम से और श्री राम-कथा सम्बन्धी डेढ़ सौ मन्त्रों का सङ्क-लन "मन्त्र रामायण" नाम से करके उन पर संस्कृत में सुन्दर भाष्य किया है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में अपने लिए "श्री मत्पदवाक्य प्रमाण मर्यादा धुर-न्धर चतुर्धर वंशावतंश गोविन्द सूरि सूनुः नीलकण्ठः" लिखा है। प्राचीन शैली के अनुसार किसी मन्त्र का पता नहीं दिया है। मैंने संहिताओं (मन्त्र

भाग वेदों) से ढूँढ़-ढूँढ़कर सभी मन्त्रों का पता प्रत्येक मन्त्रों के साथ दे दिया है। किसी-किसी एक ही मन्त्र के कई संहिताओं में एकाधिक शब्दों के अनेक पाठ फेर हैं। जैसे "वेदों में राम कथा" के १५४ मन्त्र में ऋग्वेद में "पंथा ये भिः" पाठ है पर अथर्व वेद में "पंथानो ये भिः" पाठ है। १५६ मन्त्र के चतुर्थ चरण का पाठ ऋग्वेद में "अरिष्टां त्वां सह पत्यादधामि" पाठ है, परन्तु अथर्व वेद में "स्योनंते अस्तुसह सम्भलायै" पाठ है। १५८ मन्त्र में जहाँ ऋग्वेद में "उत्तिष्ठत्" पाठ है वहीं अथर्व वेद में "वीरयध्वम्" पाठ है, इसी मन्त्र के तृतीय चरण का पाठ ऋग्वेद में "अत्राजहाम ये असन्न शेवाः" पाठ है वहीं शुक्ल यजुर्वेद में "अत्रा जहीमोऽशिवा ये असत" पाठ है। इसी तरह अनेक मन्त्रों में है। ऐसी स्थित में विद्वद्वरिष्ठ पं० श्री नीलकण्ठ जी ने जिस पाठ को रख कर अर्थ किया है मैंने उसी पाठ को रखा है, और जो मंत्र उनके सङ्कलित मन्त्र रामायण के नहीं हैं मेरे अन्वेषित हैं। उनका वही पाठ है जो मुझे प्रथम मिला एवं प्रसङ्गानुकूल है, पता मैंने सबका दिया है अर्थ करने में श्री नीलकण्ठ जी के भाष्य को ही अपना पथप्रदर्शक माना है। मंत्र रामायण के मन्त्रों को मैंने कहीं-कहीं आगे पीछे भी कर दिया है परन्तु अर्थ उनके भाष्य के अनुसार ही हैं। मन्त्र रामायण की मन्त्र संख्या मन्त्रों के आदि में दे दिया है जिससे स्पष्ट हो जाय कि कौन-कौन मन्त्र इस संग्रह में मन्त्र-रामायण के हैं और कौन-कौन नहीं हैं।

इस ग्रन्थ में १५५ मन्त्र रामायण के हैं, तथा २४ वाँ और अन्त के अयोध्या वर्णन वाले ६ मन्त्र परम पूज्य वेदोपनिषद्भाष्यकार पंडितराज स्वामी श्री भागवदाचार्य जी महाराज की टीका सहित स्वामी जी से आज्ञा लेकर ही इसमें दिया गया है। शेष मेरे अपने अन्वेषित हैं। मन्त्रों का पाठ स्वामी दयानन्द सरस्वती के ऋग्वेद, यजुर्वेद भाष्य (अजमेर से प्रकाशित) तथा प्रसिद्ध आर्यसमाजी पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी के संशोधित एवं प्रकाशित वेदों से हैं।

"वेदों में रामकथा" में संग्रहीत वेद मन्त्रों के इस अर्थ के सम्बन्ध में कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं कि इन मन्त्रों का जो अर्थ पं० श्री नीलकण्ठ

जी ने अथवा इस ग्रन्थ के लेखक ने किया है, उस अर्थ को क्या अन्य वेद व्याख्याताओं ने भी किया है। और यदि नहीं किया है तो यह अर्थ माननीय कैसे हो सकता है। इस पर उन्हें समझ रखना चाहिए कि वेद मन्त्र कल्पवृक्ष वत् अनेक अर्थ देने वाले हैं। यहाँ मैं एकाध मन्त्र उदाहरण में रखता हूँ, जिनका अर्थ कई तरह से किया गया है और सब एक दूसरे के विरुद्ध हैं। परन्तु उनमें किसी अर्थ को मिथ्या कहने का साहस कोई भी नहीं कर सकता। जैसे ऋग्वेद १।१६४।८६ अस्यवामीय सूक्त पर "देवता यज्ञ और आत्मा" को लेकर तीन प्रकार की व्याख्यायें हैं और उनके सम्बन्ध में निरुक्ति का मत है कि,

अयं मंत्रार्थ चिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढोऽपि श्रुतितोऽपि तर्कतः ॥

(निरुक्तपरिशिष्ट १।१२।१२

मन्त्र का यह अर्थ विचार परम्परागत अर्थ के और तर्क से निरूपित किया गया है कर्मकाण्डियों में निम्नलिखित मन्त्र बहुत प्रचलित है।

चत्वारिश्रृंगा त्रयो अस्यपादा द्वेशीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधावद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आ विवेश ॥

(शु० यजु० १७।६१ ऋ० ४।५८।३ तै० आ० १०।१०।२ नि० १३।७)

इसका अक्षरार्थ है कि "अस्य (इसके) चत्वारि श्रृङ्गाः (चार सींग हैं) त्रयः पादाः (तीन पाँव हैं) द्वेशीर्षे (दो शिर हैं) अस्य (इसके) सप्त हस्तासः (सात हाथ हैं यह) महादेवः वृषभः (महादेव बलवान बैल) त्रिधावद्धः (तीन तरह से बँधा हुवा) रोरवीति (जोर से रोता-चिल्ला रहा है। यह) मर्त्यां (मरण धर्मवालों में) आविवेश (प्रवेश किया)।

इस मन्त्र में वर्णित यह महादेव वृषभ कौन है। इस पर कई मत हैं महर्षि पतञ्जलि ने पाणिनीय सूत्र (१।१।१) पर भाष्य लिखते समय बतलाया कि यह महादेव शब्द है। नाम, आख्यात, उपसर्ग तथा निपात ए चार प्रकार के शब्द ही चार सींग हैं। भूत भविष्य और वर्तमान ए तीन काल तीन पैर हैं। नित्य और कार्य ए दो प्रकार की भाषायें दो शिर हैं। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, और अधिकरण ए सात कारक या विभक्तियाँ

सात हाथ हैं। और मुख कण्ठ और हृदय इन तीन अङ्गों से शब्द उच्चरित होता है, यही उसका तीन तरह से बँधा होना है ॥ १ ॥

निरुक्त परिशिष्ट १३–७ के मतानुसार चार वेद अथवा होता, उद्गाता अध्वर्यु और ब्रह्मा चार सींग है, सोमरस निकालनेवाले प्रातः सवन मध्यं सवन और सायं सवन तीनों समय अथवा ऋग्यजुस्साम ही तीन पैर हैं, हविर्धान और प्रवर्ग्य अथवा दो हवन दो शिर हैं, सात वैदिक छन्द अथवा ऋत्विक सात हाथ हैं। वह यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीनों से नियमित किया गया है, यही उसका तीन तरह से बँधा रहना हैं ॥ २ ॥

वर्तमान काल के प्रसिद्ध आर्य समाजी वैदिक विद्वान सातवलेकर जी ने इस मन्त्र का महादेव वृषभ हृदय को सिद्ध किया है। क्योंकि इस मन्त्र के ऋषि वामदेव हैं और शरीर उदर के वाम भाग में रहनेवाला देव हृदय ही हैं। उन्होंने हृदय का प्रतिपलक (चित्र) भी दिया है। देखिए वैदिक धर्म वर्ष ३३ अङ्क ६ वेद में शरीर-विज्ञान शीर्षक लेख ॥ ३ ॥

श्री हरिश्चन्द्र मैगनीज जिल्द १ संख्या ६ मार्च १५ सन् १८७४ ई० में 'श्रुति रहस्य' शीर्षक से छ अर्थ और भी प्रकाशित हैं जो निम्नलिखित हैं—

श्री रामानुज का अर्थ यह श्रुति ईश्वर के वर्णन में है, चारों वेद चार सींग हैं, नित्य बद्ध और मुक्त तीनों प्रकार के जीव तीन पाद हैं, शुद्ध सत्व और गुणात्मक सत्व इसके दो सिर हैं अर्थात् शिरःस्थान में हैं, महत्तत्वादि, सात प्रकृति और विकृति इसके सात हाथ हैं, ऐसा महादेव श्रेष्ठ वृषभ वासुदेव अपने संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन तीन रूपों से मनुष्यों में बँधता नाम प्रगट होता हुआ सब वस्तुओं को रोरवीति अर्थात् नाम रूपवत् करता है और मर्त्यनाम चेतनाऽचेनन पदार्थों का अन्तरात्मा होकर प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

श्री विद्यारण्य का अर्थ यह श्रुति प्रणव परक है, अकार, उकार, मकार और नाद ये इसके चार सींग हैं; अध्यात्म विश्व और तैजस ये तीन पाद हैं, चित् और अचित् ये दो शक्तियाँ शिर स्थान में हैं; भूरादि सात लोक सात हाथ हैं, विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृत इन तीन प्रकारों से बँधा हुआ वृषभ प्रणव ब्रह्म तेजोगमत्व का प्रतिपादन करता है ॥ ५ ॥

श्रीवल्लभाचार्यजी के मतानुयायी का अर्थ यह श्रुति पुष्टि लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम का ही प्रतिपादन करती है, उन श्री पुरुषोत्तम के चार नित्य सिद्धादि यूथ शृंग अर्थात् उत्तम स्थान में हैं और उनके तीन पाद अर्थात् प्राप्ति होने के साधन तनुजा, चित्तजा और मानसी यह तीन प्रकार की सेवा है; सख्य और आत्मनिवेदन ये दो भक्तियाँ शिर अर्थात् सिद्ध स्थान में हैं; श्रवणादिक सात भक्तियाँ हाथ अर्थात् साधन स्थान में हैं; श्री पुरुषोत्तम की नौ प्रकार की भक्ति से युक्त जीव अलौकिक सामर्थ्य सायुज्य और सेवा में उपयोगी देह धारण इन तीन प्रकार से बँधा है, और उनकी लीला के प्रवेश के अर्थ धर्म-स्वरूप वर्षा करने वाले और शोभा करने वाले वृषभ अर्थात् श्री आचार्य रोरवीति नाम भक्तों को मंत्र और ग्रंथ द्वारा उपदेश करते हैं जिससे वर्णधर्मा-जीव अर्थात् सेवामार्गी जीव जब अधिकारी होते हैं तब महादेव लीलास्थ पूर्ण पुरुषोत्तम उनमें आवेश करके लीला का अनुभव कराते हैं ॥ ६ ॥

सङ्गीत पर अर्थ यह श्रुति संगीत का प्रतिपादन करती है, इसके तत, वितत, घन और घमन चार सींग हैं, तीन ग्राम तीन पाद हैं; लय और स्वर दो सिर हैं; सात स्वर या त्रिमूर्छन सप्तक सात हाथ हैं, कण्ठ नाभि और मुख इन तीन स्थलों से बँधा हुआ संगीत रूपी वृषभ अर्थात् गान ब्रह्म मनुष्यों को तन्मय कर देता है ॥ ७ ॥

श्री वेणु पर अर्थ यह श्रुति श्री वेणु का प्रतिपादन करती है, गान में चार रीति की बाणी चार सींग हैं; कोमलादि तीन स्वर पाद हैं, मुख, छिद्र वा लय और स्वर दो सिर हैं; सात रंध्र सात हाथ हैं, अधरोष्ठ दो हस्तों से बँधा है, ऐसा रुद्रोवैवेणुः। इस श्रुति से साक्षाद्रुद्र स्वरूप वेणु 'श्री गोपालमुपास्महे श्रुति शिरोवंशीरवैर्दर्शितम्' इससे वेणुरूप ही धर्म ही मनुष्यों में प्रवेश करता है ॥ ८ ॥

साहित्य पर अर्थ यह श्रुति साहित्य का भी प्रतिपादन करती है; इसके आरम्भ्यादि कथन चार सींग हैं, लक्षणा व्यंजना और ध्वनि तीन पाद हैं, दृश्य और श्रव्य दो शिर हैं। चित्रादि सात हाथ हैं, गद्य, पद्य और गीत तीन रीति से बँधा है, ऐसा साहित्य रूपी बृषभ मनुष्यों को चित्त में उल्लास कर आनन्द देता है। यथा—

सुभाषित रसास्वाद वद्ध रोमाञ्चकंचुकाः ।
विनापि कामिनी संगंकवयः सुखमासते ।।
सुभाषितेन गीतेन युवतीनाञ्चलीलया ।
यस्य न द्रवते चित्तं स वै मुक्तोऽथवा पशुः ।। ९ ।।

किसी के मत से वह महादेव वृषभ सूर्य है, चारों दिशायें चार सींग हैं, बेद के तीन काण्ड तीन पैर हैं, दिन और रात दो शिर हैं, सातरंग की किरणें सात हाथ हैं, जाड़ा गर्मी वर्षा अथवा पृथ्वी अंतरिक्ष और द्युलोक अर्थात् भूर्भुवःस्वः तीनों भुवन में नियमित वर्तना सूर्य का तीन तरह से बँधा होना है ।। १० ।।

आर्य समाज के स्वामी दयानंद सरस्वती के (ऋग्वेद भाष्य के) मत से वह महादेव वृषभ धर्म व्यवहार है, चारों वेद अथवा अर्थ धर्म, काम, मोक्ष अथवा विश्व प्राज्ञ तैजस और तुरीय आदि ही उसके चार सींग हैं । कर्म उपासना ज्ञान अथवा मन शरीर आदि तीन पैर हैं । व्यवहार और परमार्थ अथवा उद्गायन और प्रापणीय अथवा अध्यापक और उपदेशक आदि दो शिर हैं । सात छंद अथवा सात विभक्ति अथवा पञ्च कर्मेन्द्रिय शरीर और आत्मा अथवा पञ्च ज्ञानेन्द्रिय शरीर और आत्मा आदि सात हाथ हैं । मंत्र, ब्राह्मण, कल्प, अथवा कण्ठ, हृदय, शिर, अथबा श्रवण, मनन, निदिध्यासन, अथवा ब्रह्मचर्य, श्रेष्ठ कर्म उत्तम विचार अथवा श्रद्धा, पुरुषार्थ, योगाभ्यास इत्यादि तीन तरह के बन्धन हैं ।। ११ ।।

आर्य समाज के स्वामी दयानन्द (आर्य समाज के माने महर्षि) जी अनेकों विकल्प करके भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँचे, संदिग्ध ही बने रह गये, सायण ने तो विभिन्न मतों की और भी कई व्याख्यायें लिखी हैं । इसी तरह

चित्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदु ब्रीह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहात्रीणि निहितानेङ्कयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।।

ऋ० १।१६४।४५ अथर्व० ९।१०।२७ तै० ब्रा० २।८।८।५ श० ब्रा० ४।१।३।१७ नि० १३।९ इस मंत्र का अक्षरार्थ है कि, (वाक् चत्वारि परिमिता) वाणी को चार भागों में विभक्त किया गया है । (तानि पदानि) उन भागों

को (ये मनीषिणः ब्राह्मणाः विदुः) जो मनीषी ब्राह्मण हैं वे ही जानते हैं इनमें से (त्रीणि गुहानिहिता) तीन को तो गुफा में रखा गया है। इससे उन तीनों को तो (नेङ्गयन्ति) सब कोई नहीं बोल एवं समझ पाते हैं केवल (तुरीयं वाचं) चौथे विभाग की वाणी ही (मनुष्याः वदन्ति) मनुष्य बोलते हैं।

वाणी के चार विभाग कौन हैं ? इस पर महर्षि पतञ्जलि ने तो एक ही व्याख्या किया है परन्तु निरुक्त परिशिष्ट १।६ में आर्ष, वैयाकरण, याज्ञिक, नैरुक्तादि कई और सायण के यहाँ विभिन्न मत की सात व्याख्यायें उद्धृत हैं। पूरे मन्त्रों को ही बात नहीं, अपितु मन्त्र के केवल किसी-किसी शब्द पर भी अनेकों विभिन्न व्याख्यायें हैं। जैसे अश्विनौ को देखा जाय, ये अश्विनौ कौन हैं। इस पर विभिन्न मत के समर्थकों के अर्थ गिनाते हुए—द्यावा-पृथ्वी ; दिन-रात ; सूर्य-चन्द्रमा ; दो राजा ; दो पुण्यात्मा ; आदि कई अर्थ निरुक्त दैवत काण्ड ६।१ में बताया गया है श० ब्रा० ४।१।५।८ में दो वैद्य बतलाया गया है। इसी तरह और भी अनेक उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं। निरुक्त के दैवत काण्ड के १।१।२ में इस तरह कहा है कि—

एव मुच्चावचैरभिप्रायै ऋषीणां मन्त्र दृष्टयो भवन्ति।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्र दृष्टियाँ होती हैं। अतः कोई भी अर्थ अनुचित इसलिए नहीं कहा जा सकता कि सभी प्राचीन अर्थकारों ने मन्त्रों का साक्षात्कार किया था, जिसे जिस रूप में मन्त्र देवता का साक्षात्कार करके अर्थ लाभ हुआ था उसने वैसा ही लिखा। और मन्त्र साक्षात्कार के विषय में यास्क महर्षि का कहना है कि,

न ह्येष प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा।

"बिना ऋषित्व और तपस्वित्व के मन्त्र साक्षात्कार नहीं होता"

[वैसे जिनको कोई अपना विशिष्टमत चलाना, समाज स्थापित करना, अपने को ऋषि कहाना होता है तो वे वेदों का मनमाना अर्थ करते हैं, पर वह अर्थ प्रामाणिक नहीं होता। वे तो कहीं-कहीं अनेकों विकल्प कल्प करके स्वयं भी किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते।]

श्री नीलकण्ठ जी को अपना मत या समाज स्थापन करना नहीं था, और

न ऋषि महर्षि कहलाने का ही शौक था। उनमें ऋषित्व और तपस्वित्व दोनों था। इसी से उन्होंने बिना तोड़े-मरोड़े ही भाष्य किया है। व्यास, वाल्मीकि आदि मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने गोस्वामी तुलसीदास जी ने वेदों में श्रीरामचरित्र श्रीकृष्ण चरित्र का होना बताया है। श्री नीलकण्ठ जी ने उन्हीं में से कुछ मन्त्रों का सङ्कलन मन्त्र रामायण और मन्त्र भागवत नाम से कर दिया है।

जबसे यूरोपियनों के चेले भारत में हुए तब से वे "ईसा पंथी, मूसा (चूहा) पंथी गुरुण्ड चेले लोग वेद की प्रत्येक बातों को आकाशीय या भौतिक पदार्थ मात्र मानने लगे हैं, वे वेदों में इतिहास नहीं मानते परन्तु प्राचीनकालीन सभी वैदिकों ने वेदों को त्रिकालज्ञ एवं त्रैकालिक वक्ता मानकर वेदों में भौतिक पदार्थों के अतिरिक्त इतिहास भी माना है। प्राचीन काल में वेदार्थ करने के जितने साधन थे उनमें एकमात्र श्री याष्क का निरुक्त ही कुछ बचा है। बाकी सबका कलेवर पूर्णतः या अंशतः कराल काल के गाल में गलित हो गया। श्री यास्क जी परम वैज्ञानिक होते हुए भी वेदों में इतिहास का होना भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं,

इत्यैतिहासका—नि० २–५–१६–२
तत्रैतिहासमाचक्षते—नि० २–५–२४–२
तत्र ब्रह्मेतिहास मिश्रमृङ्मिश्रं गाथा मिश्रं भवति नि० ४–१–६–२
पुण्य कृतकावित्यैतिहासिका—नि० ६–१–१

आज के सर्वमान्य धर्मशास्त्र प्रणेता मनु अपनी स्मृति १२–६७ में कहते हैं कि

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वंवेदात्प्रसिद्ध्यति

वेद स्वयं भी कहता है कि हमारे पेट में इतिहास भरे हुए हैं अथर्व० १५–६

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् ११
इतिहासस्य चवै पुराणस्य च गाथानाञ्च
नाराशंसीना च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ १२

अतः वेदों में इतिहास प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। परन्तु वेदों के अर्थ का ज्ञान अंग्रेजी अनुवाद में या दयानन्दीय भाष्य किंवा वैदिक सम्पत्ति पुस्तक सरीखे एक पक्षीय आलोचनात्मक पुस्तकों मात्र के पढ़ने से नहीं होता है.....

वेद में जिन इतिहासों का सङ्केत है, उनका विस्तृत वर्णन रामायण महाभारत एवं पुराणों में है। और वेद के विधि निषेधात्मक सङ्केतों का विशदीकरण स्मृतियों में है। इसलिए वेदार्थ ज्ञान के लिए श्री वचन भूषणकार का मत है कि—

वेदार्थो निश्चेतव्यः स्मृतीतिहास पुराणैः

(श्रीराम जी कल्पित हैं श्रीरामचरित व्यास वाल्मीकि आदि की कल्पना है) ऐसी कल्पना करने वालों ने कभी वेद का स्वयं साक्षात् दर्शन तो किया ही नहीं और न मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियों (स्मृतीतिहास पुराणादिकों) को ही देखा है। वेद में छोटे-बड़े अनेक इतिहास हैं, लगे हाथ एक आध का उदाहरण भी देख लेने में अच्छा ही रहेगा। जैसे—

व्रीड़ौ सतीरभिधीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्तविप्राः।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्तानलसाविवेश॥

ऋ० ३।३१।५

धीराः सप्त विप्रा	अङ्गिरागोत्रके सातविद्वान् एवं ज्ञानी ब्राह्मण
व्रीड़ौ (निरुद्धा)	एक दृढ़ पर्वत की गुफा में रोकी गई अपनी
सतीः (गाः) मनसा अभि	गायों को मन से अभिलक्षित (जान) करके
अतृन्दन्	अन्य सम्पत्तियों की उपेक्षा करते हुए
प्राचा अहिन्वन्	पूर्वजों के मार्ग से उन गायों को प्राप्त करने के लिए यत्न किए अर्थात् जैसे पूर्वज लोग देवानुष्ठान द्वारा प्राप्य वस्तु प्राप्त करते थे वैसे ही करने का सङ्कल्प किए। अर्थात्
ऋतस्य पथ्याम्	सर्वोत्तम यज्ञ (देवाराधन) द्वारा अपनी समस्त
विश्वाम् अविन्दन्	गायों को प्राप्त करना चाहे,
ता इत प्रजानन्	इन विद्वानों के कर्मों को अच्छी तरह जानकर
नमसा	इन्द्र ने उनके नमस्कार से प्रसन्न होकर
विवेश।	उस पर्वतीय गुफा में प्रवेश किया॥

इस मन्त्र पर सायण का भाष्य है कि—पुरा किलांगिरसां गावः पणिना-

मकैरसुरैरपहृत्य निगूढ़े कस्मिंश्चित्पर्वते स्थापिता । तेचांगिरसस्तत्प्राप्त्यर्थमिन्द्रं तुष्टुवुः । स्तुतश्च, स इन्द्रो गवामन्वेषणाय देवशुनीं प्राहिणोत् । सा च गवा मन्वेषण परा सती तत् स्थानमलभत । तया विज्ञापित इन्द्रस्ता गा आनीयां-गिरेभ्य प्रादादित्यैहासिकी कथा । अर्थात् पूर्वकाल में आङ्गिरस संज्ञक ऋषियों की गायों को पणिसंज्ञक असुरों ने हरण करके एक पहाड़ी गुफा में छिपा रखा था । उन ऋषियों ने अपनी गायों के लिए इन्द्र की स्तुति किया । इन्द्र ने प्रसन्न होकर उनकी गायों को खोजने के लिए देवशुनी नामक दूती को भेजा, उसके पता लगा कर बताने पर इन्द्र ने उन गायों को लाकर आङ्गिरस ऋषियों को दे दिया । यह ऐतिहासिकी कथा मंत्र भाग संहिता में है ।

इसी तरह ऋग्वेद १।१४७।३ "ये पायवो मामतेयम्" इस मन्त्र में भी एक ऋषि की ऐतिहासिकी कथा मिलती है । भाई बहिन यमयमी तथा विश्वा-मित्र और नदी के सम्बाद की बात तो वेद में प्रसिद्ध ही है । हाँ यह बात अवश्य है कि वेद में प्रायः कोई भी बड़ा इतिहास क्रमवद्ध नहीं है । विभिन्न प्रकरणों में अनेक रामायणीय पात्रों, ऐतिहासिक व्यक्तियों का नाम तत्तत्प्रक-रणानुसार आया है । जैसे दान के प्रकरण में दशरथ का नाम एवं उनके विशद दान का वर्णन "चत्वारिंशद्दशरथस्य" ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १२६ मन्त्र ४ में है ।

अनेक लोगों का दुराग्रह है कि वेद के जिस मन्त्र का जो देवता है वही उस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय है । परन्तु यह बात सर्वथा ठीक नहीं है क्योंकि (चत्वारि श्रृंगाः त्रयो) ऋ० ४-५८-३ मन्त्र का देवता "अग्निः सूर्यो वा अपो वा गावो वा घृतं वा" लिखा है । शब्द नहीं यज्ञ नहीं-हृदय नहीं ईश्वर नहीं, प्रणव नहीं, लीलास्थ पुरुषोत्तम नहीं, सङ्गीत नहीं, साहित्य नहीं धर्मव्यवहार नहीं परन्तु व्याकरण महाभाष्यकार ने शब्द को निरुक्ति परिशिष्टकार ने यज्ञ को-स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्म व्यवहार को भारतेंदुजी ने और छः को और सातवलेकर जी ने हृदय को महादेव वृषभ बतलाया है पर अग्नि, जल, घृत आदि प्रायः किसी ने नहीं कहा है । ऐसी स्थित में लिखित देवता का महत्व क्या रहा, लिखित देवता ही का प्रतिपादन मन्त्र में है यह तथ्य कहाँ रहा ?

यही नहीं बहुत से एक ही मन्त्र एकाधिक संहिताओं में हैं और उनमें अनेकों मन्त्रमें ऋषि तथा देवता भेद है। जैसे—

(१) जीवं रुदन्ति....ऋ० १०-४०-१० में ऋषि कक्षीवती घोषा और देवता अश्विनौ लिखा है। और यही मन्त्र अथर्व १४-१-४६ में है। वहाँ ऋषि सूर्या सावित्री और देवता आत्मा लिखा है।

२ यत् किंचेदं वरुण....ऋ० ७-८६-५ में ऋषि मैत्रावरुणिर्वशिष्ठः लिखा है और यही मन्त्र अथर्व ६-५१-३ में हैं वहाँ शन्तातिः ऋषि लिखा है।

३ सङ्गच्छस्व पितृभिः....ऋ० १०-१४-८ में ऋषि वैवस्वत यमः और देवता लिङ्गोक्ता देवता पितरो वा लिखा है। यही मन्त्र अथर्व १८-३-५८ में है वहाँ ऋषि अथर्वा और देवता यम लिखा है। ऐसे और भी कितने मन्त्र उपस्थित किए जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के प्रतिष्ठित वेदज्ञ विद्वान एवं व्याख्याता स्वामी विद्यानन्द विदेह की भी सम्मति मननीय है। श्री विदेह जी लिखते हैं [देवता और स्वर किसी सीमा तक मन्त्रार्थ खोलने में सहायक हैं। किन्तु वेद मन्त्रों का वास्तविक अर्थ निर्विकार चिन्तन आत्मा-नुभूति और अन्तः श्रवण के द्वारा ही प्रगट होता है। बादामों में छिलकों का जितना उपयोग है, उतना ही उपयोग वेदों में ऋषि, देवता छन्द और स्वर का है। सेवन बादामकी गिरी की जाती हैं छिलके नहीं। गिरी का सेवन कराने के लिए गिरी से छिलकों को अलग करना पड़ता है। वेदों की व्याप्ति में महत्व वेद मन्त्रों में निहित शिक्षाओं का ही है। वेदों के ऐसे संस्कृत भाष्य हैं जिसमें किसी भी मन्त्र के साथ ए चारों बातें नहीं दर्शायी गई हैं। इसमें वेद विरुद्धता, ईश्वर विरुद्धता की कोई बात नहीं है। सविता वर्ष ६ अङ्क ८]

अतएव ऋषि का अर्थ मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय या मन्त्र का रचयिता नहीं हैं। प्रत्युत मन्त्रार्थ का द्रष्टा है। और जिस मन्त्र का जो देवता लिखा है वह देवता मात्र ही मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय नहीं है। किंवा जिस देवता के आराधन, अनुष्ठान कृपा से जिस मंत्र का साक्षात्कार अर्थ ज्ञान जिस ऋषि को हुआ उस ऋषि ने उसे भी मन्त्र का देवता लिख दिया। इसका तात्पर्य यह

हुआ कि मन्त्र का जो अर्थ प्राचीन भाष्यकारों ने लिखा है उस अर्थ के अतिरिक्त और भी अनेक अर्थ हो सकते हैं। तभी तो (चत्वारि शृंगाः) मन्त्र का भिन्न-भिन्न अर्थ विभिन्न भाष्यकारों ने किया है। और ऋषि भी अन्य हो सकते हैं। तथा च मन्त्रोपरि उल्लिखित ऋषि ने उस मन्त्र का क्या अर्थ समझा था इसके लिये तत्तत् ऋषि लिखित स्मृति-संहिता-तंत्र-आगम-पुराणोक्त प्रवचन आदि का आलोडन करना चाहिए। अनेक संभ्रान्त विद्वानों महात्माओं का तो कहना है कि अनेक ऋषियों के अनेकों ग्रन्थों के आलोडन और अनेकों देवताओं के आराधनानुष्ठान में समय न लगाकर समस्त वेद वेद्य एकमात्र परमात्मा की ही कृपा से मन्त्रार्थ ज्ञान प्राप्त करना सर्वोत्तम है। सम्भवतः पं० श्री नीलकण्ठ एवं महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि आदि ने ऐसा ही किया है।

याष्का चार्य ने "गावः" शब्द का अर्थ इन्द्रियाँ, चमड़ा, सरेस, मज्जा, आदि किया है। इसी बल पर जिस मन्त्र में देवता के स्थान में गावः भी लिखा है उस मन्त्र में अनेक विद्वान शरीर विज्ञान भी ढूँढ निकालते हैं। इसी तरह वेदव्यास द्वैपायन महर्षि ने जो महाभारत में शिव सहस्र नाम और विष्णु सहस्र नाम तथा पुराणों में राम सहस्र नाम और कृष्ण सहस्र नाम लिखा है। उन नामों में नब्बे प्रतिशत नाम और उनके पर्याय वेदोल्लिखित देवताओं के हैं। अतएव वेद के नब्बे प्रतिशत मन्त्रों का अर्थ राम कृष्ण विष्णु शिव परक होना ही चाहिये। आज तक जितने भी वेदवेत्ता हुए हैं उन सब में सबसे विशिष्ट वेद ज्ञान वाले महर्षि द्वैपायनकृष्ण हुए हैं। इसी से वे वेदव्यास करके ख्यात है। उनके मत से वेदों (वेद मन्त्रों) से प्रतिपाद्य एकमात्र श्री हरि हीं है। यथा—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम् ॥

(महाभारत भीष्मपर्व ३६-१५)

अतः वेद के समस्त मन्त्रों में भगवान श्री राम कृष्ण का ही प्रतिपादन है "वेदों में रामकथा" तो एक अल्प संग्रह मात्र है। साथ ही स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में उतनी ही रामकथा सुस्पष्ट रूप से मिल सकनी सम्भव है

जितनी कि प्रति कल्प में एक ही रूप में होती है। परन्तु जो कथांश सम्बाद आदि कुछ-कुछ हेर-फेर के साथ हुआ करते हैं वे शायद वेद में स्पष्ट न मिलें।

जैसे कि दशरथ जी की पुत्रेष्ठि यज्ञ, राम वन गमन, वालि वध, मारीच वध, लंका दहन, रावण वध, आदि तो सब कल्प में करीब-करीब एक ही तरह से होते हैं। इसलिए ऐसी कथाओं का तो संकलन स्पष्ट रूप से वेदों में है। पर धनुर्भंग, परशुराम संवाद, वन मार्ग वर्णन, अंगद दौत्य अन्य राक्षस युद्ध आदि प्रतिकल्प में बदला करते हैं। अर्थात् इन चरित्रों में पर्याप्त हेर-फेर हो जाया करता है। इससे इनका स्पष्ट वर्णन वेद में नहीं भी मिल सकता। पुनः ऐसे ही जिन रामायणीय पात्रों का नाम प्रतिकल्प में एक ही हुआ करता है उनका नाम तो वेद में स्पष्ट मिलता है जैसे दशरथ, इक्ष्वाकु, मांधाता, रघु, राम, सीता, भरत, हनुमान, दशानन, त्रिशिरा आदि आदि। परन्तु जिनका नाम प्रतिकल्प में भिन्न-भिन्न हुआ करता है उनका नाम वेद में सुगमता से प्राप्त नहीं हो सकना ठीक ही है।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।

(ऋ० १०-१९०-३)

तेषां वै यानि कर्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रति पेदिरे
तान्येव वै प्रपद्यन्ते सृज्यमाना पुनः पुनः

(महाभारत)

इस मन्त्र की व्याख्या उपनिषदों एवं अन्य इतिहास पुराणों में की है।

यं ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदाँश्च प्रहिणोतितस्मै
तं ह देवमात्म बुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वैशरणमहं प्रपद्ये

(श्वेताश्वतरो प० ६।१८)

पर वेदों में कोई भी इतिहास क्रम बद्ध नहीं है, इसे तो पहिले ही कहा गया है परन्तु मन्त्रों का आधियज्ञ, आधिभौतिक, आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक (पुराकल्प सम्बन्धित या भविष्य कथन रूपमें) कई तरह के अर्थ होते हैं, ऐसा प्राचीन काल से सभी वेदवेत्ता मानते आये हैं। महाभारत शान्ति पर्व अ० २३२ के २४वें श्लोक में—

अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा ॥

कहा है और स्वयं वेद भगवान् का कहना है कि—

तस्मैनूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥
(ऋ० ८।७५।६, तै० सं० २।६।११।)

(विरूप !) हे विशेष रूप वाले ! तुम (नूनम्) अवश्य ही (तस्मै अभिद्यवे) उस परम तेजस्वी (वृष्णे) वृष्णि वंशोत्पन्न परमात्मा के लिये (नित्यया) नित्य अर्थात् त्रैकालिक कथन करने वाली (वाचा) वेदवाणी द्वारा (सुस्तुतिम् चोदस्व) उत्तम प्रार्थना करो।

आज कल जो लोग "वेदों में रामकृष्ण का नाम नहीं है, वेदों में रामकृष्ण की कथा नहीं है" आदि अनर्गल प्रलाप किया करते हैं उन्हें मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर (बेटावर-देवरिया-गाजीपुर निवासी) पं० श्री वाराणसी प्रसाद त्रिवेदी एम० ए० एल० एल० बी० काव्य सांख्यतीर्थ की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर देना चाहता हूँ। जो उन्होंने जनवरी सन् १६३२ की "गङ्गा" में अपने लेख में लिखा है।

"....यह साधारण वेदों की चर्चा के शौकीन हम अंग्रेजीदाँ विद्वानों के दिमाग में इतनी सुदृढ़ प्ररूढ़ और प्रतिनिविष्ट है कि इसे एकदम दूर कर देना दुःसाध्य ही नहीं असम्भव भी है।

एक दिन किसी पण्डित सेवी विद्याव्यसनी आस्तिक के घर, एक संस्कृत साहित्य के एम० ए० वेदों के विषय में कुछ Buhler बुलर कुछ mullar मुलर कुछ weber वेबर और कुछ Fragar फ्रेज़र के जोर पर तथा कुछ अपनी मन गढ़न्त से लम्बी-चौड़ी डींग मार रहे थे। वहाँ एक संस्कृत का कोरा किन्तु अच्छा विद्वान् पण्डित भी बैठा था। आस्तिक से न रहा गया, बोले, पण्डित जी ! आप कुछ कहते क्यों नहीं ? पण्डित जी ने कहा, यदि कोई शराब पीकर बड़बड़ाए तो उसके मुँह नहीं लगा जाता। बात बड़ी कड़वी थी सही किन्तु है बिल्कुल ठीक। हम अंग्रेजीदाँवों की बुद्धि पर विलायती शिक्षा का कुछ ऐसा विषाक्त रङ्ग ही चढ़ा हुआ है....।"

यद्यपि कि इन पंक्तियों को त्रिवेदी जी ने मात्र अंग्रेजीदाँवों को लक्ष्य

करके ही लिखी हैं। पर तो भी हम देखते हैं कि जो अंग्रेजी के विद्वान् क्या बिल्कुल अंग्रेजी नहीं पढ़े हैं। श्री किशोरीदास जी वाजपेयी के शब्दों में—

रही संस्कृत दूरि लौं, हिंदिहु पढ्यों न नेक।
पै वेदन के वाद में, जीत्यों विबुध अनेक॥

(तरंगिणी)

उन्हें मुलर, बुलर, वेबर, फ्रेज़र, आदि की विलायती शराब तो नहीं मिलती पर यदि वे किसी समाज विशेष का ठर्रा ही पी लिए हैं, अथवा अपनी ज़बान दराज़ी के बल पर उन्हें सभा सोसाइटी की मान प्रतिष्ठा रूपी भङ्ग ही पीने को मिल जाया करती है वे भी अपने नशे में बहुत कुछ बड़बड़ाया ही करते हैं।

यद्यपि कि गोस्वामी तुलसीदास जी की ही रामायण (श्री रामचरित मानस) में भगवान श्री शङ्कर जी का आदेश उद्धृत है कि—

जिन्हकृत महा-मोह-मद पाना, तिनकर कहा करिय नहिं काना ॥

परन्तु तो भी भगवच्चरित्रावगाहन की लालसा कान करने को बाध्य करती है। ऐसी बातों पर कान करने से अपना तो लाभ होता ही है। भगवच्चरितामृत पान करने को मिलता ही है। महा-मोह-मद्यपी का लाभ चाहे न होता हो परन्तु ऐसा भी कहते नहीं बनता क्योंकि मोह-मदिरा का नशा उतर जाने पर उसे भी भगवच्चरिता मृत पान करने का आनन्द आयेगा ही। इसीलिए—

सर्वे सुखिनः सन्तु सन्तु सर्वे निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

मैं बारम्बार अपने मित्र पं० श्री शङ्करानन्द जी तिवारी "प्रतिवादि भयङ्कर" को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि जिनको एक निमित्त बनाकर मेरे प्रभु श्री सीताराम जी ने मुझे अपने चरित्र में कुछ समय तक विचरण करने का अपूर्व सुअवसर दिया और यह सेवा करवा लिया और जिनको कि,

स्तोतुमम्बुजभवश्चभवश्चनेशः

उन श्री सीताराम जी की कृपा का धन्यवाद मैं कैसे दे सकता हूँ, और फिर धन्यवाद दूँ ही क्यों? अपनी वस्तु प्राप्त करके कोई धन्यवाद नहीं दिया जाता। उनकी (परमात्मा की) कृपा हमारे (जीव के) लिए ही तो है उनके अपने

किस काम की। अतः श्री सीताराम जी की कृपा हमारे (बद्ध जीवों के) ऊपर होती है तो वे विशेष स्तोष्य नहीं हैं। क्योंकि हम कृपा के सर्वथा अधिकारी हैं। और अधिकारी के पास उसकी वस्तु यदि पहुँच जाये तो इसमें किसका और कैसा निहोरा ?

सन् १९४७ की लिखी गई पुस्तक अब तक न प्रकाशित होकर आज इतने दिनों पर प्रकाशन का सुयोग बैठाने में भी भगवान श्री सीताराम जी का कुछ विशेष कृपा भाव होगा ही जिसको हम अज्ञानी बद्धजीव समझने में सर्वथा असमर्थ हैं।

श्री सीताराम चरणाश्रित

रामकुमार दास

पुनश्च—

भवानीमण्डी (राजस्थान) के श्रीरामद्वाराके महान्त श्री पं० राममनोहरदास जी "राम स्नेही" एक विद्वान-प्रवक्ता एवं भगन्नाम प्रेमी सन्त हैं उन्हीं के सत्सङ्ग एवं शुभप्रेरणा के परिणाम स्वरूप सेठ श्री ब्रजमोहनदास जी 'विजय' इस ग्रंथ 'वेदों में रामकथा' का प्रकाशन बड़े उत्साह से कर रहे हैं। उन्हीं महान्त जी महाराज के प्रेमाग्रह के कारण इस प्राक्कथन के साथ में कई पत्रों में प्रकाशित अपना "प्रलापौषधि" शीर्षक लेख एवं ग्रन्थान्त में भगवन्नाम माहात्म्यसूचक कुछ वेद मन्त्र भी उद्धृत किये दे रहा हूँ।
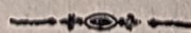
प्रलापौषधि

अतीव दीन पालिके शुचिस्मिते कृपालुके,
दयार्णवे जगद्धिते जगत्प्रसूति कारिके।
प्रपन्न दुःख हारिणि प्रशस्त सौख्य दायिनि,
प्रसीद रामवल्लभे, प्रदेहि पाद पल्लवम्॥

कोई व्यक्ति किसी कारण पागल (उन्मत्त), हो जाता है तो वह प्रायः अण्ड-बण्ड बकने लगता है (प्रलाप करने लगता है) दूसरों को अकारण गाली देने लगता है। उसपर भी तारीफ यह कि वह स्वयं को पागल नहीं मानता अपितु सारे संसार के ज्ञानियों से बढ़कर ज्ञानी एवं विद्वान् समझता है इसी से अपनी ही बके जाता है किसी की सुनता ही नहीं। उसकी विचार शक्ति तो रह ही नहीं जाती जिससे कि वह विचार कर बोले—

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन विचारे॥

नीति तो यह है कि—

जिन कृत महामोह मदपाना। तिनकर कहा करिय नहिं काना॥

और कोई विचार शील व्यक्ति कभी किसी पागल के प्रलाप पर ध्यान देता भी नहीं परन्तु मानवता के नाते प्रत्येक व्यक्ति से जहाँ तक बने उसका उत्त-मोत्तम उपचार करना चाहिये। यदि किसी तरह वह पागल उत्तम औषधि का सेवन कर लेवे तो उसका मस्तिष्क ठीक हो जाय, प्रलाप करना गाली बकना बन्द हो जाय। किसी तरह औषधि सेवन ही नहीं करेगा तब तो "ईश्वरेच्छा वलीयसी, हरि इच्छा भावी बलवाना" न्यायानुसार रोग को उसके पूर्व पाप का परिणाम समझना ही पड़ेगा। गीता में मुनि का लक्षण बतलाया गया है।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः।
बीत राग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥ २।५५

ऐसे मुनि सदैव से एक मात्र नारायण का ही भजन करते हैं—

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ।
सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनुतानिह ॥
मुमुक्षवो घोर रूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।
नारायण कलाः शान्ताः भजन्ति ह्यनसूयवः ॥

(श्री भाग० १।२।२५,२६)

जिसमें उपर्युक्त लक्षण न हों वह मुनि नहीं हो सकता, परन्तु इन दिनों गोरखपुर में गीता एवं भागवतोक्त लक्षणों से सर्वथा रहित होने पर भी एक महाशय स्वयं को मुनि ही नहीं मुनीश्वर तक लिखते मानते हैं और फीस लेकर जिसे अपना अनुयायी बनाते हैं उसे भी मुनि कहते एवं लिखते हैं। अपने दलालों द्वारा सैकड़ों मील से पत्र मँगाकर अपनी धाक जमाने के लिये छापते हैं कि सैकड़ों मील दूर रहता हुआ भी रोगी केवल पत्र लिख देने मात्र से ही असाध्य रोग से मुक्त हो जाता है। प्रयाग कुम्भ के आकस्मिक मृत्यु काण्ड में राम राम कहने वाले दबकर मर गये पर मुनीश्वर का नाम जपने वाले दबने वालों की मध्य भीड़ में भी सपरिवार साफ-साफ बच गये, आदि-आदि। देखिये ज्ञान शक्ति १९५४ की जून जुलाई का अंक पृष्ठ क्रमशः १७-१८। प्राचीन काल के मुनियों ने "प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा....अतिमानं सुरा पानम्" बतलाया है। वह गोरखपुरी योगीश्वर मुनीश्वर उपाधिधारी व्यक्ति अपने वाक् चातुर्य के बल पर कुछ सामान्य लोगों से थोथी प्रतिष्ठा प्राप्त करके अति मान सुरा का पान करके उन्मत्त हो गये हैं। अनेक तरह का प्रलाप करते रहते हैं। उसी प्रलाप में यदा कदा जगत्पूज्य परम वेदज्ञ महात्मा गोस्वामी श्री तुलसीदासजी को भी एक स्वाँस में सैकड़ों गालियाँ दिया करते हैं। अभी-अभी १५।६।५४ ई० को अपने ज्ञान शक्ति के अंक में मानस की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करके उन पर वेद प्रमाण तुलसी के अनुयायियों से माँगा है प्रति चौपाइयों के आगे पीछे गालियाँ देकर श्री तुलसीदास जी का स्मरण किया है। हर बात के लिये कह दिया है कि यह बात वेद में नहीं ही है जिससे मुनि समाज के सदस्य समझें कि हमारे मुनीश्वर जी बड़े वेदज्ञ हैं। पर मुनीश्वर जी ने तो—

घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा रासभ रोहणम्।

येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥
नीति को अपनाया है। अस्तु, उस लेख का शीर्षक है।

"तुलसीदास जी ने वेदों को पढ़ा क्या देखा तक नहीं था।" देखने में लेख का कलेवर लम्बा-चौड़ा है पर $\frac{7}{8}$ अंश गाली है और $\frac{1}{8}$ अंश मानस की उद्धृत पंक्तियों पर वैदिक प्रमाण की जिज्ञासा। वही जिज्ञासा बिना गाली दिये हुए जिज्ञासु भाव से सभ्यजनोचित शब्दों में की जा सकती थी जैसा कि अनेक मानस पाठक और जिज्ञासु करते रहते हैं परन्तु प्रलापी को गाली का विचार कहाँ? गालियों का उत्तर तो न देकर उस सम्बन्ध में मैं यही कहूँगा कि—

ददतु-ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तः।

पर उनकी उद्धृत चौपाइयों का वेद प्रमाण पूरे पते के साथ दूँगा। यही उस प्रलाप की औषधि होगी, ज्ञानशक्ति में गाली बकने वाले ने मानस की जिन पंक्तियों को उद्धृत किया उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों पंक्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें वेद मूलक लिखा है। मैंने प्रायः सब की मूल श्रुतियों को प्राप्तकर "मानस की वैदिकता" नामसे पुस्तक रूपमें संग्रह कर लिया है परन्तु यहाँ प्रलापक की जिज्ञासित पंक्तियों की ही वेद मूलकता रूप औषधि बताई जाती है। उचित है कि प्रलापक महाशय निर्देशित स्थानों पर श्रुतियों को देखकर अपने मस्तिष्क की औषधि कर लें यदि सचमुच उनकी वेद मूलकता चाहते हों। (यदि उनमें कुछ आत्मबल हो और वे सत्य पथ पर आरूढ़ हों तो इस लेख को ज्यों-का-त्यों अपने ज्ञानशक्ति पत्र में बिना घटाए बढ़ाए छाप दें।)

अब ज्ञान शक्ति में उद्धृत मानस की पंक्तियों की वेद मूलकता देखिये पर स्मरण रहे कि जिन श्रुतियों का अर्थ बहुत स्पष्ट है उनका हिन्दी अर्थ नहीं दूँगा लेख का कलेवर बढ़ जाने के डर से। पर कठिन मन्त्रों का अर्थ दूँगा लेकिन अपनी ओर से नहीं वरन् पूर्ववर्ती विद्वानों के लिखे अर्थ का मैं केवल हिन्दी अनुवाद कर दूँगा और पता तो पूरा-पूरा श्रुतियों का रहेगा ही।

(१) नानापुराणनिगमागम संमतम्०॥

वरनहु रघुपति विशद जस, श्रुति सिद्धान्त निचोरि॥

इसकी वेद मूलकता जानने के लिये मेरी लिखी २७५ पृष्ठ की मानस

सिद्धान्त नामक पुस्तक देखिये जो मानस संघ रामवन सतना मध्यप्रदेश से मिल सकती है।

(२) सकल काम प्रद तीरथ राऊ, बेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ।

वेद प्रमाणः—

सितासिते सरिते यत्र संगमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति।
ये वै तत्त्वं हि सृजन्ति धीरास्ते जनाः सोऽमृतत्वं भजन्ति॥
(ऋक् परिशिष्ट २२।१)

ऋक परिशिष्ट में लिखा है कि यह मन्त्र ऋग्वेद १०।७५।५ "इमे गंगे यमुने सरस्वति०" के बाद पढ़ना चाहिये (यह मन्त्र इतना स्पष्ट है कि लघु कौमुदी का विद्यार्थी भी समझ सकता है)।

(३) स्वायंभू मनु अरु शत रूपा। जिनते भइ नर सृष्टि अनूपा॥
दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिनकै लीका॥

वेद प्रमाणः—

(क) "अहं मनुरभवम्। (ऋ० ४।२६।१)

(ख) "मनवे ह वै प्रातःअवनेग्यमुदकमाजहरुः",
"सर्वाप्रजा निरवाहाऽथेह मनुरेवैक परिशिशिषे",
"एतान् हैव प्रजायते यां मनुः प्राजायत,
"यस्य ह प्रजा भवत्येक आत्मना भवत्यथोत
दशाधाप्रजा हविष्क्रियते तस्मात् प्रजा भूयोहविष्करणम्।
(शतपथ ब्राह्मण) १।८।१।१, ६, ११, ३४

(ग) मनुना कृत्या स्वधया वितष्टा०। (यजु, काठक संहिता १।२।४)

(घ) मनुना ह्येषाकृता स्वधसा०। (यजु० का० सं० ३१।१।१)

(४) यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। वेद पुरान विदित जग जाना॥

वेद प्रमाणः—

१—तद्विष्णोः परम पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। (ऋ० १।२२।२०)
२—विष्णोर्यत् परमं पदम्। (ऋ० १।२२।२१)
३—विष्णोः परमे पदे मध्व उत्सः। (ऋ० १।१५४।५)

४—परमं पदमवभाति भूरि० । (ऋ० १।१५४।६)
५—त्रिपादस्यामृतं दिवि ।
(ऋ० १०।६०।३ यजु० ३१।३ अथर्व १६।६।३ तै० आ० ३।१२।१)
६—तत्र मध्यम पाद प्रदेशेऽमित तेजप्रवाहकतया नित्य बैकुण्ठं विभाति । (त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषत् अध्याय १)
७—स एव नित्य परिपूर्णः पाद्विभूति बैकुण्ठ नारायणः । (त्रि० अ० २)
८—तदनुज्ञातश्चोपर्युपरि गत्वा पंच बैकुण्ठानतीत्य० । (त्रि० अ० ५)
९—अनादि पाद विभूति बैकुण्ठमेवाभाति० । (त्रि० अ० ६)
१०—विद्याविद्ययोः सन्ध्यौ विष्वक्सेन बैकुंठ पुरम्० । (त्रि० अ० ६)
११—विद्यामायाऽनन्तबैकुंठान्परितोऽवस्थितान्० । (त्रि० अ० ६)
१२—एवं ब्रह्मविद्याबैकुंठमाविश्य० । (त्रि० अ० ६)
१३—ततः श्री तुलसी बैकुण्ठ पुरमाभाति० । (त्रि० अ० ६)
१४—तन्मध्ये च विशुद्ध बोधानन्द बैकुण्ठम्० । (त्रि० अ० ६)
१५—ततः सुदर्शन बैकुण्ठमाभाति० । (त्रि० अ० ७)

(५) पुरसोभा सम्पति कल्याना । निगम शेष शारदा बखाना ॥

वेद प्रमाणः—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥
तस्मिन्हिरण्यये कोशेत्र्यरेत्रिप्रतिष्ठिते ।....
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥

(अथर्ववेद १०।२।३१, ३२, ३३)

ऋग्वेद १।१२६।४ में दशरथ जी की इतनी धन-सम्पत्ति का वर्णन है कि यज्ञ से विदा होने वाले हजारों ऋत्विजों को (प्रत्येक को) चालीस ४० श्याम कर्ण घोड़े और इतने ही सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्र एवं हजारों दास उन्होंने बिदाई में दिया था ।

(६) अति सुन्दर सुचि सुखद सुशीला। गावहिं बेद जासु जश लीला॥
दूषन रहित सकल गुन रासी। श्रीपति पुर बैकुंठ निवासी॥
....। विष्णु सकल गुणधाम॥

इन पंक्तियों पर मुनीश्वर कहाने वाले का तो भारी प्रलाप है कि वेद में कहीं भी श्रीपति लक्ष्मीपति की चर्चा ही नहीं है। यदि कभी वेदों का अध्ययन किया होता हो वैसा न कहा जाता। विष्णुसूक्तों (श्रीपति की यशः गाथाओं) से समस्त वेद भरा है और विष्णुसूक्तों का संग्रह मात्र एक बड़ा ग्रंथ बन जाता है। यहाँ पते के सहित कुछ मन्त्र दिक्दर्शन रूप से उद्धृत किये दे रहा हूँ—

१—अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभि॥ (ऋ० १।२२।१६)

२—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। (ऋ० १।२२।१७)

३—त्रीणि पदानि विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
(ऋ० १।२२।१८)

४—विष्णोः वीर्याणि पश्यत यतोव्रतानि पस्पशे (ऋ० १।२२।१६)

५—विष्णोर्नुकंवीर्याणि प्रवोचम्। यः पार्थिवानि विममे रजांसि॥
(ऋ० १।१५४।१)

६—पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि। गुह्यं नाम गोनाम्॥
(ऋ० ५।३।३)

७—विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। (ऋ० १०।१८४।१)

८—ऋक्परिशिष्ट का ११वाँ सूक्त श्री सूक्त के नाम से विख्यात है जो कि ऋग्वेद पञ्चम मण्डल का अन्तिम सूक्त है उसमें २६ मन्त्र हैं जिनमें कई बार श्री जी को "हरि वल्लभा, विष्णुपत्नी, माधव प्रिया, विष्णु प्रिया, अच्युत वल्लभा विष्णुमनोऽनुकूला आदि कहा गया है।

ऋ० ६।६६।१—८ समस्त सूक्त, ऋ० ७:६६, १००।१-१४ समस्त सूक्त श्रीपति का कथन करता है।

६—श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ०। (शुक्ल यजुर्वेद ३१।२२)

इस मन्त्र में नारायण को "श्रीपति एवं लक्ष्मीपति" कहा गया है। इस सूक्त के अन्तिम छ मन्त्रों का नाम ही उत्तरनारायण विख्यात है। इसके अतिरिक्त और भी अनेकानेक मन्त्र श्री पति यशोगान के वेद में हैं।

(७) ईर्षालु निन्दक महाशय का प्रलाप है कि श्री राम जी के किसी पूर्वज का नाम वेद में नहीं है, अतः यहाँ थोड़े से नाम दिये जाते हैं—

१—**इक्ष्वाकु**—या त्वं वेद पूर्व इक्ष्वाको! (अथर्व १६।३६।६)
ईजऽऐक्ष्वाको राज०। (शतपथ ब्रा० १३।५।४।५)

२—**सुद्युम्न**—सुद्युम्नोद्युम्नं यजमानाय धेहि।
(यजुर्वेद मैत्रायणी सं० १।२।१६)

३—**सुदास**—विश्वामित्रो यद्वहत्त सुदासमप्रियायत०।
(ऋ० ३।५३।६)

४—**यौवनाश्व मान्धाता**—(ऋ० १०।१४६।१-६)

५—६—यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता के अन्तिमारण्यक १।४ में एक साथ कुछ चक्रवर्तियों की सूची देते हुए श्रुति ने श्री राम जी के कई पूर्वजों का नाम गिने हैं—

अथ किमेतैर्वा महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् **सुद्युम्न** भूरिद्यु म्नेन्द्रद्युम्न कुवलयाश्व **यौवनाश्व**अश्ववध्यश्वाश्वपतिः शशबिन्दु **हरिश्चन्द्रोऽम्बरीषो** ननक्तुः शर्यातिर्ययातिर**नरण्यो**ऽक्षसेनादयो मरुत्त भरत प्रभृतयः राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियंत्यक्त्वाऽस्माल्लोकादमुं लोकं प्रयाता॥

१०—**सगर के साठ हजार पुत्र**—(अथर्व २०।१२७।१)
षष्ठि सहस्रा नवतिं च कौरम। आरुशमेषुदद्महे।

११—**रघु**—रघुः श्येनः पतयत्०। (ऋ० ५।४५।६)
उतो अह क्रतु रघुम् (ऋ० ८।३३।१७)

१२—**दशरथ**—चत्वारिं शद् दशरथस्य शोणाः (ऋ० १।१२६।४)

१३—**वैवस्वतमनु**—मनुर्वै यत्किंचावदत् तद्भेषजमासीत्।
(यजु का० ११।५।६)

(८) श्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। भजिय राम सब काम बिसारी॥

वेद प्रमाण—

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो। य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्॥
(सामवेद पू० ४।३।३)

सामसंस्कार भाष्य का हिन्दी अनुवाद—विश्वा ओजसा = सम्पूर्ण शक्ति से अर्थात् अन्य ओर लगी हुई सारी शक्तियों को एकत्रित करके—(सब काम बिसारी।) दिवःपतिम् = आनन्द के स्वामी परमात्मा को प्राप्त करो। यः जनानाम् = जो परमात्मा समस्त प्राणियों का 'इत् एकः = एक मात्र' अतिथिः भूः = पूज्य एवं प्रिय होता है।

(९) यह नइ रीति न राउर होई। लोकहु वेद विदित नहिं गोई॥
सकृत प्रणाम किये अपनाये।

वेद प्रमाण—

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्र सहस्रबाह्वे। तत्रादिष्ट पौंस्यम्॥
(साम पू० २।२।७ ऋ० ८।४४।२६)

सामसंस्कार भाष्य से—इन्द्रः = परमात्मा कद्रुवः = कुत्सित गतिवाले भक्त जीवों का। सुतम् = किया हुआ पूर्व पाप जो कि सहस्रबाह्वे = हजारों प्रकार से बाधा देने वाले होते हैं उन पापों को। अपिबत् = नाश कर देते हैं। तत्र = पाप नाश हो जाने पर जीवों का। पौंस्यम् = पुरुषार्थ, प्रताप। अददिष्ट = देदीप्यमान हो जाता है।

(१०) भक्ति मोरि पुराण श्रुति गाई।

वेद प्रमाण—

(क) तस्यते भक्तिवानो भूयास्म। (यजुर्वेद मैत्रायणी सं० १।५।११)

(ख) आदित ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्कादवद्देव जीवो जनिष्ठाः।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सन्पत अमृतेमेवैः॥
(ऋ० १।६८।३४)

आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानन्द जी का अर्थ—देव = हे जगदीश्वर। आपका आश्रय करके, यत् = जो, विश्वे = सब जनिष्ठाः = अतिज्ञान युक्त,

सपन्त = एक सम्मत विद्वान् लोग, एवैः = प्राप्तिकारक गुणों और, शुष्कात् = धर्मानुष्ठान तपसे, ते = आप के, देवत्वम् = दिव्य गुण प्राप्त करने वाले, ऋतम् = बुद्धि और कर्म, नाम = प्रसिद्ध अर्थ युक्त संज्ञा [आपके सार्थक नामों को] सिद्ध, जुषन्त = प्रीति से सेवा करैं [नाम जपैं] वे, ऋतम् = सत्य रूप को भजन्त = सेवन करते हैं, वैसे, अमृतम् = मोक्ष को जीवः = मनुष्य प्रयत्न से आत्इत् = सबको प्राप्त करता है। मनुष्य परमेश्वर की उपासना (भक्ति) बिना व्यवहार व परमार्थ के सुखों को नहीं प्राप्त कर सकता है।

११—उपरोहिती कर्म अति मन्दा। वेद पुराण स्मृतिकर निन्दा॥

अथर्व वेद के गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध २।२१ में ब्राह्मणों के नाचने और मनुष्यों के गीत गाने की निन्दा की गई है। देखिये—

एष ब्राह्मणो गायनो नर्तनो वा भवति, तमग्लागृध इत्याचक्षते।
तस्माद्ब्राह्मणो नैव गायेन्नानृत्येन्माग्लागृधः स्यात्॥
(गो॰ पू॰ २।२१)

परन्तु उपरोहित को राजा की प्रशंसा के गीत गाने पड़ते हैं जैसा ऋग्वेद के दसवें मण्डल के १७३ और १७४ सूक्तों के ग्यारह मन्त्रों में वर्णित है। इसी से उपरोहिती कर्म को मन्द कहा है।

मानस के उपरोहित शब्द पर भी ध्यान देकर पुरोहित और उपरोहिती शब्द के अन्तर को समझ लेना चाहिये। यज्ञाचार्य को 'पुरोहित' कहा जाता है। 'उपरोहित' नहीं और यहाँ उपरोहिती कर्म के मन्दत्व की बात है 'पौरोहित्य' की निन्दा एवं मन्दत्व से तात्पर्य नहीं।

१२—चहुँयुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।

यहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुराण श्रुति सारा॥
राम नाम गुण चरित सुहाये। जन्म कर्म अगणित श्रुति गाये॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होइ श्रुति गावा॥
नाम उधारे अमित खल। वेद विदित गुण गाथ॥

चारों वेदों के प्रमाण—

१—भूरिनामवन्दमानोदधाति, पितावसो तज्जोषायसे।
(ऋ० ५।३।१०)

२—नतस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः। (शु० यजुर्वेद ३२।३)

३—नामानिते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये॥ (अथर्व वेद २०।१९।३)

४—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानिरोरुवत्। सीदन्यानौ वनेष्वा॥ (साम वेद पू० पवमान काण्ड ५।४।७)

इन चारों मन्त्रों का अर्थ इसी ग्रन्थ में अलग "भगवन्नाम" शीर्षक में दिया गया है।

५—"श्री रामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्या शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति, प्रणवानामयुत कोटि जपा भवन्ति, दशपूर्वान्दशोत्तरान्पुनाति, स पंक्तिपावनो भवति, स महान् भवति सोऽमृतत्वं च गच्छति।" (रामोत्तर ता० उ० ६।४)

क्रमानुसार चतुर्थ युग का नाम है 'कलियुग' जिसका अर्थ कोषों में वर्णित है कि—

कलिः स्त्री कलिकाया नाशूराजि कलहे युगे॥ (मेदिनी)
कलिर्विभीतके शूरे विवादेऽन्त्ययुगे युधि॥ (हेमः)
सम्प्रहाराभिसम्पाते कलि संस्फोट संयुगा॥ (अमरः)
कलयति पापेन जड़यति कलिः॥ (विश्वः)

निष्कर्ष यह कि वर्तमान चतुर्थ युग कलह विवाद, युद्ध एवं पाप आदि का युग है अर्थात् इन्हीं को बढ़ाता है। कलि शब्द का अर्थ पाप कलहादि है और इस "कलेर्युगः कलियुगः" सामान्यावबोध अर्थ को न समझकर मुनीश्वर कहाने वाले प्रलापी ने कलियुग का अर्थ मशीन यन्त्रों का युग करके भगवन्नाम की खिल्ली उड़ाने की दुश्चेष्टा करके घोर तम पाप किया है, अपने नाम के जल से तो अपने अनुयायियों का रोग दूर होना माने प्रचार करे और भगवन्नाम के माहात्म्य पर मिथ्यात्व का आरोप करे। जो व्यक्ति कलि और

कल शब्द का भेद एवं अर्थ नहीं समझ सकता वह कितना बड़ा विकृत मस्तिष्क वाला पागल होगा। शोक !

१३—तहाँ वेद अस कारण राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाषा॥
भगति मोरि पुराण श्रुति गाई॥

वेद प्रमाण—

दोषो गाय वृहद्गाय द्युमद्धेहि आथर्वणस्तुहि देवं सवितारम्। तमुष्टुहि यो अन्तः सिन्धौसूनुः। सा यस्य युवानमद्रोघवाचं सुशेवम्॥ सघानो देवःसवितासा विषदमृतानिभूरि। उभे सुष्टुती सुगातवे॥ (अथर्व वेद ६।१।१,२,३)

१४—ढोल गँवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी॥
नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं। अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥

एक तो ये दोनों चौपाइयाँ क्रमशः समुद्र और रावण की कही हैं, इनका उत्तरदायित्व समुद्र और रावण पर है, दूसरे इन पर वैदिकता की छाप नहीं है, फिर भी श्री तुलसी के अनुयायियों से नारी दूषण का वैदिक प्रमाण माँगा गया है। स्मरण रहे कि मानस की प्रत्येक सैद्धान्तिक बातों की वैदिकता दिखाने के लिये श्री तुलसी का एक साधारण अनुयायी मैं ही तैयार हूँ बड़े-बड़े विद्वानों की बात अलग ही है अस्तु—स्त्रियों के गुण के सैकड़ों और दूषण के कोड़ियों प्रमाण वेद में हैं, उनमें मात्र दूषण चाहने वालों के लिये एकाध प्रमाण ये हैं—

१—एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वो तमो ज्योतिषोषा अबोधि। अग्र एति युवतिरह्रयाणा। (ऋ० ७।८०।२)

२—सावृकी रश्विना वृषणा नरेति। (ऋ० १।११७।१८)

३—अभ्रातरो नयोषणोऽयन्तः, पतिरिपो न जनयो दुरेवाः। पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदम जानता गभीरम्॥

(ऋ० ४।५।५)

(रौ रौ नर्क कल्प शत परई।)

४—(गुप्त प्रसविनी व्यभिचारिणी), आरे मत् कर्त रहसूरिवागः। (ऋ० २।२६।१)

५—कुहस्विद् दोषा कुह वस्तो रश्विना, कुहाति पित्वं करतः कुहोषतु। (ऋ० १०।४०।२ पूरा सूक्त १४ मन्त्र)

६—(छोटी बुद्धि)—गोष्ठं गाव इवाशतां। (ऋ० ८।४३।१७)

७—एष स्य मानुषीष्वाश्येनोन विक्षुसीदति।
गच्छन् जारो न जोषितम् ॥ (ऋ० ६।३८।४)

८—अभिगावो अनूषत योषा जारमिव प्रियम्।
अगन्नाजिं यथा हितम् ॥ (ऋ० ६।३२।५)

९—आजामि रत्के अव्यत भुजेन पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणांवरो न योनि मासदन् ॥ (ऋ० ६।१०१।१४)

१०—युवं कवीष्ठः पर्यश्विना रथं विशोनकुत्सो जरितुर्नशायथ।
युवोहं मक्षा पर्यश्विना मध्वासा, भरत निष्कृतं न योषणा ॥ (ऋ० १०।४०।६)

११—पुरुरवो मा मृथा मा प्रपप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानिसख्यानि सन्ति सालावृकाणाँ हृदयान्येता ॥ (ऋ० १०।९५।१५)

१२—यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वानिपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ (ऋ० १०।१६२।५)

१३—यथा योषिदनपद्वयेतमेवतया निष्क्रीणामेक्ति।
तामन्वार्तीयन्त तदनृतस्य जन्म ॥ (मैत्रायणी सं० ३।७।३)

१४—मोघ संहिता एव योषा तस्माद्य एव नृत्यति गायति।
तस्मिन्तेवैता निमिश्ल तमा इव ॥ (शतपथ ब्रा० ३।२।४।६)

कहिये कुत्ता, शृगाल, भेड़िया, लकड़बग्घा, चीता, बाघ आदि हिंसक जन्तु के समान हृदय, अकल्याणरूप, मिथ्यावादी, व्यर्थ बकवादी आदि ताड़न के अधिकारी हैं कि नहीं ?

सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्।
योनिः क्लिद्यति नारीणां पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
स्त्रियोहि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियोहि मूलं व्यसनस्य पुंसः।
स्त्रियोहि मूलं नरकस्य पुंसः स्त्रियोहि मूलं कलहस्य पुंसः॥
(चन्द्रकान्त वेदान्त दूसरा भाग पाँचवाँ विन्दु)

पुराणों और काव्यों का उद्धरण एक स्वतन्त्र पुस्तक बन जायेगा।

१५—जासु छाँह छुइ लेइय सींचा। लोक बेद सब भाँतिहि नीचा॥

कोषों में चाण्डाल की श्रेणियों में निषाद की गणना की गई है।—
निषादः स्वर भेदेऽपिचाण्डाले धीवरान्तरे। (मेदिनी)
निषादश्वपचावन्तेवासि चाण्डाल पुक्कसाः। (अमरः)

निरुक्त ने निषाद को पंचमवर्ग कह कर पाप योनि माना है—
वर्णाः निषादः पंचम। निषाद....पापकम्।
(निरुक्त नैगमकाण्ड ३।२।२)

और वेद ने चाण्डाल को कुत्ता तथा शूकर के साथ परिगणित करके चाण्डाल वर्ग को श्वान शूकरवत् अस्पृश्य एवं त्याज्य बतलाया है—
अथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोहयत्तेकपूयांयोनिमापद्येरन् श्वयोनिंवा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिंवा॥
(सामवेदीय तवल्कार शाखाकाछान्दोग्य ब्राह्मण ७।१०।७)

१६—दुइ सुत सुन्दर सीता जाये। लव कुश वेद पुराणन गाये॥

वेद ने बतलाया कि सीता जी के दो पुत्र हुये, पुराणों ने उनका नाम लव और कुश बताया है। जिस तरह एक राम जी ने ही चार रूप से दशरथ-पुत्र रूप में अवतार लिया था उसी तरह सीता जी भी चार रूप में अवतरित हुई थीं, इसी से वेद ने चारों बहिनों के आठों पुत्रों को सीता जी का ही पुत्र कहा है—
अष्टौ पुत्रासो अदितिर्ये जातास्तन्वस्परि।
(ऋ० १०।७२।८ तै० आ० १।१३।२ तांड्यब्रा० २४।१२।६)

पंडिताग्रगण्य विद्वद्वरिष्ठ श्री नीलकण्ठ जी के भाष्य की हिन्दी वेदों में राम कथा में देखिये।

ऋग्वेद १०।११६ पूरे सूक्त के ऋषि लव ही हैं।

१७—"विप्रवेष धरि वेद सब कहि विवाह विधिदेहिं।"
"विप्रवेष धरि वेद तब आये जहँ श्री राम।"

वैदिक साहित्य का थोड़ा भी ज्ञान रखने वाला व्यक्ति वेदों को सामान्य पुस्तक मान कर कुरान, बायबिल या अलिफलैला फोस्ट क्रूसो आदि पुस्तकों के समान मानकर मानस कार को गाली न देता उनकी हँसी न उड़ाता। अधिदेववाद के तत्व को जानने वाला वेदों के शरीर धारण पर शंका ही नहीं कर सकता। यह ठीक है कि सामान्य पुस्तकें शरीर नहीं धारण कर सकतीं, परन्तु वेदाधिदेव के शरीर हैं उसके आंख, कान, नाक मुख आदि अवयव तो प्रसिद्ध ही हैं। वेद अपने वेष को परिवर्तित कर लेते हैं। वेदों के शरीर विवरण के लिये जिज्ञासुजनों को चरण व्यूह देखना चाहिये। चरण व्यूह में वर्णित है कि—

ऋग्वेदस्य ईतिः पत्नी, अयं रुक्मवर्णः, पद्म पत्रायताक्षः, सुविभक्त-ग्रीवः, कुंचित केशश्मश्रुः पिंगलाक्षः, प्रमाणेन पंचवितस्तिमात्रश्च।

यजुर्वेदस्यपत्नी धृतिः, अयं दीर्घ कपोलः ताम्र वर्णः, कांचन नयनः आदित्य वर्णः षट् प्रादेश मात्रश्च।

सामवेदस्य पत्नी शिवा अयं नित्य स्रग्वी शुचिवासाः, शमो दान्तो, दण्डी, कांचननयनः श्वेत वर्णस्तथाषडरत्नि मात्रः।

अथर्ववेदश्य पत्नी शक्तिः, अयंतीक्ष्णः, चण्डः कामरूपः क्षुद्रकर्मा, स्वशाखाध्यायी, विश्वात्मा, प्राज्ञः, महानीलोत्पल वर्णः दशारत्निमात्रः, स्वदार जुष्टः, परस्त्रियाः स्तन्यपश्चेति। (सम्प्रदायवृत्तम् पृ० १३, १४)

अधिदैववाद को समझने वाला इस तत्व को भली भाँति समझ सकता है। वेद के शरीर है और वेद ने ब्रह्म की विनती भी किया है। वेद स्तुति का मन्त्र केवल दिग्दर्शन के लिये दिया जाता है—

बोध मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयते त्वो अनुत्वो गृणाति बन्दासस्ते तन्वं वन्दे अग्ने॥

(ऋ० १।१४७।२, शु० य० १२।४२ तै० सं० ४।२।३।४ नि० ३।२०)

अर्थ—यविष्ठ ! = हे सदैव युवा रहने वाले भगवन् !, मे = मेरे, अस्य = इस, मंहिष्ठस्य = पूजनीय, प्रभृतस्थ = अच्छे प्रकार से सजाये हुए स्तोत्र को बोध = सुनिये, स्वधाव ! = हे सुन्दर रीति से प्रजा को धारण करने वाले (राजारूप) परमेश्वर !, त्वः = कोई तो, पीयते = आपकी निन्दा करता है और, त्वः = कोई, अनुगृणाति = आपकी स्तुति करता है। अग्ने ! = हे प्रकाश रूप प्रभो !, तेवन्दासः = हम वेद तो आपकी स्तुति करने वाले हैं। अतः, ते = आपकी, तन्वम् = मूर्ति को, आ = सम्यक् प्रकार से अर्थात् विधि पूर्वक, बन्दे = वन्दना करते हैं।

सर्वथा निराकारवादी आर्य समाज के स्वामी दयानन्द जी ने भी इस मन्त्र के अर्थ में "शरीरं अभिवादये" "तेरी शरीर की वन्दना करता हूँ।" लिखा है।

मालूम पड़ता है कि श्री रामचरित मानस में उद्धृत वेद स्तुति का—

ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं।

यह वाक्यांश इसी उपर्युक्त मन्त्र का भावानुवाद है।

१८—प्रलापी का प्रलाप है कि वेदों में कहीं भी श्रीराम कथा या राम-नाम नहीं है। उसने कभी वेदों को पढ़ा ही नहीं। [शिश्नोदर परायणता में अपना सारा जीवन बिताने वाला, परिवार पोषण के लिये चन्दा माँगने में व्यस्त रहने वाला अन्तिम आयु में वेदों को पढ़ भी नहीं सकता। ऐसे लोगों के लिये वेदों में श्री रामकथा एवं श्री राम नाम जानने के लिये सुगम साधन है कि वे विद्वद्वरेण्य श्री नीलकण्ठ सम्पादित एवं उन्हीं के भाष्य युक्त "मन्त्र रामायण नाम से ऋग्वेद के मन्त्रों का सङ्कलन देखें। यदि संस्कृत समझ में न आये तो हिन्दी टीका युक्त मन्त्र रामायण का परिवर्धित रूप इस वेदों में राम कथा को पढ़ें।] श्री राम नाम समन्वित कुछ वेद मन्त्र यहाँ दिये जाते हैं—

१—प्रतद्दुःशीमें पृथ्वाने वेने प्रामे अवोचम्।
(ऋ० १०।६३।१४)

२—सचन्तः यदुषसःसूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन।
(ऋ० १०।१११।७)

३—नक्तं जातास्य औषधे रामे कृष्णे पलक्नि च।
(अथर्व १।२३।१)

४—सु प्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋ०१०।३।३ साम, १५।२।३)

५—नास्य राम उच्छिष्टं पिवेत्०। (तैः आ० ५।८।१३)

६—अधोरामः सावित्र्य०। (शु० यजु माध्य० २६।५६)

इस छठें मन्त्र के सम्बन्ध में सामसंस्कार भाष्यकार का कहना है कि यजुर्वेद की यह सम्पूर्ण कण्डिका सूर्य वंशावतीर्ण श्री राम जी का ही कथन करती है (देखिये—तत्वदर्शी वर्ष ४ अङ्क ४ मार्ग शीर्ष १९९१ वि०)

१९—नट मर्कट इव सबहिं नचावत। राम खगेशावेद अस गावत॥

वेद प्रमाण—

शतेन पाशैरभिधेहि वरुणैन माते मोच्यनृतवाङ नृचक्षः।
आस्तां जाल्म उदरं श्रंसयित्वा कोश इवावन्धः परिकृत्यमानः॥
(अथर्व वेद ४।१६।७)

२०—भक्तहेतु लीला तनु गहई। जौं यह वचन सत्य श्रुति भाषा॥

श्रुति प्रमाण—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थे ब्रह्मणो रूप कल्पना॥
(अथर्व वेदीय राम पूर्व तापिनी उप० कन्डिका १ श्रु: ७)

अन्त में मैं श्री यास्काचार्य जी का एक वाक्य देकर औषधि रूप इस लेख को पूर्ण करता हूँ—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमंधो न पश्यति पुरुषापराधः स भवति

यथा जान पदीषु विद्यातः पुरुष विशेषो भवति पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयो विद्यः प्रशस्यो भवति ।

(निरुक्त नैगमकाण्ड १।५।१६।२)

यह उस पुरुष का अपना अपराध अथवा दोष है कि जिसको शास्त्रों का स्पष्ट अर्थ दिखाई नहीं पड़ता । यदि अन्धा व्यक्ति ठूँठ पेड़ या स्तम्भ को नहीं देख सकता तो ठूँठ का क्या अपराध यह तो उस अन्धे का अपराध है । जैसे देश में विद्या विशेष से पुरुष विशेष होता है, इसी प्रकार वेदज्ञों में जो विशेष विद्वान होगा उसी की प्रशंसा होगी, साधारण ज्ञान वालों कों विद्वानों में कौन पूछेगा ।

मैंने उस प्रलाप की पूरी औषधि बता दिया है, औषधि सेवन करके मस्तिष्क ठीक कर लेने से प्रलाप स्वयं ही बन्द हो जायगा, यदि औषधि सेवन ही नहीं करेगा और—

'सन्निपात जल्पसि मनुजादा ।' 'जल्पहिं कल्पित वचन अनेका ।'

न्यायानुसार प्रलाप चालू ही रहा तो उससे न तो मानस की प्रतिष्ठा कम हो सकती है न किसी आस्तिक प्राणी के हृदय से गोस्वामी जी ही उतर सकते हैं और न उनके अनुयायियों की ही कमी हो सकती है । श्री गोस्वामी जी के ही शब्दों में—

ईशशीश विलसति विमल तुलसी तरल तरंग ।
श्वान सरावग के कहे लघुता लहै कि गंग ।।
तुलसी देवलदेवके लागे लाख करोरि ।
काक अभागे हगि भर्‌यो महिमा भई कि थोरि ।।

(दोहावली)
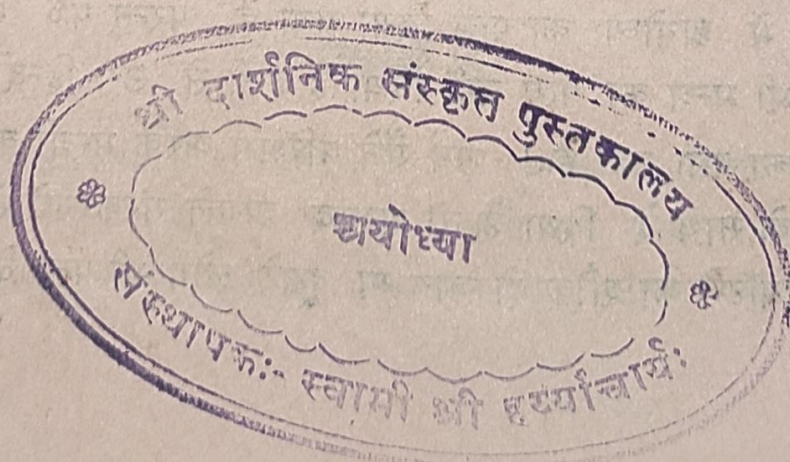
कटुसत्य

बहुतों को साहित्यिक चोरी करने का चस्का लग जाता है, किसी की कविता उड़ा लेना साधारण बात हो चुकी है। त्यागी विरक्त-साधु कहाने वालों को तो ऐसी मनोवृत्ति सर्वथा पतित कर देती है। कुछ लोग तो अपने परिचितों में प्रतिष्ठा पाने के लोभ से दूसरों की पूरी पुस्तक की पुस्तक अपने नाम से प्रकाशित करके बेंचते या बाँटते हैं। पण्डितराज स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज की 'त्रिरत्नी' पुस्तक को एक चित्रकूटी सज्जन ने अपने नाम से छपवा कर बाँटा था केवल पुस्तक का नाम एवं आकार बदल दिया था। असली लेखक की चर्चा ही नहीं की। अभी जब मैं इस पुस्तक को छपाने काशी जाने लगा तो परम श्रद्धेय स्वा० श्रीपरमानन्दजी जयपुर मन्दिर जानकी घाट ने एक मन्त्र रामायण की द्वितीयावृत्ति की छपी पुस्तक दी, उसे देखने से पता चला कि पं० श्री नीलकण्ठ जी के संस्कृत भाष्य मन्त्ररामायण का अनुपूर्वी अनुवाद है, आरम्भ में या मुख पृष्ठ पर अथवा भूमिका में कहीं भी उनका नाम नहीं दिया गया है। हाँ पुस्तक के अन्त में एक कोने में इस ढङ्ग से दिया गया है जिसका कोई अर्थ न हो। उसके बाद सबसे अन्त में तत्वदर्शी एवं केनोपनिषद्भाष्य के साथ प्रकाशित उपर्युक्त पण्डितराज स्वामी जी का लिखा "अथर्व वेद में अयोध्या" शीर्षक लेख दे दिया गया है (पहले संस्करण में नहीं था) परन्तु स्वामी जी की चर्चा नहीं गई है। इस लेख में स्वामी जी ने मन्त्रों का पता दिया है इसी से उस भाषाभाष्य नामक मन्त्रारामायण में अयोध्या का पता दिया गया है, परन्तु पं० श्री नीलकण्ठ जी ने किसी भी मन्त्र का पता नहीं दिया है इसी से उस हिन्दी मन्त्र रामायण में मन्त्रों का पता नहीं है। अब मैंने परिश्रम करके मन्त्रों का पता ढूँढ़ ढूँढ़ कर मन्त्रों के साथ दे दिया है तो शायद अगले संस्करणों में उन्हें पता देकर छापने बाँटने का शौक हो जाय या दूसरे लोग भी पता दे देकर छापने लगें

बिना परिश्रम मिल जाने पर क्यों छोड़े। चोरी पकड़ कर किसी के बोलने से भी क्या होता है—'एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयीभवेत् ।" तो पुराना फ़ार्मूला है। उस हिन्दी मन्त्र रामायण में नीलकण्ठी भाष्य का अनुवाद कर देने से "मघवा का अर्थ विडौजा" हो गया है। केवल हिन्दी वालों के लिये तो वह कठिन है ही संस्कृतज्ञ भी नीलकण्ठी भाष्य सुगमता से समझ सकते हैं, पर उसे नहीं। कारण कि हिन्दी गद्य और संस्कृत गद्य लिखने की रीति शैली ही भिन्न-भिन्न होती है। खेमराज बम्बई की छपी नीलकण्ठी मन्त्ररामायण में प्रेस के प्रेतों की कृपा से चार पाँच मन्त्रों में अशुद्धियाँ आ गई हैं, भाषाभाष्यकार के दोनों संस्करणों में ज्यों की त्यों वे बनी हैं। इसी तरह श्री जानकी चरण चामर पर मेरी सरला एवं रजः प्रच्छालिनी टीका छपने के पूर्व प्रकाशक महोदय यहाँ के कई विशिष्ट विद्वानों के पास हिन्दी टीका कराने गये पर लोगों ने परिश्रम से बचने किंवा अपनी असमर्थता छिपाने के लिये समयाभाव आदि का बहाना कर दिया था। अब सुनने में आता है कि उन्हीं में से कोई मेरी टीका का आकार प्रकार बदल कर अपना नाम टीकाकार में लिखाना चाहते हैं। मानसमणि आदि पत्रों में तो यदाकदा अपने पुराने मानस सम्बन्धी लेखों को परिवर्तित रूप में पाता ही हूँ। अस्तु ऐसे साहित्यिक चोरों महानुभावों से कहना यह है कि यदि इन सब की चोरी करें तो थोड़ा परिश्रम करके एवं चतुराई से करेंगे अन्यथा उन्हें मेरी त्रुटियों को भी लेकर उपहास पात्र बनना पड़ेगा।

डा० श्री गोवत्स जी अपने इतने अभिन्न हैं कि उनको अपने स्नेह से स्वयं भूमिका लिख देने के कारण धन्यवाद देना अपने हाथों अपनी पीठ ठोंकना है।

आलोचकों से

कोई भी लेखक समस्त पत्र-पत्रिकायें एवं पुस्तकें नहीं देखा करता, और न देख ही सकता है। इसलिए जो सज्जन "वादे वादे जायते तत्व बोधः" की दृष्टि से इस ग्रन्थ की चाहे जैसी भी आलोचना करें, उनसे अनुरोध है कि वे

अपनी आलोचना की एक प्रति रजिष्ट्री द्वारा लेखक के पास अवश्य भेंज दें जिससे लेखक उसकी प्रत्यालोचना करके उनके पास भेज दें।

विनीत

लेखक

श्री मद्गुरुचरण कमलेभ्यो नमः

श्री सीतारामाभ्यां नमः

श्री मते रामानन्दाय नमः

कलितिमिर दिनेशं तापहृत्तारकेशं
धृतनृप वर वेषं दिव्य लीला रसेशम् ।
असित घनसुकेशं शोभनं सन्निवेशं,
हरिहर हृदयेशं नौमि तं कौशलेशम् ॥

वेदकृत मङ्गलाचरण

ॐ ईषे ! त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा मावस्तेन, ईशत माघ शंशोध्रुवाऽ अस्मिन गोपतौ स्यात वह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ १ ॥ (शुक्लयजुर्वेद १।१)

ईषे	'ईषा लाङ्गल दण्डः, स्यात् सीता लङ्गल पद्धतिः' (अमरकेश) के अनुसार 'सीता' और 'ईषा' पर्याय हुआ। अतः 'ईषा' का सम्बोधन हुआ 'ईषे !' अर्थात् हे सीते !
ऊर्जे	आपकी माया से विजय पाने वाले पराक्रम के लिये
त्वा	आपकी वन्दना करता हूँ इसलिये कि
वायवःस्थ	वायुपुत्र हनुमान् जी के कन्धे पर स्थित होकर
देवः	क्रीड़नशील-दिव्यज्ञानानन्द मङ्गल विग्रह युक्त
सविता	सूर्य कुल के सूर्य श्री रामचन्द्र जी
वः प्र अर्पयतु	आपके प्रेमाधीन हैं उन्हें आप हमें (भक्तों को) प्राप्त कराइये।
इन्द्राय श्रेष्ठ तमाय*	सर्वैश्वर्य सम्पन्न श्री राम जी के, अन्त्यन्त श्रेष्ठ

* इन्द्र शब्द पर १२ मंत्र को देखिये।

कर्मणे	कर्म पूजन के लिये सर्वदा एवं सर्वथा
अघ्न्या	अवध्या अर्थात् गायों की वृद्धि करके उनके
भागम्	(गायोंके भाग) गव्य-दुग्ध, घृत, दधि आदि
आप्यायध्वम् वः	परिपुष्ट कीजिये बढ़ाइये और वे आपकी हैं एतदर्थं
प्रजावती	वे सवत्सा गायें कभी भी
अनमीवा	कृमिकीटादि जन्य सामान्य रोगपीड़ित न हों वे
अयक्ष्मा	यक्ष्मा आदि प्रबलतम रोगों से रहित हों उन्हें
स्तेनः ईशतः न	चौरादि चुराने में समर्थ न हों।
अघशंसः	पापी गण इन्हें किसी तरह कष्ट देने में
मा ईशतः अस्मिन्	समर्थ न हों। इस लोक में रहते हुये हमारी
गोपतौ	गो पालक (चराचर पालक) श्री राम जी में
ध्रुवाः	निश्चय सदैव रहने वाली प्रीति
स्यात् यजमानस्य	हो। आप अपनी दया से यज्ञकर्ता (उपासक) के
बह्वीः पशून् पाहि।	बहुत से पशुओं की रक्षा कीजिये ॥ १ ॥

अब पाँच ऋचाओं में संक्षेप से श्री राम चरित का वर्णन है। इस दूसरे मन्त्र में भी प्रश्नोत्तर द्वारा ईश्वर की स्तुति रूप मङ्गला चरण ही है—

(१) कं नश्चित्रमिषण्यसिचिकित्वान् पृथुग्मानं वाश्रंवावृधध्यै ।
कत्तस्यदातुशवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रंवृत्रतुरमपिन्वत् ॥ २ ॥
(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ९९ मन्त्र १)

	हे गुरो आप जिस पुरुष की
वा वृधध्यै	स्तुति करने के लिये
नः इषण्यसि	हमें प्रेरित करते हैं (उस स्तुत्य पुरुष की)
चित्रम् पृथुग्मानम्	रमणीयता निरतिशय ऐश्वर्य (और)
वाश्रम्	वर्णनीयशोभा को (आप)
चिकित्वान्	जानते हैं (कि वह चित्रादि गुणवाला पुरुष)
कम् तस्य शवसः	कौन है (और) उस पुरुष के बल के

व्युष्टौ कत् दातु — प्रकाश में (हमें) क्या दिया जायेगा (अर्थात् स्तुत्य कौन है और उसकी स्तुति से क्या फल होता है ? गुरू रूप श्रुति का उत्तर है कि—वह ईश्वर धर्मभूतज्ञान को संकुचित करने वाले महामोह)

तद्त्, बज्रम् — अज्ञान को, नाश करने वाला है, और

वृत्तुरम् — ज्ञान को सब प्रकार से

अपिन्वत् — विकसित करके परमानन्द देनेवाला है ॥ २ ॥

अब श्रुति स्तुत्य स्वरूप का दिग्दर्शन करा रही है कि—

(२) सहि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स नीडेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ।।३।।
(ऋ० १०।६६।२)

हि सः — परम प्रसिद्ध उस (घनश्याम पुरुष श्री राम) ने

विद्युता — विजली के समान कान्तिमती एवं जिस तरह तड़ित कभी भी मेघ से वियुक्त नहीं रहती वैसे सदैव घनश्याम सच्चिदानन्द श्री विग्रह के साथ रहनेवाली

द्युता, साम — अपनी दीप्ति मती शक्ति श्री सीता जी के साथ साथ

वेति — प्रस्थान किया (अर्थात् माता पिता की आज्ञा से श्री सीता जी को साथ लेकर श्री राम जी ने अयोध्या से दण्डकारण्य को गमन किया ।)

अस्य पृथुम् — इन श्री रामजी की, पृथ्वी से उत्पन्न

योनिम् — पत्नी (श्री सीता जी) को

असुरत्व — असुर कर्म अर्थात् चौर कर्म पूर्वक

आससाद — प्राप्त किया अर्थात् असुर रावण ने चुरा लिया ।

सः — उन श्री रामजी ने तब लंका में जाकर

सनीडेभिः — साकेत लोक में रहने वाले हनुमदादि पार्षदों के साथ

अस्य मायाः — रावण की (नाग पाशादि समस्त) आसुरी माया का

प्रसहानः — नाश कर दिया कि (क्योंकि)

ऋते	सत्य स्वरूप श्री रामजी को किसी की माया
न	नहीं लग सकती अर्थात् जो माया के वश हैं उन्हीं को दूसरे की माया बाधा दे सकती है, माया रहित-माया पति को नहीं। वह मायावी रावण कैसा थाकि,
सप्तथस्य	नारायण की सातवीं पीढ़ी में था (नाराथण, ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, पुलस्य । विश्रवा और तब रावण । इस तरह रावण सातवाँ वंशज है)
भ्रातुः	उसके भाई विभीषण को (श्री राम जी ने अपना)
साम ।	मित्र बनाया ।। ३ ।।

(३) स वाजं यातापदुष्पदायन् स्वर्षातापरिषदत् स निष्यन् ।
अनर्वा यच्छत दुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभिवर्पसाभूत ।।४।।
(ऋ० १०।९८।३)

सः	समस्त मायारहित श्री राम जी
अनर्वा	अश्व युक्त वाहनहीन अर्थात् बिना रथ के ही
अपदुष्पदायन्	समुद्र में सेतु बाँध कर लङ्का के
वाजम् यात	संग्राम में आ गये (उस संग्राम में)
स्वर्षाता	इन्द्रादि लोकों के विभाजक श्री राम जी
शिश्न् देवान् घ्नन्	कामुक रावणादिकों को मारकर
शतदुरस्य	सौ द्वार (इन्द्रियाँ-प्रत्येक शिर के दश इन्द्रिय के क्रम से रावण के सौ इन्द्रियाँ थीं) वाले रावण के
वेदः	धन अर्थात् लङ्का के राज्य को
सनिष्यन्	उसके भाई विभीषण को देकर
स परिषदत्	अपने परिजनों के साथ (शोभित हुये और
वर्पसा अभि अभूत ।।	अपने सच्चिदानन्द रूप से विराजमान हुये ।। ४ ।।

अब श्रुति पूर्व ऋचा में कथित 'अपदुष्पदायन' का विवरण करती है ।

(४) स यह्वयोऽवनीर्गोष्ववर्वा आजुहोति प्रधन्यासु सस्त्रिः ।

अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥ ५ ॥

ऋ० १०।६६।४।

यत्र	जिस जगह
घृतम्	क्षरण स्वभाव वाला अर्थात् उत्ताल तरङ्गों बाला
वाः, द्रोणी	जल है (जहाँ पर) नाव जहाज ही
अश्वासः ईरते ।	घोड़ों के समान गमन करती हैं । (और जहाँ पर)
युज्यासः	सखा लोग अर्थात् श्री राम जी के मित्र बानर गण
अरथाः	बिना सवारी के
अपादः	पैदल नहीं जा सकते थे ऐसे महार्णव समुद्र में
सः यह्वयः	उन श्री राम जी ने बहुत बड़ी
अवनीः	पृथ्वी की रचना कर
सस्त्रिः	पार करके अर्थात् दुर्गम समुद्र पर दश योजन (४० कोस) चौड़ा और सौ योजन (४०० कोस) लंबा पुल बाँध कर ससैन्य स्थल के समान उस समुद्र को पार करके
प्रधन्यासु गोषु	संग्राम योग्य भूमि अर्थात् समरांगण में
अर्वा आजुहोति ।	जाकर विजय करके बहुत प्रकार से दान एवं होमादि करते हुये पृथ्वी का पालन करने लगे ॥ ५ ॥

(५) स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारे अवद्य आगात् ।
वम्रस्यमन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥ ६ ॥

ऋ० १०।६६।५।

रुद्रेभिः	रुद्रावतार हनुमदादि बानरों की सहायता से
सः अशस्तवारः	वे श्रीराम जी प्रतिकूल काल अर्थात् वनवास काल और सामरिक काल को
हित्वी, मुषायन्	पार करके, चोर रावण के द्वारा हरण की गई
अन्नम्	पृथ्वी अर्थात् पृथ्वी रूपा श्री जानकी जी को

अभीत्य — प्राप्त किया। (प्राप्त करने पर दश मास रावण के घर रहने के कारण लोकापवाद के डर से श्री राम जी ने जब श्री सीता जी को कुछ दुर्वचन कहा तो श्री सीता जी)

अरोदयत् — रुदन करने लगीं (तो भी समस्त देवताओं के सामने श्री सीता जी को अग्नि में छोड़कर अपवाद रूप)

अवद्य आरे — उनके समस्त दोषों को दूर करके

ऋभ्वा — ऋत अर्थात् पातिव्रत रूप सत्य से प्रकाशमान देवी श्री सीता जी के सहित और

रुद्रेभिः — हनुमदादि वानरों के सहित अपने

गयम् आगात् — गृह (अयोध्या) को आये। (इसे)

वम्रस्य, मिथुनौ — महर्षि श्री वाल्मीकि जी के दो शिष्य अर्थात् कुशीलव वाल्मीकि जी से रामायण पढ़ कर सब लोगों में

विबब्रीः मन्ये। — प्रचार करेंगे। ऐसा हम अर्थात् वेद मानते हैं ॥६॥

श्रुतियों में अनेक स्थान पर 'अन्न' शब्द पृथ्वी के लिये भी व्यवहृत हुआ है। (दे० "ता अन्नमसृजन्त" छा० उ० "पृथ्वी वा अन्नम्।" तै० उ०)

(६) पितुर्मातुरध्या ये समस्वरन्नृचा शोचन्तः संदहन्तो अव्रतान्।
इन्द्रद्विष्टामपधमन्ति मायया त्वचमसिक्नीं भूमनो दिवस्परि ॥७॥

ऋ० ६।७३।५

पितुः मातुः ये — (संसारी) पिता और माता से भी जो

आ अधि — सब प्रकार से बढ़ कर महान हित करने वाला है (उस राम चरित्र को)

सम्, अ, स्वरन् — अच्छी प्रकार से खूब, कीर्तन करने पर वह राम-चरित्र सुनने एवं कीर्तन करने वालों के

अव्रतान् — हिंसक अर्थात् काम क्रोधादि आध्यात्मिक शत्रुओं का

सम् दहन्तः — अच्छी प्रकार से सर्वथा नाश करते हुये

मायया	मूलाविद्या के सहित, जो पापशरीर कि
इन्द्र	आत्मा का शत्रु है अर्थात् आत्मा को
भूमनः दिवः	भूलोक से (तथा) स्वर्ग से
परि, इन्द्र	परिच्युत कर नाना योनियों में पतित करके महान् कष्ट देता है उस, आत्मा से
द्विष्टाम् असिक्नीम् त्वचम्	द्वेष करने वाले तमोमय पाप शरीर को
अपधमन्ति ।	नष्ट कर देता है । उस रामायण का प्रथम
ऋचा	मन्त्र अर्थात् पहिला श्लोक— "मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः । यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ॥"
शोचन्तः ॥	शोक करते हुये (महर्षिवाल्मीकि के मुख से अना-यास प्रकट हुआ है ॥ ७ ॥

(७) प्रत्नान्मानादध्याये समस्वरञ्छ्लोक यंत्रासो रभसस्य मन्तवः ।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पंथां न तरन्ति दुष्कृतः ॥८॥
ऋ० ६।७३।६

प्रत्नान् मानात्	(जिसने सबसे) पुरातन प्रमाण से अर्थात् वेद से
अधि सम्	अधिक (अर्थात् वेद में जो यत्र तत्र सूत्र रूप से श्री राम चरित्र वर्णित है उसे वाल्मीकि जी ने दिव्य दृष्टि प्राप्त करके स्पष्ट रूप से विस्तार से साफ साफ वर्णन करते हुये अच्छी प्रकार से
अ, स्वरन्	खूब, कीर्तन किया (अर्थात् परम रमणीक
श्लोक	काव्य किया और उस काव्य के प्रत्येक) पद्य
यंत्रासः	यंत्र के समान प्रवृत्त हुये अर्थात् महर्षि वाल्मीकि के मुख से अनायास ही राम चरित्रात्मक पद्य निकलने लगे । (उन राम चरित्रात्मक श्लोकों को जो लोग नहीं पढ़ते सुनते वे चित्तरूपी नदी के)
रभसस्य, मन्तवः	वेगको अत्यन्त मान देनेवाले अर्थात् काम क्रोधादि से

अनन्धासः	अन्धे अर्थात् कार्याकार्य विवेकरहित और
बधिराः ऋतस्य	शास्त्र श्रवण रहित होने से सत्य के
पन्थाम् अहासत	मार्ग को दूर से ही त्याग किये रहते हैं अर्थात् सत्य के मार्ग पर नहीं चलते इसी से
दुष्कृतः	पाप से अर्थात् पाप के परिणाम स्वरूप नरक से
न तरन्ति ।	नहीं निकल सकते ॥ ८ ॥

(८) सहस्र धारे वितते पवित्र आ वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः ।
रुद्रास एषामिषिरासो अद्रुहः स्पशः स्वंचः सुदृशोनृचक्षसः ॥ ९ ॥
ऋ० ९।७३।७

सहस्रधारे	हजारों रूप से अर्थात् सब चराचर रूप में
आ	वाह्याभ्यन्तर सर्वत्र (अर्थात्— "यच्चकिंचिज्जगत्यस्मिन्दृश्यते श्रूयतेऽपिवा । अन्तर्वहिश्चतत्सर्वंव्याप्य नारायणः स्थितः ॥" इस श्रुति के अनुसार)
वितते पवित्रे	व्याप्त रहने वाले भगवान् के परम पवित्र चरित्र में
मनीषिणः कवयः	जितेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् तथा काव्य रचना में समर्थ (वाल्मीकि, व्यास, शिव, हनूमान् प्रभृति कवि लोग भगवद्गुण कीर्तन द्वारा अपनी
वाचं, पुनन्ति ।	वाणी को पवित्र करते हैं ।*
एषां, इषिरासः	उन कवियों में अद्भुत गति वाले (और)
अद्रुहः रुद्रासः	किसी से द्रोह न करने वाले, रुद्रावतार हनूमान् ने
स्पशः	सीतान्वेषक चार बन कर अपने
स्वंचः सुदृशः	सुन्दर गमन और सम्यक् परीक्षा द्वारा
नृचक्षसः ।	श्री सीता जी को (रावण की वाटिका में) देखा ।

---

* "कवि कोविद अस हृदय विचारी । गावहिं हरि यश कलिमल हारी ॥"
"कवि कुल जीवन पावन जानी । सीयराम यश मङ्गल खानी ॥
तेहिते मैं कछु कहा बखानी । करन पुनीत हेतु निज बानी ॥"

इस मन्त्र का भाव यह है कि श्री राम दास्यत्व की अधिकता के कारण (ब्रूमर्षि) बाल्मीकि के समान रुद्र (शिव, हनूमान्) ने भी रामायण की रचना की है। इसी तरह अन्यमनीषी कविगण भी श्री रामस्तव के द्वारा वाणी को और श्रीरामदास्यत्व के द्वारा देह को पवित्र करते हैं। इस प्रकार परमेश्वर में अपनी वाणी को लगा कर सफल एवं पवित्र करने वालों को क्या फल मिलता है? इसका वर्णन अगले मन्त्र में किया है—

(६) ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुस्त्री ष पवित्रा हृद्यन्तरादधे।
विद्वान् स विश्वा भुवनानि पश्यत्यवाजुष्टान् विध्यति कर्ते अव्रतान् ॥१०॥
(ऋ० ६।७३।८७)

सः	उपरोक्त मन्त्रानुसार जो इस प्रकार भगवद्गुण गान के द्वारा अपनी वाणी को शुद्ध करता है और उस ब्रह्मविद्या के प्रभाव से वह
ऋतस्य गोपाः	सत्य स्वरूप आत्म तत्व का रक्षक होता है (वह)
दभाय	दम्भ करके किसी को कभी किसी प्रकार का कष्ट देने के लिये कविता या अन्य प्रयास
न	नहीं करता। अतएव वह लोक में सर्वथा निर्भय रहकर अभय पद-मोक्ष प्राप्त करता है। क्योंकि वह
सुक्रतुः	श्री राम जी का परम शोभन ध्यान करता है अतएव
त्रीः पवित्राः	ज्ञान,* दया,† और शौर्य[] इन तीन पवित्र गुणों को
अन्तर्हृदि आदधे	हृदय में धारण करता है। इसी कारण
सः विद्वान्	वह व्यक्ति आत्मतत्वज्ञ होकर

* 'नहिज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।' 'नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना।'
† 'न दया सदृशोधर्मः।' 'धर्म कि दया सरिस हरियाना।'
[] 'लोकान्पुनन्तु रिपवोहि शस्त्र पूतान्।'
अतः अधर्मियों को निग्रह करना = दण्ड देना भी अनुग्रह रूप धर्म है। इसी से शौर्य को परम पवित्र गुण माना है।

विश्वा भुवनम्	सम्पूर्ण लोक अर्थात् ब्रह्माण्ड को
अभि पश्यति	पूर्ण रूप से देखता है अर्थात् सर्वज्ञ हो जाता है,
अजुष्टान् अव	और दीनों का अतिशत पालन करता है। तथा
अव्रतान्	कर्म और ब्रह्म अर्थात् लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट लोगों का
कर्ते	कृन्तन् अर्थात् छेदन करता है = दण्ड देता है तथा संग्राम में मारकर (उस पापिष्ठ का)
विध्यति।	उद्धार कर देता है ॥ १० ॥

(१०) ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिह्वाया॒ वरुणस्य मायया।
धीराश्चित् तत् समिनक्षन्त आशतात्राकर्तमव पदात्य प्रभुः ॥११॥
(ऋ० ६।७३।६)

इस मन्त्र में श्री हरिकथा में लगे हुओं की स्तुति और अन्यों भगवच्चरित्र विमुखों की निन्दा की गई है।

वरुणस्य	भोग एवं मोक्षार्थियों से वरणीय
ऋतस्य	सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्त करनेवाला अर्थात्
तन्तुः*	ऊर्ध्व गति के साधन स्वरूप श्री रामजी की कृपा से
मायया† आ	किया गया एवं अत्यन्त
विततः	विविस्तृत रूप श्री राम चरित्र
वरुणस्य	वरुणपुत्र प्राचेतस (भार्गव) महर्षि श्री वाल्मीकि की
जिह्वायाः अग्रे	जिह्वा के अग्रभाग में स्थित हुआ अर्थात् महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम चरित्र का गान किया, उस राम चरित्र एवं श्रीराम जी के
धीराश्चित्	श्रवण मनन निदिध्यासन में लगे हुए पुरुषाग्रगण्य

---

* 'स यथोर्णनाभिस्तंतुनोच्चैरौत्।' (मैत्राणीय)
'स यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णेत च।' (छां० उ०)

† माया वयुनम् ज्ञानम् (वै० नि०) मायादम्भे कृपायां च (कोश)

तत् समिनक्षन्त — लोग उस सर्वव्यापक परमात्मा को
आशत — प्राप्त करते हैं। और जो
अत्र — इस रामकथा में अपने श्रवण एवं जिह्वा के लगाने में
अप्रभुः — असमर्थ हैं अर्थात् अपनी इन्द्रियों को श्रीहरि चरित्र में नहीं लगाते वे लोग
अ, कर्तम् — अत्यन्त हिंसास्थान अर्थात् असिपत्रवन नामक नर्क में
अवपदाति। — पतित होते हैं ॥ ११ ॥

(११) तां सु ते कीर्तिं मघवन महित्वा यत् त्वा भीते रोदसी आह्वयेताम्।
प्रावो देवाँ अतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥ १२ ॥

(ऋ० १०।५४।१)

मघवन् — हे धनवान् = लक्ष्मीपते = सीतानाथ !
इन्द्र — हे परमैश्वर्यवान् = परमात्मन् !
ते ताम् सु — आपकी उस परम प्रसिद्ध शोभन-सुन्दर
कीर्तिं महित्वा — कीर्ति = सुयश का माहात्म्य पूर्वक वर्णन करता हूँ कि
यत् यत् भीतेः — प्रत्येक कल्प में जब जब राक्षसों से पीडित
रोदसी, त्वा — स्वर्ग और पृथ्वी की सम्पूर्ण सत् प्रजाओं ने त्राहि-त्राहि करके, आपका
आह्वयेताम् — आवाहन किया। तब तब आपने
देवान् प्र — देवताओं और महर्षियों का प्रकर्ष रूप से
अवः — पालन किया और
दासम् — जो पूर्व जन्म का दास जय विजय अथवा भानुप्रताप था वही दूसरे जन्म में रावण हुआ था उसको
ओजः — पराक्रम करके युद्ध में
अतिरः — तिरस्कृत किया अर्थात् वध कर दिया, और उसके बाद राज्य गद्दी पर बैठकर मनुष्य रूप से
तु, अस्यै — निश्चित रूप से अर्थात् अच्छी तरह से इस मर्त्य-

प्रजायै अशिक्षः । लोक की अन्य प्रजाओं को वर्णाश्रमादि धर्म की समुचित रूप से (स्वयं पालन करते हुये) शिक्षा दिया ॥ १२ ॥

इन्द्रमेकेऽ परे प्राणमपरे ब्रह्म शास्वतम् ॥ (मनुस्मृति १२।१२३)

वाल्मीकीय रामायण में श्रीराम जी के लिये ब्रह्मा ने कहा है कि—

प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदन ॥ (वा० रा० ६।११७।१७)

इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत ॥ १८ ॥

ऐसा ही "अस्यवामीय सूक्त" के मन्त्र का उद्‌घोष है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथोदिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १।१६४।४६)

ऋग्वेद १।३।४ के भाष्य में सायणाचार्य ने "इन्द्रः परमात्मा" कहा है और अथर्व वेद १।६।१ के भाष्य में भी सायण ने लिखा है कि—

इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तो देवानामधिपतिर्देवः, यद्वा इदंकारास्पदं विश्वंकारण भूतं ब्रह्मात्मानं अद्राक्षीदिति-इन्द्रः ॥

ऐत० उप० में "एषब्रह्मैव इन्द्रः" और शतपथ ब्राह्मण ६।५।१।३३ में "इन्द्रो यज्ञस्यात्मा" कहा है ।

मर्त्य स्वर्ग के उद्वेजक दास को मारना और प्रजाओं को समुचित रूप से धर्म शिक्षा देना श्री रामभद्र जी का ही कार्य है अन्य का नहीं । उपनिषद् भाग की श्रुति भी यही कहती है कि—

धर्म मार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः ।
तथाध्यानेन वैराग्यं ऐश्वर्यस्वस्य पूजनात् ॥ (रा० ता० उ०)

लोक प्रसिद्ध कश्यप पुत्र देवराज इन्द्र का बारम्बार दैत्यों से पराजित होकर भागना पाया जाता है, इससे यह श्रुति आदितेय सहस्राक्ष परक नहीं हो सकती किन्तु "इदि परमैश्वर्ये" (भ्वा० प०) धातु से (ऋजेन्द्राग्र वज्र विप्र........"उणादि २।२८" इति कर्तरिरन् प्रत्ययः इन्दति परमैश्वर्यवान् भवतीति विश्वकोशे) निष्पन्न इन्द्र शब्द परमात्मा परक होने से यह श्रुति श्रीराम परक

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः । हरिः पवित्रे अर्षति ॥ १३ ॥
(ऋ० ६।३।६। सामउत्त० २।५।४)

एष देवः हरिः	ये दिव्य स्वरूप हरि श्रीराम जी
प्रत्नेन जन्मना	पूर्वजन्म = इससे पहले अवतार में
देवेभ्यः सुतम्	सर्व देव जनक—प्रजापति कश्यप के पुत्र—वामन = उपेन्द्र थे, इस समय = (वैवस्वत मनु के चौबीसवें त्रेता में) परम पवित्र = सर्वथा निर्दोष कुल
पवित्रे ।	रघुवंश में अवतार ग्रहण करके विराजमान हैं ॥१३॥

वैसे ही इस समय भी आपका एक दास (भानुप्रतापादि में से कोई) राक्षस बन कर महान् उपद्रव कर रहा है । अर्थात्

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषम ॥१४॥

(अथर्व वेद ४।६।१।)

प्रथमः	पहिलेपहल (इसबार की सृष्टि में सर्वप्रथम एक ऐसा)
ब्राह्मणः जज्ञे	ब्राह्मण सन्तान उत्पन्न हुआ जिसके कि

ही है, अन्य परक नहीं । इन्द्र और राम शब्द पर्याय वाची शब्द हैं, क्योंकि "इरां अन्नं ददाति इन्द्रः ।" इरा पूर्वक दानार्थक डुदाञ् धातु से इन्द्र शब्द बनता है और "राति अन्नादि सर्व वस्तुजातं ददाति रामः ।" दानार्थक 'रा' धातु से राम शब्द बनने से दोनो शब्द (राम और इन्द्र) दातृत्व अर्थ में सिद्ध होकर पर्यायवाची हुए । ऐसे ही 'इन्धी दीप्तौ से इन्द्र शब्द और "राजृ दीप्तौ" से राम शब्द बनने से दोनों पर्याय वाची हुए, और इसी तरह "इदी परमैश्वर्ये" से इन्द्र शब्द तथा "रमु क्रीड़ायाम्" से राम शब्द, विना ऐश्वर्य के क्रीड़ा नहीं और क्रीड़ा ऐश्वर्य का द्योतक होने से भी दोनों (इन्द्र, राम शब्द समानार्थ एवं पर्यायवाची हैं । अतः आगे के जिन मन्त्रों में 'इन्द्र' शब्द आया है वह प्रायः राम का पर्यायवाची ही है, इसे स्मरण रखना परमावश्यक है ॥ १२ ॥

दशशीर्षः दशास्यः	दश शिर और दश मुख है
सः प्रथमः	वह दशानन पहिले तो देवताओं तथा ऋषियों से छीन कर
सोमम् पपौ	वेद मन्त्रानुष्ठान (तप) रूप अमृत पिया और फिर
सः रसम्	उसने ही उस मन्त्रानुष्ठानादि को
विषम् चकार ।	विष (जहर) कर दिया अर्थात् किसी को वेद मन्त्रानुष्ठान, यज्ञ, होम, पूजन पाठादि नहीं करने देता है ॥ १४ ॥

इस १४ वें मन्त्र का दूसरा अर्थ यह बताया गया है कि—

ब्राह्मणः	ब्रह्मर्षि विश्रवा ने अपनी कैकसी नाम्नी पत्नी से
प्रथमः	पहिले (प्रथम सन्तान के रूप में)
दशशीर्षः दशास्यः	दश सिर और दश मुख वाला पुत्र
जज्ञे,	उत्पन्न किया (अर्थात् रावण कैकसी का पहिला—
सः सोमम्	पुत्र था) उस (दश शिर) ने सोम अमृत का
पपौ	पान किया (अर्थात् वह योग क्रिया से अपनी नाभि में अमृत कुण्ड स्थापित किये था जिससे कि उसने)
विषम अरसम्	विष को अरस (निः शक्त)
चकार ।	कर दिया था अर्थात् वारवार शिर कटने पर भी मरता नहीं था ॥ १४ ॥

रघुपति शर शिर कटेहु न मरई ।
नाभि कुण्ड पियूष वस याके । नाथ जियत रावण बल हाके ॥

यावती द्यावा पृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिंधवो वितष्ठिरे ।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥ १५ ॥

(अथर्व ४।६।२)

द्यावा पृथिवी	आकाश और पृथ्वी
वरिम्णा यावती	अपने विस्तार से जितनी बड़ी है
सप्त सिन्धवः यावत्	और सातो समुद्र जितनी दूर तक

वि-तस्थिरे	फैले हैं, उतने विस्तार तक
विषस्य	विष स्वरूप दशास्य रावण की
दूषणीं वाचम्	दूषित वाणी-धर्म विरोधी आज्ञा फैली है
तां (वाचम्)	उस (रावण की दूषित एवं प्रवल वाणी का)
इतः निर्	इस संसार से नाश करने के लिये
अवादिषम् ।	प्रार्थना करते हैं—हम देवता गण ॥ १५ ॥

भुजबल विश्व वश्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र ॥

देवता और ऋषियों ने जिस प्रकार परमात्मा का आवाहन किया था उसे स्पष्ट रूप से यह मन्त्र बतला रहा है।—

(१२) आसूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घपांथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् १६
(ऋ० ५।४५।६)

दीर्घपांथे	इस महान संसार मार्ग में अवतार लेकर लीला करने के लिये
अस्य उर्विया	इस परमात्मा को श्रेष्ठत्व रूप से अत्यन्त अभिमत
यत् क्षेत्रम्	जो श्याम सुन्दर द्विभुज धनुर्धर शरीर है वह शरीर
सप्ताश्वः	सात घोड़े की रथ पर चलने वाले जो
सूर्यः	सूर्य हैं (उन सूर्य के वंश में)
आयातु	आवे अर्थात् अवतरित हो (किन्तु बहुत शाखाओं
रघुः	में विस्तृत सूर्य वंश में भी) रघुबंशी होकर
श्येनः	पक्षी रूप वह ब्रह्म लौकिक मनुष्यों के समान
अन्धः अच्छा	अन्नमय पिण्ड की ओर
पतयत्	झुके अर्थात् मनुष्यवत् आहार विहार करे और वह–
कविः, आ	सर्वज्ञ परमात्मा राजा—मनुष्य रूप में भी सदैव
युवा	युवक ही बने रहकर शाशक रूप से सम्पूर्ण
गच्छन्	भू-प्रदेश में विचरते हुये

दीदयत्।	प्रकाशित होता रहे अर्थात् रघुवंश में शरीर धारण करके हम लोगों की रक्षा करे।

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि—

सूर्यः	सूर्यवत् सर्व प्रकाशक ज्ञान स्वरूप "द्वासुपर्णा" (ऋ० १।१६४।२ अ० ६।६।२० इस श्रुति के अनुसार)
श्येनः	पक्षी = ईश्वर "तद्धावतोऽन्यानत्येति" इस श्रुति के अनुसार
रघुः आयातु	शीघ्र गामी वह ब्रह्म नरलोक में आवे। वह ज्ञान स्वरूप
कविः	सर्वज्ञ परमात्मा ज्ञान बल से इस मर्त्य लोक में अवतीर्ण होने पर भी सनकादिवत् सदैव एक अवस्थापन्न (युवा) रहते हुए लोकों पर कृपा करे। और
सप्ताश्वः।	यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान नामक समाधि के सात अंग जिसकी प्राप्ति (आगमन) के साधन हैं। उस ब्रह्म का नाम सप्ताश्व है। (अन्य अर्थ पूर्ववत)।

"आश्रृण्वतीण्यः" आज्ञाकारी समुद्र अर्थात् समुद्र के नियन्ता इस तरह अन्य मन्त्र में 'रघु' पद सम्यक् प्रकार से श्री रामजी में ही संघटित होता है अन्य में नहीं यद्यपि कि समुद्रनियन्ता अगस्त्य भी हैं पर अन्य बातें अगस्त्य में न घटित होने से "आश्रृण्वतीण्यः" की तरह "आसूर्योपातु०" मन्त्र भी रघुकुलावतीर्ण दाशरथी राम परक ही है अन्य परक नहीं ॥१६॥

अब दो मन्त्रों में राजा दशरथ जी की मनः कामना श्रुति कहती है कि—

(१८) अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजाश्रव इच्छमानः ॥१७॥

(ऋ० १।१२६।१ नि० ६।१०)

अतूर्तः श्रवः	किसी को किसी प्रकार का कष्ट न देते हुये सत्कीर्ति की
इच्छमानः राजा	इच्छा करते हुये राजा दशरथ ने

मनीषा सवान्	इस संकल्प से यज्ञ का समारोह किया कि
यो मे सहस्रस्य	जिन पितृगणों ने मुझको हजारों प्रकार का
अमिमीत	ऐश्वर्य दिया है अर्थात् यह सैकड़ों प्रकार के विभवों से युक्त सम्पूर्ण भूमण्डल का राज्य मुझे पूर्वजों का दिया हुआ ही प्राप्त है, उन
भाव्यस्य	पितृगणों के (पिण्डोदक के लिये ऐसे)
स्तोमान्	स्तूयमान प्रशंसनीय-यशस्वी पुत्रों को
प्रभरे	प्राप्त करूँ जो कि पूर्ण बुद्धिमान (ज्ञानी) हों और
सिन्धौ अधि	समुद्र के ऊपर भी अधिक (पूर्णरूप से)
क्षियतः ।	ऐश्वर्य प्राप्त करें अर्थात् समुद्र दमन में सर्व प्रकारेण समर्थ हों ॥ १७ ॥

(१९) उप मा श्यावाः स्व नयेन दत्ता वधूमन्तः दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनुगव्यमागात सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम्॥१८॥

स्व, नयेन	(जो प्रत्येक पुत्र) अपने सत्पुरुषार्थ से
वधूमन्तः	वधू प्राप्त करके अर्थात् सपत्नीक होकर प्रत्येक पुत्र
श्यावाः दश रथासः	श्यामकर्ण अश्वों से युक्त दश १० रथों को लेकर
मा उप अस्थुः	मेरे समीप उपस्थित हों, और प्रत्येक रथ के
अनु षष्ठिः सहस्रम्	पीछे-पीछे साठ हज़ार
गव्यम् अगात्	गायों का झुण्ड मेरे पास आकर
दत्ताः सनत्	मुझे दें। जिन गायों और रथों के समूह रूप धनों को
कक्षीवान्	पुत्र कामना वाला मैं (दशरथ)
अह्नाम् अभिपित्वे ।	यज्ञ में (ईश्वर प्रीत्यर्थ) सत्पात्रों को दूँ ॥ १८ ॥

जब राजा दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के संकल्प से अश्वमेध की तैयारी की तब उन्हें सन्देह हुआ कि ये कोमलाङ्गी रानियाँ मेरे साथ यज्ञ मण्डप में रहकर यज्ञीय अश्व की रक्षा का व्रतपालन सम्यक् प्रकार कर सकेंगी या नहीं, ऐसा सन्देह होने पर बड़ी रानी ने कहा कि—

(२१) उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥१६॥
(ऋ० १।१२६।७॥ ति० ३।२०)

मे उपोप	हमारे विषय में हम लोगों के लक्षणों से
परामृश	विचार कर लीजिये कि ये रानियाँ दृढ़व्रता हैं या नहीं और आप विना हमलोगों की परीक्षा लिये ही
मे दभ्राणि	मेरे व्रत में ये रानियाँ अर्धस्थित—असमर्थ हैं, ऐसा
मा मन्यथा	मत समझ लीजिये, किन्तु यह निश्चय रखिये कि
गंधारीणाम् अविका	गंधार देशोत्पन्न भेड़ों की रक्षा जिस प्रकार की
इव अहं सर्वा	जाती है उसी तरह मैं एवं हम सब रानियाँ
रोमशा	बड़े-बड़े अयाल वाले यज्ञीय अश्व की रक्षा में सर्वथा
आस ।	समर्थ हैं ॥ १६ ॥

जब पुत्रेष्ठी यज्ञ के लिये श्री बशिष्ट जी की आज्ञा हुई कि—

सरज्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्, (वा० उ०)

तो यज्ञभूमि को परिष्कृत करते हुए यज्ञरक्षार्थ ऋत्विजों ने श्री सरयू जी का वरण निम्न मन्त्र से किया—

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो मही रवसा यन्तु वक्षणीः ॥ २० ॥
(ऋ० १०।६४।६)

सरस्वती, सिन्धुः	निर्मल जल एवं बहुत विस्तृत धारवाली
सरयुः	श्री सरयू जी (यहाँ सरस्वती तथा सिन्धुः दोनों सरयुः का विशेषण है ।)
महीरवसा ऊर्मिभिः	बहुत गम्भीर शब्द एवं महती तरङ्गों द्वारा
वक्षणीः	हमारे यज्ञ की रक्षा करने के लिये
महः यन्तु ।	पूज्य (अधिष्ठातृ) रूप से उपस्थित हों ॥ २० ॥

दशरथ जी के दूसरे पुरोहित वामदेव ने इन्द्र को समझाकर कहा कि—

उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णा चित्र रथावधी ॥२१॥
ऋ० ४।३०।१८

इन्द्र ! उत त्या	हे देवराज इन्द्र ! आप
सद्यः सरयोः	शीघ्र ही सरयू के
पारतः	उस पार (उत्तर किनारे जहाँ यज्ञभूमि निर्माण की जा रही है उधर) से मायामयी, विचित्र (अद्भुत)
अर्णा, चित्र	
रथा	रथ पर आने वाले विघ्नकर्ता असुरों की मायामयी रथों को
अवधीः।	नाश कर दीजिये, जिससे वे विघ्न करने के लिये यज्ञस्थल तक पहुँच ही न सकें।

वेद में सरयू को सर्वत्र ह्रस्व उकारान्त (सरयु) माना गया है इसी से यहाँ षष्ठी के एक वचन का रूप 'सरयोः' दिया है। (ऋ० ५।१३।६ और १०।६४।६) में भी 'सरयुः' ह्रस्व उकारान्त आया है ॥ २१ ॥

सब नदियों का जल लाने के लिये भेजते हुये धावनों को महर्षि अत्रि ने समझाया कि—

मा वो रसाऽनितभा कुभाक्रमुर्मा वः सिन्धुर्निरीरमत्।
मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिण्यस्मेइत् सुम्नमस्तु वः ॥ २२ ॥

(ऋ० ५।५३।६)

वः रसा, अनितभा,	तुम लोगों को रसा अनितभा तथा
क्रमुः कुभा, सिन्धुः मा	क्रमु कुभा और सिन्धु आदि नदियाँ मत
निरीरमत्	रमालें अर्थात् वहाँ अधिक समय मत लगाना।
पुरीषिण्यः	(तथा) अयोध्या पुरी की हित चाहने वाली
सरयुः वः	सरयू जी की धारा तुम लोगों को
मा परिष्ठात्	आलसी मत बना ले अर्थात् सरयू जल से आनन्दित होकर कर्तव्य को मत भूल जाना। यह यज्ञ सुचारु रूप से सिद्ध हो जाने पर ही
अस्मे, वः सुम्नम्	हमें, तुम्हें, सब लोगों को सुख
इत् अस्तु	ही होगा यह निश्चित है ॥ २२ ॥

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम्॥ २३॥
ऋ० १।६।४ साम उत्त० ४।२।८

आत् अह — यज्ञ के विभिन्न कर्म पूर्ण हो जाने और
स्वधाम् अनु — विधि पूर्व हवनादि कार्य हो जाने के बाद
यज्ञियं नाम दधाना — यज्ञ सम्बन्धी अनेक नामों को धारण करने वाले-यज्ञ पुरुष परमात्मा ने, सर्व व्यापक होते हुये भी
पुनः गर्भत्वंएरिरे। — पुनः गर्भ में आने का निश्चय किया॥ २३॥

भक्ति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अगिन चरू कर लीन्हे॥
"तिन के गृह अवतरिहौ जाई।" जा दिन ते हरि गर्भहिं आये॥

राजा दशरथ ने यज्ञान्त में ऋत्विजों की जैसी सत्कार पूर्ण बिदाई किया उसका वर्णन श्रुति करती है कि—

(२०) चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥२४॥
ऋ० १।१२६।४

दशरथस्य — राजा दशरथ के यज्ञ से विदा होकर ऋत्विक् लोग जब अपने स्थान के लिये प्रस्थान करने लगे तब
सहस्रस्य अग्रे — उन हजारों ऋत्विजों के प्रत्येक के आगे आगे उन्हें दान में मिले हुये
अत्यान् चत्वारिंशत् — बड़े वेग वाले चालीस अर्थात् कुल चालीस सहस्र
शोणाः — लाल रङ्ग के श्यामकर्ण घोड़े और इतने ही
कृशनावतः मदच्युतः — अत्यन्त सुशिक्षित मतवाले गजेन्द्रों की
श्रेणिम् नयन्ति — पंक्ति को सेवकगण ले चलते हैं। तथा
कक्षीवन्तः — पुत्र कामना वाले राजा दशरथ जी
उदमृक्षन्त पज्राः। — अत्यन्त प्रेमपूर्वक दूर तक पहुँचाने गये॥ २४॥

अवधपुरी रघुकुल मणि राऊ,। वेद विदित तेहि दशरथ नाऊ॥
श्याम करण अगणित हय होते। ते तिन रथन सारथिन जोते॥

इस प्रकार महाराज दशरथ जी ने सभी ऋत्विजों को विदा कर दिया और अग्नि दत्त ब्रह्मचरु को निमित्त बनाकर जब श्री राम जी अवतीर्ण हुये तो बाल लीला देखने आये हुये देवता लोग भगवद्दिव्यविग्रह को गर्भ में धारण करने वाली माता श्री कौशल्या जी की स्तुति प्रशंसा कर रहे हैं कि—

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥ २५॥

अथर्व० १।२३।१

नक्तंजातास्या ओषधे !	हे चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा भगवद्दर्शन से त्रिताप को दूर करने वाली अथवा सर्व दोषों का नाश करने वाली
असिक्नि !	हे मृत्यु से दूर रहने वाली चिर सङ्गिनी !
रजनि।	हे स्वपति महाराज दशरथ जी को अनुरञ्जन कराने वाली अथवा श्री राम जी को जन्म देने वाली श्री कौशल्या जी !
इदम् किलासम्	इन क्रीड़ा को त्याग देने वाले
यत च पलितम्	जो सफेद केश वाले हैं उन वृद्ध दशरथ जी को
रामे, कृष्णे	श्याम वर्ण वाले अपने पुत्र भगवान् श्री राम में,
रजय।	आसक्त बना दो अथवा 'रामे कृष्णे' सप्तमी हैं 'जाते' का अध्याहार करना है अतः श्याम स्वरूप भगवान् श्री राम जी के प्रगट होने पर वृद्ध दशरथ जी को आप प्रसन्न कीजिये॥ २५॥

इस मन्त्र का तात्पर्यार्थ लिखने के प्रथम वेदोपनिषद् भाष्यकार 'पंडित राज' स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महाराज इस मन्त्र का शब्दार्थ इस तरह लिखते हैं—

'ओष अथवा 'दोष' उपपद रख कर 'धेट' धातु से कर्ता में 'कि' प्रत्यय होकर 'ओषधि' शब्द बनता है। 'ओष' का अर्थ है 'दाह'। 'दाह' शब्द से सांसारिक त्रिविधि ताप का ग्रहण है, अतः 'ओषंधयति' जो त्रिविध ताप को

पान कर जाय अर्थात् नाश कर दे उसका नाम 'ओषधि' है। 'दोष' शब्द उप पद रखकर बनाना हो तो 'दकार' का लोप कर देना चाहिए। तब दोषं धयति' यह विग्रह होगा। 'नक्तंजातास्या' एक पद है। 'नक्तंजात' चन्द्रमा का नाम है। 'किलास' में दो शब्द है 'किल + आस'। क्रीडनार्थक 'किल' धातु से किल शब्द बनता है। 'किलम् अस्यास्तीति किलासः' जो क्रीड़ा को दूर कर दे उसे 'किलास' कहते हैं। 'पलित' का अर्थ है सफेद केश। 'पलित' शब्द से तद्धित का 'अच्' प्रत्यय करने से 'पलित' का अर्थ श्वेत केश वाला होता है। 'रजनि' शब्द का अर्थ पति को रमण कराने वाली स्त्री है अथवा 'रकारार्थोरामः' आचार्य के इस वचनानुसार 'र' का अर्थ राम है। 'जनि' का अर्थ जन्म है (अतः) राम का जन्म जिससे हुआ है उसका नाम 'रजनी' है। 'ई' स्त्री प्रत्यय है अतः यहाँ तात्पर्य कौशल्या जी से है। सम्बोधन का रूप है। 'असिक्नि' का अर्थ है जिस स्त्री के केश सफेद न हुये हों। केश श्वैत्य मृत्यु का परिचायक है, अतः यहाँ पर कहने से तात्पर्य है कि जिसकी मृत्यु अभी बहुत दूर है। यहाँ भी तात्पर्य कौशल्या जी से ही है।

इस प्रकार शब्दार्थ समझ लेने से मन्त्रार्थ बहुत सुगम हो गया।

(तत्वदर्शी ४।४।७०)

माता के गर्भ में कैसे प्रवेश किया ? तो इस पर श्रुति कहती है कि देवताओं ने प्रार्थना किया कि हे प्रभो !

कृष्णं त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामिदेकम्।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ २६ ॥

ऋ० ४।७।६

ते पुरः यत्	आपका प्रथम (नित्य धाम साकेत) वाला जो
कृष्णम्	श्याम स्वरूप सुभाय सुहावन सच्चिदानन्द मय
भा	कान्तिमान् श्री विग्रह। (चिदानन्दमय देह तुम्हारी) है
तत् ते एम्	उसे आपकी कृपा से हम सब प्राप्त (दर्शन) करें।
एकं इत् अर्चिः	जो आपका ज्वालावत् एक अंश मात्र

वपुषाम्	समस्त ब्रह्माण्ड रूप आपके शरीर में
चरिष्णुः	व्याप्त होकर भोक्ता रूप से धारण किया है। 'सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥)
यत् कृष्णं भा	जो श्याम रूप की सच्चिदानन्द कान्ति है उसे
अ प्रवीता	प्रकर्षरूपेण (गर्भभरालसत्वके कारण) गमन नहीं हो सकता ऐसी असूर्यम्पश्या महल निवासिनी (मन्दिर महँ सब राजहिं रानी) महारानी श्री कौशल्या जी ने
गर्भं दधते	अपने गर्भ में धारण किया "जा दिन ते हरि गर्भहिं आये" "सो मम उर वासी यह उपहाँसी।" कौशल्याऽजनयद्रामंदिव्य विग्रह संयुतम् ॥ वा० रा०
ह	ऐसा पूर्व से ही प्रसिद्ध है अतः
चित् जातः	सच्चिदानन्द स्वरूप आप गर्भ से जन्म लेकर
सद्यः इत् उ चित्	शीघ्र ही निश्चय रूप से संसार के
दूतः भवसि।	खेद दूर करने वाले हों ॥२६॥

श्रुति बतला रही है कि ब्रह्म के चार रूप से तीन माताओं से अनायास प्रगट हो गये—

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन्।
उरु क्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्नमर्द्धन्ति युवतयो जनित्री ॥ २७॥

ऋ० ३।५४।१४

स्तोमासः	प्रार्थना करने वाले भगवदनन्य महान् लोग जो
अर्काः	सूर्य के समान तेजस्वी हैं वे
यामनि	भक्तजनों को प्रेमामृत वितरण में तत्पर
पुरुदस्मम्	बहुत से विघ्नों और दुष्टों को नाश करने में समर्थ
विष्णुम्	सर्वव्यापक श्री राम जी को
भगस्य—	धन के निमित्त कार्यकर्त्ता—
कारिणः इव	कमाने वाले अर्थात् पुत्रों के समान

ग्मन्।	प्राप्त किये। अर्थात् जहाँ कोई पुत्र भाव से, प्रेमाधिक्य के कारण वस्त्रालङ्कार आदि से भगवान् को सजाता पूजता है, वहीं कोई दण्ड भय से शाशक के समान भी। (आराधन का रूप एक है केवल भावना में भेद है।)
यस्य क्रमः	जिसका पराक्रम–पाद विक्षेप
उरु	महान् है अर्थात् जिसने वामनावतार में त्रिलोकी का आक्रमण किया—"जेहि किय जग तिहुँ पगहुँ ते थोरा।"
(सः) ककुहः	वह सर्व दिग्व्यापी जब जन्म अवतार लेता है
युवतीवः जनायित्री	तो उसकी युवती मातायें, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा
पूर्वी	उसके जन्म लेने से पूर्व—
न मर्द्धन्ति।	पीड़ा नहीं प्राप्त करतीं अर्थात् उन माताओं को गर्भ धारण के नौ मास एवं प्रसव काल में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ है ॥२७॥

(१३) स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारु विभृत ओषधीषु।
चित्रः शिशुः परितमांस्यक्तून् प्रमातृभ्योऽधिकनिक्रदद्गाः ॥ २८॥

"अग्रे नयतीत्यग्निः" सर्व नियामक होने से ब्रह्म का नाम अग्नि है और "यस्य अग्निः शरीरम्" इस श्रुति के अनुसार अग्नि ब्रह्म का शरीर है अतः इस मन्त्र में अग्नि शब्द से ब्रह्म कहा गया है—

अग्ने!	हे परमात्मन्! आप
रोदस्योः	पृथ्वी और आकाश के मध्य में अर्थात् आप से आप हुये* न कि माता पिता के शोणित शुक्र रजवीर्य रूप से परन्तु दिखाने के लिये
गर्भः जातः असि	कौशल्या के गर्भ से जायमान अर्थात् प्रकट हुये हो
ओषधीषु	अर्थात् अग्नि के दिये हुए चरुरूप ओषधि में

* 'आपु प्रगट भये विधि न बनाये।'
"इच्छामय नरबेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥"

विभृतः	मन्त्र वेत्ताओं-बशिष्ठ ऋष्यश्रृङ्गादिकों से
कनिक्रदत् तमांस्यक्तून	आवाहन किये जाने पर तमो मोहमयी रात्रि को
प्र परि चारु	प्रकर्ष रूप से नाश करने के लिये सुन्दर तथा
चित्रः शिशुः	अनेक आश्चर्यमय अद्भुत बालक बनकर
मातृभ्यः	कौशल्या, कैकेई एवं सुमित्रा ३ माताओं के गृह में चार
अधिगा ।	रूप से प्राप्त हुए । प्राप्त हुए ।

इस मन्त्र में दिखाया गया है कि यज्ञाग्निप्रदत्त चरु प्राशन मात्र से गर्भ धारण करने से श्री रामादि चार रूप से परमात्मा का अवतार होना अलौकिक जन्म हुआ ॥ २८ ॥

पूर्व मन्त्रोक्त चरु प्राशनानन्तर कार्य का स्पष्टीकरण इस मन्त्र में किया जा रहा है—

(१४) विष्णुरित्था परमस्य विद्वान् जातो बृहन्नभियाति तृतीयम् ।
आसायदस्यपयोऽकृत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥ २९ ॥
(ऋ० १०।१।३)

इत्था विष्णुः	क्षीराब्धीश श्री मन्नारायण इस प्रकार
अस्य	अग्नि प्रदत्त चरु रूप गर्भ से
परमम्	मेघनादादि राक्षसों के वध रूप उत्कृष्ट कार्य को
विद्वान् जातः	जानकर (सुमित्रा के गर्भ से) जायमान हुए अर्थात्
बृहन्	विराट होते हुए भी
तृतीयम्	तीसरी माता सुमित्रा से प्रगट होकर तथा भाइयों में तीसरे होकर अर्थात् राम और भरत से छोटे होकर लक्ष्मण रूप से
अभियाति	शरीर धारण किये अर्थात् श्री लक्ष्मण जी अपने
अस्य आसायत्	इस विग्रह के भजन करने वालों को
स्वम् पयः	अपने क्षीराब्धि वैकुण्ठ का वास
अकृत । सचेतसः	प्राप्त करा देते हैं । इसलिये बुद्धिमान लोग
अत्र	इस लक्ष्मण रूप में भी श्रद्धापूर्वक

अभ्यर्चन्ति । नारायण (विष्णु) का पूजन करते हैं ।

इससे यह तात्पर्य निकला कि जितने भगवदवतार होते हैं उन सबका मुख्य प्रयोजन भक्तानुग्रहत्व ही है, दुष्ट निग्रह तो भक्तानुग्रह का शेष भूत होने से गौण है ॥ २६ ॥

शङ्का की जा सकती है कि मायिक संसार में जन्म लेने से वह परमात्मा भी संसार के दुःख सुख में लिप्त हो जाता होगा अर्थात् उसे भी माया अपने में फँसा लेती होगी, इसके समाधान में श्रुति बतलाती है कि—

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरिगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३० ॥

(ऋ० १।१६४।३२ अथर्व ९।१०।१० नि० २।८)

यः ईम्	जिस ब्रह्म ने इस सारे विश्व की रचना अपने मन से
चकार,	(योग माया द्वारा) सङ्कल्प मात्र से किया है
स अस्य	वह परमात्मा इस संसार के वृद्धि विनाश जन्य दुख
न वेद	सुख की भावना को नहीं प्राप्त करता, और
यः ईम्	जो परमात्मा इस सारे विश्व को सर्व प्रकारेण
ददर्श	देखता है अर्थात् सर्व साक्षी-सर्वद्रष्टा सर्वान्तर्यामी,
तस्मात्	सर्वव्यापक है । तो भी वह उस सारे प्रपञ्च से
नु हिरिक्	निश्चित रूपेण पृथक् है—निर्लिप्त है ।
स मातुः योना-	वह परमात्मा माता के गर्भ के
अन्तः परिवीता	मध्य में जरायु से वेष्टित होकर
निर्ऋतिम् आ विवेश	पृथ्वी पर आया । वह यहाँ आकर कैसे रहा ! तो
बहु प्रजाः ।	बहुत बड़ी प्रजा—समस्त भूमण्डल का पालक होकर रहा । "सप्त भूमि सागर मेखला एक भूप रघुपति कौशला ।" ॥३०॥

(१५) अत उ त्वा पितु भृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्य रूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥३१॥

(ऋ. १०।१।४)

हे प्रभो आप जो चार रूप से अवतीर्ण हुए यह आपकी एक मात्र कृपा के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है—

अतः भृतः	इसलिये सारे जगत के भरण करने वाले
पितु, जनित्री	पिता और माता तथा
अन्नावृधम् त्वा	पोषक रूप आपको सारे ज्ञानी लोग
अन्नैः प्रतिचरन्ति	अन्नक्षीरादि पूजन सामग्रियों द्वारा* पूजते हैं।
त्वम्	आप माताओं के पूर्व जन्म के आराधन से प्रसन्न होकर तीन माताओं से प्रगट होकर
पुनः	पश्चात् उन्हीं माताओं को
अन्यरूपाः	आराध्य मानकर पुत्र भाव से उनका
प्रत्येषि	आराधन = सेवा करते हैं। क्योंकि
त्वम् मानुषीषु	आप अपने चरित्रों द्वारा मनुष्य लोक की
विक्षु होता असि।	प्रजाओं में यज्ञधर्मादि सदाचार के प्रवर्तक हैं

अन्य श्रुति भी कहती है कि—"धर्म मार्ग चरित्रेण०"

इस मन्त्र में यह बताया गया है कि भगवान् भी अवतार लेकर माता को देवतावत् मानते हैं अतः सबको "मातृदेवोभव" इस श्रुत्यनुसार माता को देवतावत् मानना चाहिये ॥ ३१ ॥

(१६) तिस्रोमातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेम वग्लापयन्ति।
मंत्रयन्ते दिवो अमुष्यपृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥३२॥
(ऋ० १।१६४।१०, अथर्व ९।९।१०)

एकः	तत्वतः एक होते हुए भी चार रूप से
तिस्रः	कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा इन तीन नाम वाली
मातॄः	तीन माताओं से और

---

* हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत।
स दाधार पृथिवीं द्यां उतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(शु० य० १३।४)

तॄन्	जनयिता (दशरथ) उपनेता (बशिष्ठ) अध्येता
पितॄन्	(विश्वामित्र) इन तीन पिताओं की आज्ञा
बिभ्रत्	पालन करते हुये भी शोक आयासादि में लीन
ऊर्ध्वम्	न होकर अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप में
तस्थौ	स्थित रहते हैं। चारों भाइयों के परमात्मा होने से ही
ईम्	वे कौशल्यादि तीनों मातायें।
न अवग्लापयन्ति	प्रसववेदना से पीड़ित नहीं हुई।
दिवः पृष्ठे	आकाश (अन्तरिक्ष) में स्थित होकर ब्रह्मादि देवगण
अमुष्य विश्व	इस सर्वान्तर्यामी के
विदम् वाचम्	प्रतिपादन करने वाली वाणी (श्रौत मन्त्रों) का
मंत्रयन्ते	विचार (मन्त्र द्वारा स्तुति) करते हैं। कि
इन्वाम् अविश्वम्।	आप विश्व से परे शक्ति वाले हैं।

अर्थात् श्रौत मन्त्रों से उसकी प्रार्थना किया कि आप महाराज दशरथजी की तीन रानियों के पुत्र रूप से अवतीर्ण हों। पुत्र शिष्य होने पर भी आपको तृमातृकत्व एवं तृपितृकत्वादि बन्धनकारक नहीं हो सकता क्योंकि आप तो विश्व के प्रपंच से अतीत हैं। (देखिये वा० रा० १।१६।१६–२६)

लक्ष्मण को शेष और भरत शत्रुघ्न को शंख चक्र किंवा तीनों भाइयों को त्रिदेवों का अवतार माननेवालों को वेद मन्त्रों का विचार करना चाहिये ॥३२॥

(१७) चत्वारिते असुर्याणिनामाऽदाभ्यानि महिषस्य सन्ति।
त्वमंग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवन् चकर्थ ॥३३॥
(ऋ० १०।५४।४)

मघवन् !	हे धनवान् ! लक्ष्मीपते-सीतानाथ श्री राम जी
ते महिषस्य	आपके श्री रामावतार काल में परम बलशाली आपके
चत्वारि नामसन्ति	श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भेद से चार नाम हैं। तथापि
अंग ! त्वम् येभिः	हे सर्वप्रिय प्रभो ! आपने भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न रूप में

असुर्याणि कर्माणि	इन्द्र जिद्वध, लवणबधादि रूप जितने कर्म
चकर्थ	किये अर्थात् उनके द्वारा जो गुण कर्मात्मक घन-नादारि, लवणारि आदि नाम हुये
तानि अदाभ्यानि	उन लोकोत्तर कर्म जन्य
विश्वानि त्वम्	सम्पूर्ण नामों को आप ही
वित्से।	प्राप्त करते हैं। अर्थात् भरतादि सब नाम आपही के हैं ॥ ३३ ॥

जातः परेण धर्मणा यत्स वृद्भिः सहाभुवः।
पितायत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धामाता मनुः कविः ॥ ३४ ॥
(साम० १।६।१०)

आ भुवः	अनेक जन्म लेने वाले
अग्निः स	अग्रेनीयमान प्रथम पूज्य परमात्मा ने साथ रहनेवाले
वृद्भिः सह	श्री हनुमदादि दिव्य पार्षदों के साथ
परेण धर्मणा	पर-उत्कृष्ट धर्म के लिये।
जातः। यत्	जन्म-अवतार लिया।* जिस
अग्नेः पिता	अग्रणी पिता के पिता (दशरथ रूप में)
कश्यपः	कश्यप हुये। [भाष्यकारों ने लिखा है कि यहाँ 'कश्यपस्यपिता अग्निः।' में विभक्तिव्यत्यय है अतः "अग्नेः पिताः कश्यपः।" च्छेद करके अर्थ करना चाहिये।]

---

*परम उत्कृष्ठ=श्रेष्ठ धर्म शरणागत रक्षण ही परमात्मा श्री राम जी के जन्म अवतार का मुख्य कारण है। जैसे कि वेदोपबृंहण रूप वाल्मीकीय रामायण में श्री मुख की वाणी है कि—

"मित्र भावेन संप्रातं न त्यजेयं कथंचन।
दोषोयद्यपि तस्यस्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥"
"सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥"
तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरौं देह नहिं आन निहोरे ॥

मनुः — जो स्वायम्भुवमनु थे, वही दूसरे जन्म में कश्यप और तीसरे जन्म में

कविः — सर्वशास्त्रज्ञ-बड़े शक्ति-शाली दशरथ हुये तब

श्रद्धामाता। — श्रद्धास्वरूपिणी शतरूपा, अदिति पुनः कौशल्या माता हुईं। अर्थात् परमात्मा ने दशरथ कौशल्या से जन्म ग्रहण किया ॥ ३४ ॥

पुरान् भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्तावज्री पुरुष्टुतः ॥३५॥

(साम० ४।१।८=६।६।७ ऋ० १।११।४)

पुरान् भिन्दुः — लंका आदि पुरियों के भेदन (नाश) करने वाले

युवा — नित्य एक रस तरुण "तरुणौरूप सम्पन्नौ चाप बाण धरौ युवा।" (वा० रा०)

कविः अमितौजाः — सर्वज्ञ अत्यन्त बलशाली

विश्वस्य कर्मणः धर्ता — सम्पूर्ण कर्मों के पोषक-फल प्रदाता एवं

बज्री — बज्रवत् तीक्ष्ण अमोघबज्रास्त्र नामक बाण तथा अनेक मणि धारण किये और

पुरुष्टुतः — देव ऋषि मनुष्यादि सबसे स्तूयमान होते हुए

इन्द्रः — परमैश्वर्य मान् श्री रामजी ने

अजायत। — जन्म ग्रहण किया और जन्म ग्रहण करते ही माता से अपने लिये कार्य पूछा (जैसा कि अगले मन्त्र से स्पष्ट है) ॥ ३५ ॥

आवुन्दं बृत्रहाददे जातः पृच्छद्वि मातरम्। क उग्राः के हाश्रृण्विरे ॥३६

(ऋ० ८।४५।४ साम २।११।३)

बृत्रहा — धर्म की मर्यादा धारण करने वाले राक्षसों के नाश-कर्ता श्रीराम जी ने जन्म लेते ही

मातरम् आ पृच्छत् — माता से अच्छी तरह पूछा कि

के उग्राः	कौन बलवान राक्षस घोर उद्दण्ड हो गया है।
के वि ह	राक्षसों में किसके अत्याचार की विशेष प्रसिद्धि
अश्रृण्विरे	अधिक सुन पड़ती है। मैं उन दुष्टों को मारने के लिये
बुन्दम् आददे।	बुन्द नामक बाण धारण किये हूँ।
	निज आयुध भुज धारी ॥ ३६ ॥

(२२) महाँ ऋषिर्देवजो देवजूतो अस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥३७॥
ऋ० ३।५३।६

देवजूतः	इन्द्रादि देवताओं के प्रेरक (स्वामी)
नृचक्षाः	इन्द्रियों के प्रकाशक (स्वामी)
देवजः	सूर्य वंशोद्भव श्री राम जी
सिन्धुः अर्णवम्	उत्ताल तरङ्गों वाले समुद्र को
अस्तभ्नात्	स्तम्भित कर देंगे अर्थात समुद्र पर पर्वतों से पुल बाँध देंगे, ऐसा जानकर
महान् ऋषिः विश्वामित्रः	अत्यन्त तेजस्वी महर्षिविश्वामित्र जी ने
सुदासम्	राजा सुदास के कुल में प्रगट हुये श्रीरामजी को अपनी यज्ञ रक्षा के लिये
अवहत्	यज्ञ स्थान पर ले जाने के लिये दशरथ जी से याचना किया यह देखकर विश्वामित्र पर
इन्द्रः	देवराज इन्द्र बहुत प्रसन्न हुये कि अब
कुशिकेभ्यः	महर्षि विश्वामित्र जी की यज्ञ में
अप्रियायत्।	निर्विघ्न रूप से सोमपान और यज्ञीयहवि भक्षण करने को मिलैगी ॥ २७ ॥

यज्ञ रक्षार्थ श्री राम जी जब महर्षि श्री विश्वामित्र के साथ जाने के लिये तैयार होकर माता जी से विदा माँगने गये तब माता कौशल्या जी ने बिदा देते हुये जो आशीर्वाद दिया उसी को श्रुति कहती है कि—

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णावाभमहीशुवम्। ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ ३८ ॥
ऋ० ८।७७।२

शवसि	श्री राम जी के बल, बुद्धि के लिये और
महीशुवम्	सर्वत्र पूजनीय-प्रशंशनीय होने के लिये
आदीन्	अत्यन्त हर्ष से पूरित हृदय होकर माता जी ने
अब्रवीत्	कहा—आशीर्वाद दिया कि
और्णावाभ !	मकड़ी के जाले की तरह अखिल ब्रह्माण्डोत्पादक
पुत्र ! ते निष्टुरः	हे पुत्र तुम्हारा (बल, वीर्य, यश) चिरस्थायी
सन्तु ।	होवे । अथवा ताड़का, मारीच, सुबाहु आदि सम्पूर्ण शत्रुओं के सामने तुम्हारा अङ्ग प्रत्यङ्ग निष्ठुर (कठोर) अर्थात् अत्यन्त सुदृढ़-अचल रहे ॥ ३८ ॥

श्री रामजी दोनों भाइयों को साथ लेकर जब महर्षि विश्वामित्र जी अपने आश्रम के समीप पहुँचे तो दूर से ताटिका को देखकर श्रीराम जी से बोले कि—

(२४) परादेहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्वा जाया विशती पतिम् ॥ ३९ ॥
(ऋ० १०।८५।२९ अथर्व १४, १, २५।)

शामुल्यम्	परम अमङ्गल रूपा इस ताटिका राक्षसी को शीघ्र ही
परोदेहि	दूर से ही बाण से मार डालिये तथा इस स्त्री हत्या जन्य पाप के प्रायश्चित स्वरूप पाप नाश के लिये
ब्रह्मभ्यः बसु	ब्राह्मणों को धन
विभज ।	दान दीजिये । इसको अवश्य मार डालिये क्योंकि जिस तरह
जायाभूत्वा	स्त्री, पत्नी (सहधर्मिणी) होकर निःशंक रूप से
पतिं विशती	पति के घर में जाती है । उसी तरह
एष कृत्या (पतिम्)	यह (दुष्टा ताटिका) राक्षसी निशंक रूप से (सिद्धाश्रम के) कुलपति के यज्ञस्थल में
पद्वती (आयाति) ।	पैदल ही यज्ञ विध्वंश करने आती है ॥ ३९ ॥

(२५) उपप्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्रमुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुदगथायजाते वर आ पृथिव्याः ॥४०॥
(ऋ० ३।५३।११, नि० ७।२)

सुदासः राजा	सुदास वंशी राजा श्री रामचन्द्र जी ने ताटिका को मार डालने के बाद
प्राग् अपाग्, उदक्	यज्ञ स्थान के सब दिशाओं में स्थित
वृत्रम्	विघ्न करनेवाले असुर गण सुबाहु आदि को
जङ्घनत्। अथ	मार डाला। इसके पश्चात्
पृथिव्याः वर	पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थान उस यज्ञस्थल पर
आयजाते	जाकर ऋषियों से कहा कि
(भोः) कुशिकाः!	हे विश्वामित्र के आश्रमवासी ऋषियों?
आ उपप्रेत	सब तरफ से एकत्र होकर आप सब कोई अब
चेतयध्वम् राये	सावधान हो जाइये और कर्म समृद्धि के लिये
अश्वम्	यज्ञ के विशेष (प्रधान कार्य को)
आ प्रमुञ्चत्।	अच्छी प्रकार (सब तरह से) सम्पन्न कीजिये ॥४०॥

(२३) पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परिपातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्येभुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥४१॥
(तै० ब्रा० ७, २, १२, २। ऋ० १०, ८५, १८। अथर्व ७, ८१, १।
१२, २, ११। १४, १, १)

मायया एतौ	लीला से बालक रूप में प्राप्त, ये दोनों
शिशू	बालक राम लक्ष्मण जी ने
पूर्वापरम्	(विश्वामित्र जी के आश्रम पर जाकर) आगे पीछे
चरतः क्रीडन्तौ	चलते हुए खेलते खेलते
अध्वरम् परिपातः।	विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा किया उन दोनों में
अन्यः विश्वानि	एक (श्रीराम जी अंशी अथच अवतारी होने के कारण) सम्पूर्ण

भुवनानि अभिचष्ट	संसार को = सारे ब्रह्माण्ड को निःशेष रूप से देखते
अन्यः	दूसरे (श्री लक्ष्मण जी षोड़श कलात्मक शेषशायी नारायण होने के कारण
ऋतून्	समय-सखण्डकाल का
विदधत्	विधान करके, ब्रह्माण्ड की रचना करके
पुनः जायते ।	शेषशायी रूप से बारम्बार अवतीर्ण होते हैं ॥४१॥

जब यज्ञ का सभी कार्य सम्पादन होकर अग्निदेव ऋषियों की दी हुई आहुति से पूर्ण सन्तुष्ट हो गये तब श्रीराम जी की स्तुति करने लगे कि—

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टुवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥ ४२ ॥

(ऋ० ३।५३।१२)

अहम् इन्द्रम्	मैं (अग्निदेव) परमैश्वर्यमान् श्रीराम जी की
अतुष्टुवम् । यः	स्तुति करता हूँ । जो श्रीराम जी
इमे उभे	इन दोनों
रोदसी	अन्तरिक्षों (पृथ्वी, स्वर्ग की सदा रक्षा करते हैं ।
यः विश्वामित्रस्य	जो श्रीराम जी विश्वामित्र जी के
ब्रह्म, इदम् भारतम्	यज्ञ की और इस यज्ञभूमि भारतवर्ष की तथा
जनम् रक्षति ।	अपने जन (भक्त) की नानावतार लेकर सदा ही रक्षा करते हैं ।

पृथ्वी मण्डल पर परब्रह्म परमात्मा का साक्षात् आविर्भाव भारतवर्ष में ही होता है अन्यत्र नहीं, कारण कि ब्रह्म का एक नाम 'यज्ञ पुरुष' भी है और भारतवर्ष में ही वैदिक विधि से यज्ञ होता आया है। भारतेतर देशों में भी वैदिक विधि से यज्ञ होने लगे तो अन्य देशों में भी ब्रह्म का साक्षात् अवतार होने लगे ॥ ४२ ॥

निर्विघ्न यज्ञ समाप्त हो जाने पर कृपा करके—

(२६) विश्वामित्रा अदासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
अकरदिन्नः सुराधसः ॥ ४३ ॥ (ऋ० ३।५३।१३)

विश्वामित्राः	कौशिकादि महर्षियों ने
बज्रिणे	महामणि (बहुमूल्य हीरा रत्नादि) धारण करनेवाले
इन्द्राय	परमैश्वर्यशाली श्रीरामजी को
ब्रह्म अदासत्	अत्यन्त महती (बला अतिबला) विद्या दिया और
इत् नः	कहा कि यही बला अतिबला विद्या हमलोगों को
सुराधसः अकरत् ।	सर्वोत्तम सिद्धि प्रदान करती है ॥ ४३ ॥

श्री राम लक्ष्मण को विश्वामित्र जी ने बला अतिबला विद्या देकर बला विद्या के अधिष्ठातृ देव से प्रार्थना किया कि—

(२७) बलं धेहितनूषनो बलमिद्रानुलुत्सुनः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ ४४ ॥
ऋ० ३।५३।१८ ॥

नः तोकाय	हमारे, इस बालक
तनयाय तनूषनः	पुत्र (शिष्य) राम के लिये शारीरिक
बलम् धेहि	बल (पुष्टि ओज कान्ति) दीजिये । जिससे कि
बलमन्द्र	आप ऐसी बला विद्या रूप ऐश्वर्य को पा कर यह
बलम्	शारीरिक और मानसिक बल पाकर
अनुलुत्सु ।	अपनी शरीर यात्रा सानन्द चला सकें ।
जीवसे	आप सब को ही जीवनदायक और
बलदा असि ।	सब प्रकार बल दायक हैं ॥ ४४ ॥

इस मन्त्र में अतिबला विद्या के अधिष्ठातृ देव परमात्मा से मानसिक इष्ट सिद्धि के लिये प्रार्थना की गई है कि—

(२८) इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवन् शूर जिन्व ।
योनोद्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमुद्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ ४५ ॥
ऋ० ३।५३।२१

इन्द्र !	हे सर्वाश्वैर्य परिपूर्ण परमात्मन् !
यात श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः	गमन करने वालों (ब्रह्मादिकों) की अनेक प्रकार की

ऊतीभिः नः अद्य	विभूतियों (ऐश्वर्यों) से हमें आज (सदैव के लिये)
जिन्व ।	परिपूर्ण कर दीजिये ।
मघवन् ! शूर !	हे लक्ष्मीपते ! हे विश्वविजयिन् !
यः नः द्वेष्टि सः	जो कोई हमसे द्वेष करता हो वह
अधरः पदीष्ट	नीचा देखता हुआ पतन को प्राप्त हो । और
यम् उ द्विष्मः	जिस दुख देने वाले से निश्चय रूप से हम द्वेष करें
तम् उ प्राणः	उसको भी निश्चय रूप से उसके प्राण
जहातु ।	त्याग दें, अर्थात् उसका भी विनाश हो जाये ॥४५॥

इस प्रकार बला अतिबला विद्या प्राप्त करके श्रीराम जी ने गौतमाश्रम पर जाकर जब अहल्योद्धार किया तब गौतम महर्षि ने इस प्रकार से श्रीराम जी की स्तुति किया कि—

(२९) अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णये अनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥४६॥
(ऋ० ७।८६।७)

अहम् मीढुषे	मैं (गौतम) भार्या प्रदान करने के कारण
भूर्णये देवाय	बहुत प्रकार के मनोरथ-वर्षा करनेवाले श्रीराम जी का
दासः न (इव)	दास हूँ अतएव दास के समान मैं श्रीराम जी को
अरम् (अलं)	दिव्य गन्ध पुष्पादि से अलंकृत
कराणि ।	करता हूँ । (आप क्षत्रिय कुल में अवतीर्ण होने के कारण जो मेरी पत्नी-ब्राह्मणी को चरण स्पर्श हो जाने के कारण संकुचित हैं तो इसमें आपको संकुचित न होना चाहिए क्योंकि)
अर्यः	आप सर्वस्वामी एवं
देवः	द्योतमान होने के कारण
अनागाः	निर्दोष हैं । आपने तो कृपा करके
अचितः	चेतना रहित पाषाण भूता मेरी पत्नी को

अचेतयत्। गृत्सम् — चेतन कर दिया, आपके चरण-रज स्पर्श से यह असती पवित्र हो गई अतः मैं पुनः इस जीवित हुई पत्नी को

कवितरः — क्रान्तिदर्शियों में श्रेष्ठ ऋषियों के उत्तम

राये — कर्म वृद्ध्यर्थ ग्रहण करता हूँ अब यह मेरा

जुनाति। — अनुसरण कर (सक)ती है ॥ ४६ ॥

श्री राम जी चारो भाई जनक पुर में थे उस समय शिव धनुष से पराजित दुष्ट राजा लोग मिल कर श्री राम जी से लड़ने की दुर्मन्त्रणा करने लगे तब श्री राम जी के दिव्य रथ एवं दिव्य शास्त्रास्त्रों को उपस्थित देख कर जनक जी ने उन दुष्ट राजाओं से कहा कि मैंने शिव-धनुष चढ़ाने वाले को कन्या देने की प्रतिज्ञा की थी सो आप लोगों के—

(३०) बलं विज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥४७॥

तै० सं० ४।६।४०२ ऋ० १०। १०३।५, साम २१।१।५ शु० य० १७।३७,
अथर्व १६।३।५

बलम् विज्ञायः — बल की परीक्षा तो हो चुकी, राजकुमार राम बालक होते हुये भी बल, विद्या, बुद्धि आदि में तुम सबसे

स्थविरः प्रवीरः वाजः — वृद्ध हैं, शरीर से बड़े बली और फुर्तीले तो हैं ही

सहस्वान् — इनका मानसिक बल भी बहुत बड़ा है। अतएव

सहमानः — शत्रु सैन्य विमर्दित करने में सर्वथा समर्थ एवं

उग्रः — परम प्रचण्ड वीर हैं और इस समय तो

अभिवीरः — महावीर भरतादि भाइयों से परिवृत (घिरे) होने से

अभिसत्वा — (लौकिक दृष्टि से भी सर्व प्रकारेण बलवान् हैं और ये श्री राम जी

सहोजाः — मन के सङ्कल्प मात्र से ही प्रगट हुये हैं अर्थात् कर्मजे जाय मान नहीं हैं इस प्रकार युद्धोद्यत राजाओं को समझा कर श्री राम जी से प्रार्थना करने लगे कि—

इन्द्र !	हे सर्वैश्वर्य सम्पन्न प्रभो ! अब आप अपने
जैत्रं, रथं अतिष्ठ	विजयप्रापक दिव्यरथ पर बैठिये ।
गोवित ।	आप तो इन राजाओं के भी राजा हैं ॥ ४७ ॥

जनकजी के समझाने पर भी वे लोग (दुष्ट राजागण) कुछ शान्त नहीं हुये तब देवताओं ने उन राजाओं से कहा कि—

(३५) गोत्राभिदं गोविदं बज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं स जाता अनुवीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥४७॥
(ऋ० १०।१०३।६)

गोत्र-भिदम्	पर्वत के समान कठोर एवं विशाल शिवधनुष के भेदन करने—तोड़ने वाले
गोविदं; बज्रबाहुम्	इद्रिय विजयी, वज्रवत् सुपुष्ट एवं विशाल बाहु वाले और
जयन्तम्	सर्व विजयी श्रीराम जी को तुम लोग किस तरह जीत सकते हो, जिन श्रीराम जी ने
ओजसा प्रमृणन्तम्	अपने बल पराक्रम से शिवधनुष को मर्दन-भंग करके
अज्म	प्रतिज्ञारूपी दाँव पर लगी हुई सीतारूपी धन को प्राप्त किया अब श्री सीता जी श्रीराम जी की स्वकीया सम्पत्ति हैं, अतएव
(भोः) सजाताः !	हे समान कुलशीलवाले राजाओ या भाइयो !
इमम्, अनु बीरयध्वम्	इस बात को अच्छी तरह सोच समझकर तत्पश्चात् श्री रामजी के साथ पराक्रम करने—लोहा लेने का संकल्प करो क्योंकि तुम लोग किसी तरह भी श्रीराम जी को जीत नहीं सकते अतएव
सखायः, अनुसंरभध्वम् ।	मित्र भाव से श्रीराम जी का अनुगमन करो आदर करो यही तुम्हें उचित है ॥ ४८ ॥

एक बार रावण ने ऋषियों से राज्य कर के रूप में उनका रक्त लिया। रक्त घट देकर ऋषियों ने कहा कि इस घट का रक्त रावण का नाशक होगा।

रावण ने उसे तीव्र विष कहकर घर में रख दिया। कुछ दिन के बाद रावण तो देवलोक जाकर अनेक सुर सुन्दरियों का अपहरण करके सुमेरु पर्वत पर विहार करने लगा, कई वर्ष तक लङ्का नहीं गया। जब मन्दोदरी से पति-विरह नहीं सहन हो सका तब विष खाने के निश्चय से ऋषि रक्त-घट को खोलकर देखा तो वह रक्त सूखकर घट के पेंदे में काला सा जम गया था। उसको विष समझकर मन्दोदरी ने खा लिया जिससे उसे गर्भ रह गया गर्भ जानकर मन्दोदरी ने पता लगाकर रावण के पास जाकर सब हाल कह दिया तब रावण ने बतलाया कि वह विष नहीं अपितु ऋषियों का शापित रक्त था। अस्तु—वहीं मन्दोदरी को कन्या पैदा हुई तब ज्योतिषियों ने बतलाया कि यह कन्या कुलोच्छेदिका होगी। तब रावण ने उसे अपने शत्रु विदेह जनक के राज्य में गुप्त रूप से भेजकर जमीन में गड़वा दिया। उसी कन्या में जनक के यज्ञ में लाङ्गल लगने से श्री सीता जी प्रगट हुईं। (विस्तार के लिये देखिये भविष्य पुराण, अद्भुत रामायण। इसी कथा का संकेत श्रुति कर रही है कि—

(३२) पिता यत् स्वां दुहितरमधिष्कन् दमयारेतः संजग्मानो निषिंचत्।
स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्॥४९॥
(ऋ० १०।६१।७)

पिता	(मन्दोदरी के पति होने के कारण उस कन्या के) पिता रावण ने
यत् स्वाम् दुहितरम्	जिस समय अपनी उस कन्या को
अधिष्कन्	बहुत दूर छोड़वा दिया (कहाँ? तो श्रुति बतलाती है)
दमया संजग्मानः	पृथ्वी को खोदवाकर (सद्योजाता)
रेतः निषिंचत्	अवीवीर्यजा कन्या को गड़वा दिया। तो भी
स्वाध्यः	सपरिवार रावण बध के द्वारा जगत के सु कल्याण का ध्यान करने वाले अन्तरिक्ष निवासी तथा
देवाः	इन्द्रादि देवगण उस कन्या रूपी
ब्रह्म	परब्रह्म को अर्थात् परब्रह्म के उस चिद्घनानन्दमय कन्या शरीर की पृथ्वी में गड़ी होने पर भी रक्षा की

वास्तोष्पतिम्	(वहीं पर) स्थानाधिष्ठाता गृहपति एवं
व्रतपाम्	व्रत पति (व्रतपरिपालक) यजमान् जनक के उद्देश्य से ऋषियों ने जब वह स्थान स्वर्ण-हल से
निरतन्न्।	जोतवाया तब वह कन्या मिली ॥ ४६ ॥

इस प्रकार से अविर्भूत होने वाली उस कन्या (श्री सीताजी) की स्तुति देवता लोग करने लगे—

(३३) अर्वाची सुभगे ! भव सीते ! बन्दामहेत्वा ।
यथा नः सुभगाऽससि यथा नः सुफला अससि ॥ ५० ॥

(ऋ० ४।५७।६ अथर्व ३।१७।८ तै० आ० ६।६।२)

सुभगे ! सीते !	हे सब को कल्याण देनेवाली । श्री सीताजी !
त्वाम्	सम्पूर्ण राक्षसों का अन्त करने वाली आपकी
बन्दामहे । नः	हम लोग बन्दना करते हैं । हम लोगों का
यथा	जैसे (कल्याण हो वैसा करने के लिये)
अर्वाची भव ।	अनुकूल हो जाइये । आप तो
सुभगा अससि	अपने जनो को ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं और
सुफला अससि ।	भक्तों को दीप्तिमान् करने वाली हैं ॥ ५० ॥

लोकप होहिं विलोकत तोरे । तोहिं सेवहिं सब सिधि कर जोरे ॥

देवताओं के स्तुति, पूजन कर लेने के बाद मनुष्यों तथा ऋषियों ने प्रार्थना किया कि—

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
सा नः सीते ! पयसाभ्यववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना ॥ ५१ ॥

(अथर्व० ३।१७।६)

विश्वदेवैः मरुद्भिः	विश्वे देवताओं और मरुतों के द्वारा
सीता घृतेन मधुना	श्री सीताजी घी और शहद से
सम् अक्ता	भली प्रकार आक्त की गईं अर्थात् पूजी गईं । तथा
अनुमता । सीते !	स्तूयमान हुईं । हे श्री सीता जी

सा	वही (देवताओं से पूजित) आप
घृतवत् पिन्वमाना	घी आदियज्ञीय उपकरणों से परिपुष्ट की गईं।
ऊर्जस्वती । नः	अतः आप परम तेजवाली हैं। कृपा करके हमें
पयसा	पय (लोक परलोक) के समस्त सुखों से।
अभि, अववृत्स्व ।	सर्वथा परिपूर्ण कीजिये ॥ ५१ ॥

देवताओं तथा ऋषियों के इस प्रकार से स्तुति करने के बाद पुरोहितों ने सीरध्वज जनक द्वारा श्री सीता जी का हस्त कमल श्री रामजी के कर कमलों में समर्पित कराते हुए यह मन्त्र पढ़ा—

(३४) इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समम् ॥५२॥
(ऋ० ४।५७।७ अथर्व ३।१७।४)

*इन्द्रः सीताम्	परमैश्वर्य सम्पन्न पर ब्रह्म श्रीराम जी श्री सीता जी को
निगृह्णातु	ग्रहण करें। और सीता जी को पुत्री रूप से
पूषा	पोषण-पालन करने वाले पोषक जनक जी
ताम्	उन सीता जी को (श्री रामजी के कर कमल में)
अनुयच्छतु	कन्यादान रूप में देवें। किसी की कन्या न होते हुये भी जो अयोनिजा सीता जी कन्या-दान रूपमें दी गईं
सा नः	वह सीता जी हम लोगों को
उत्तरामुत्तराम् समम्	दिनों-दिन प्रतिवर्ष
दुहाम्	कामधेनुवत् पृथ्वी को
पयस्वती ।	सर्व काम-प्रद करके बहुत अन्न देने वाली करें ॥५२॥

इस प्रकार ऋषियों के मन्त्र पढ़ने पश्चात् विवाह मण्डप में श्री रामजी के हाथ में सीता जी को समर्पण करके जनक जी ने रामजी से कहा कि—

---

*इन्द्र पत्नीमुपह्वये सीतां, सा मे त्वन्नपायिनी भूयात्।
(पारस्कर गृहसूत्र २।१७।६)

(३६) सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन ॥ ५३ ॥

(ऋ० १०।८५।३३ अथर्व १४।२।२८)

इयम्	यह मेरी कन्या
सुमङ्गलीः	सर्व मंगलमय कल्याण गुण युक्ता है।
इमाम् वधूः	इसको पत्नी रूप से
पश्यत्।	देखिये अर्थात् स्वीकार कीजिये।
अस्यै सौभाग्यम्	इस मेरी कन्या को सब प्रकार का सुख
दत्वाय अथ	दीजियेगा। अब (मेरी कन्या का पाणिग्रहण) करके
अस्तं विपरेतन।	अपने घर (अयोध्या) जाइये ॥ ५३ ॥

जनक जी के ऐसा कहने पर श्री राम जी ने श्री सीता जी का पाणिग्रहण करते हुये जो प्रतिज्ञा किया उसे श्रुति बता रही है। श्री राम जी ने कहा कि—

भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता ते हस्तमग्रहीत्।
पत्नीत्वमसिधर्मणाहं गृहपतिस्तव ॥ ५४ ॥ अथर्व १४।१।५१॥

भगः	समस्त कल्याण गुण गण विशिष्ट सर्वैश्वर्यशाली
ते हस्तम्	(ब्रह्म मैंने) तुम्हारा हाथ
अग्रहीत	पकड़ा (पाणिग्रहण किया)
सविता	सर्व चराचरोत्पादक जगत् के आदि करण ब्रह्म
हस्तग्रहीत्	अर्थात् मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया।
त्वम् पत्नी असि	तुम (लोक दृष्टि में) आज से मेरी धर्मपत्नी हो और
अहम् धर्मणा	मैं (लोक दृष्टि से) आज से धर्म पूर्वक
तव गृहपतिः।	तुम्हारा पति भर्ता हूँ ॥ ५४ ॥

स्मरण रखना चाहिये कि श्री राम जी अपना ब्रह्मत्व-ऐश्वर्य सबसे छिपा सकते हैं परन्तु श्री सीता जी से नहीं छिपा सकते, कारण कि श्री सीता राम जी दोनों दो नहीं हैं, श्री सीता जी तो सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की चिदानन्दात्मिका परमाह्लादिनी शक्ति ही हैं! इसी से श्री राम जी ने अपने मुख से

अपने को 'भगः' और 'सविता' कहा है। 'भग' का अर्थ सर्वकल्याण गुण गण विशिष्ट होता है। यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानबैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥ वि० पु० ६, ५, ७४
भगैस्तु कल्याणगुणैः सर्वं सर्वत्र गच्छति।
यश्चासौ स भगः प्रोक्तः षडर्णः सुखदायकः॥
(भगवद्गुणदर्पणभाष्य निरु ४४

'सविता' का अर्थ सर्वोत्पादक-सर्वकारण होता है। यथा—

साक्षात् जनयिता योऽसौ सर्वस्य सवितास्मृतः।
(भगवद्गुण दर्पण भाष्य निरु० ६६६)

और सर्व साधारण से अपना ऐश्वर्य छिपाने के लिये ही 'भगः अग्रहीत्' 'सविता अग्रहीत्' शब्द कहा है॥ ५४॥

(३७) गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मयापत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगोऽर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्यायदेवाः॥ ५५॥
ऋ० १०।८५।३६, अथर्व १४।१।५०

गार्हपत्याय भगः	गृहस्थ धर्म पालन करने के लिये ऐश्वर्यशाली भग,
सविता पुरन्धिः	सर्वद्रष्टा सूर्य; दैत्यपुर पुर भेदक देवेन्द्रादि;
देवाः त्वा मह्यम्	देवताओं ने तुमको मेरे लिये
अदुः ते हस्तम्	दिया है। अतएव मैं तुम्हारा कर कमल
गृभ्णामि	ग्रहण करता हूँ अर्थात् मैं तुम्हें सहधर्मिणी रूप से स्वीकार करता हूँ।

पाणि ग्रहण के बाद जनक ने कन्या को आशीर्वाद देते हुये कहा—

सौभगत्वाय	तुम्हारा अचल सौभाग्य हो इसलिये
मया अदुः	मेरे द्वारा श्री राम जी के हाथों में दी गई हो। तुम्हें मेरा आशीर्वाद है कि
पत्या जरदष्टिः	पति के साथ (सुख पूर्वक अनन्त काल तक) सुखैश्वर्य वृद्धि को प्राप्त करती हुई

यथा आसः	जैसे तुम्हारी दीप्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय वैसा कर्म करती रहो ॥ ५५ ॥

जब श्री राम जी जनक पुर से बारात के सहित श्री अयोध्या जी लौटने लगे तब रास्ते में एक दिन जहाँ पड़ाव पड़ा, वहाँ देखा कि जिन्होंने—

अपिवत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्र बाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥५६॥

ऋ० ८।४५।२६ साम २।२।७

सहस्रबाह्वे	हजार भुजा वाले हैहय नरेश अर्जुन के लिये
कद्रुवः सुतम्	शरीर रूप कामना के ऊँचे वृक्ष से उत्पन्न क्रोध को
अपिवत्	धारण किया था अर्थात् जिन्होंने अत्यन्त क्रोध करके कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का नाश किया था, वे ही
इन्द्रः	परमैश्वर्यमान्
पौंस्यम्	पुरुषावतार विष्णु के अंशावतार परशुराम जी
आ अत्र देदिष्ट।	इस समय यहाँ पर प्रकाशित हो रहे हैं आ गये हैं ॥

प्रोवाच रामो भार्गवेयो विश्वन्तराय ॥५७॥ (ऐ० ब्रा० ७।२७।३४)

विश्वन्तराय	विश्व में बाधा पहुँचाने के लिये
भार्गवेयः	(तीव्र क्रोध में होकर) भृगुकुलोत्पन्न
रामः	परशुराम जी ने जब श्रीराम जी से
प्रोवाच !	वाद विवाद किया कि शिव धनुष क्यों तोड़ा ? ५७

तब श्री राम जी ने बतलाया कि—

अहं रुद्राया धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ ॥ ५८ ॥

(अथर्व ४, ३०, ५। ऋ० १०, १२५, ६)

अहम्	मैं साकेताधीश राम ही (प्रत्येक कल्प में)
ब्रह्मद्विषे शरवे	ब्राह्मण, वेद, ईश्वर से द्वेष करने वाले राक्षसों के
हन्त वा उ रुद्राया	विनाश के लिये (रामावतार धारण करके) शिवके
धनुः आतनोमि।	धनुष (पिनाक) को भंग करने वाला होता हूँ ॥५८॥

इसी तथ्य को दूसरी श्रुति बतलाती है कि—

धनुर्ज्यामच्छिनत्स्वयम् । आङ्गिरसा सामभिः स्तूयमानः ॥ ५९ ॥
(तै० आ० १।५।१)

स्वयम् ज्याम् प्रत्येक कल्प में स्वयं परब्रह्म श्री रामजी ही प्रत्यञ्चा
धनुः अच्छिनत् सम्पन्न शिव धनुष पिनाक को तोड़ते हैं ।
परशुराम के हारकर श्रीराम जी की स्तुति करने पर श्रीराम जी—
आङ्गिरसम् अङ्गिरा आदि ऋषियों के द्वारा
सामभिः स्तूयमानः । साम गायन से स्तुति किये गये ॥ ५९ ॥

जब परशुराम जी ने रामजी को परब्रह्म जान लिया तब वे श्रीराम भद्र जू की स्तुति करने लगे । उस समय नरावतार की मर्यादा पालन करते हुए श्री लक्ष्मण जी ने परशुराम जी से कहा कि—

रामोऽहं अचितीय तव धर्मपथायुषोऽपिममानः ।
तस्मादेनसो देवरीरिष ॥ ६० ॥ (ऐ० ब्रा०)

अहं रामः (च) मैं (लक्ष्मण) ने और श्री रामजी ने
अपि अचितीय भी आपके वीर वाने के धोखे से आपको वीर
तव धर्मपथायुषः समझ, आपके धर्म मार्ग का यदि कोई कटुवचन से
ममानः; देव ! उल्लङ्घन कर दिया हो तो हे ब्रह्मर्षिवर हमें
तस्मात् एनसः रीरिषः । उस अपराध से बचाइये ॥ ६० ॥

परशुरामजी के हारकर बन लौट जाने पर अधर स्थित देवतालोग श्रीराम जी की स्तुति करते हुए परस्पर कहने लगे कि—

(३८) अयं स्तुतो राजा बन्दि वेधा अपश्च विप्रं तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रुः ॥ ६१ ॥
(ऋ० १०।६१।१६)

अयम् राजा ये श्री रामभद्र जी सबके राजा स्वामी ।
स्तुतः बन्दि च सबके स्तुत्य पूज्य और देवताओं से भी वन्दनीय हैं
वेधा स्व सेतुः ये सारे जगत के रचयिता हैं और स्वयं पर्वतों से पुल
अपः तरति । बँधाकर समुद्र को अनायास पार कर जायेंगे ।

विप्रम्, तरति — ये ब्राह्मण परशुराम को जीतकर संग्राम सिन्धु से तो पार हो ही गये हैं। और ब्राह्मण की प्रतिद्वन्दिता में क्षत्रिय को शस्त्रास्त्र न लेना चाहिये

स्व सेतुः तरति — अपनी इस मर्यादा की भी, रक्षा कर लिये अर्थात् बिना शस्त्रास्त्र ग्रहण किये ही परशुराम जी को जीता

सः राजा — उन्हीं सर्व नियामक राजा श्रीराम जी ने ही जो कि मनुरूप में दशरथ जी को समुद्र विजयी पुत्र होने का वरदान दिया था। उन्हीं राजा श्री रामजी ने

कक्षीवन्तम् अग्निम् — उन दशरथ जी के पास अग्नि को चरुरूप से

रेजयत्, नेमिम् — प्रेरित किया था, जैसे कि उत्तमनेमि—पहिये की हाल

चक्रम् अर्वत्ः — युक्त पहिया को और अच्छी सड़क पाकर अच्छे घोड़े

न (इव) रघुद्रुः। — शीघ्रगामी होते हैं, वैसे ही आपको प्राप्त करके दशरथ आदि शीघ्र ही अनायासेन संसार यात्रा पूरी करके आपके दिव्य धाम को प्राप्त करेंगे। ॥६१॥

(३९) स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै।
स यन्मित्रावरुणावृंज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं बरूथैः ॥६२॥

(ऋ० १०।६१।१७)

सः राजा — वे राजा श्रीरामजी (बशिष्ठ और विश्वामित्र रूप)

द्वि बन्धुः — दो हितैषियों से युक्त हैं अर्थात् वे दोनों परस्पर विरोधी होते हुए भी श्री रामजी के हितचिन्तक हैं। उन दोनों में एक तो)

वैतरणः — दानी हैं (और दूसरे बशिष्ठ जी)

यष्टा — यज्ञ कर्ता हैं। उन दोनों के वैर का कारण यह

अ स्वम् — है कि बिना कभी प्रसव किये ही, तथा

सबर्धुम् धेनुम् — गर्भिणी दशा में भी प्रचुर दूध देने वाली

दुहध्यै — बशिष्ठजी की गाय के लिये ही (परस्पर वैर हुआ था)

यत् मित्रावरुणा — जिस गाय के लिये ही मित्रावरुणके पुत्र वशिष्ठजी ने

उक्थैः	नाना प्रकार के कर्मों यम नियम तप आदि के बल से
सम् वृंजे	विश्वामित्र की सारी सैन्य को सर्वथा नष्ट कर दिया ।
जेष्ठेभिः	जप तप एवं योग के प्रभाव से परम शक्ति प्राप्त
	विश्वामित्र जी ने अपने तपः प्रभाव से तथा
बरूथैः	बहुत सेना एवं सेनापतियों से सम्पन्न होने के कारण
अर्यमणम् ।	स्वयं को सर्वस्वामी एवं परमसमर्थ मानते थे ॥६२॥

(४०) तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियं धा नाभानेदिष्ठोरपति प्रवेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चात्कतिथश्चिदास ॥ ६३ ॥
(ऋ० १०।६१।१८)

तद्बंधुः सूरिः	उन श्रीराम जी के हितकारी, परमब्रह्मनिष्ठ विद्वान्
नाभानेदिष्ठः	मनुवंश के पुरोहित बशिष्ठ जी
रपति	शिष्यों से स्पष्ट कर समझा रहे हैं कि श्रीराम जी
ते दिवि धियम्	तुम्हारे हृदयाकाश में बुद्धि के
धा	धारण करानेवाले हैं अर्थात् परविद्या के उपदेशक हैं
प्रवेनन्	ब्रह्मवित् होने से अत्यन्त कान्तिमान हैं ।
अस्य सा परमा	इन श्रीराम जी की वह सर्वश्रेष्ठ दिव्य कान्ति
नः नाभिः	हमलोगों के हृदयान्तर में प्रकाशित हो ।
अस्य परमा	इन श्रीरामजी की वह परमाविद्या जिसकी कि
वा, घ, सा	वा और घ संज्ञा है वह ब्रह्मा को हनुमानजी से मिली
तत्पश्चात् कतिथश्चित्	उसके बाद किसी प्रकार (बहुत तप-सेवादि करके)
अहम् आस ।	मैंने प्राप्त किया है ॥ ६३ ॥

हंसः शुचिसद् बसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमसदब्जागोजा ऋतजाअद्रिजाऽऋतं बृहत् ॥६४॥
(शु० य० १०।२४)

हंसः	वे श्रीरामजी सूर्यवंश के सूर्य एवं गर्वहर हैं
शुचिसत्	वे ही आदित्य रूप से दीप्ति में रहने वाले मनुष्यों के

बसुः अन्तरिक्षसत्	प्रवर्तक तथा वायु रूप से आकाश में रहने वाले,
होता	होता रूप से देवताओं का आह्वान कर्ता;
वेदिसत् अतिथिः	अग्नि रूप से वेदी में रहने वाले, अतिथि रूप में
दुरोण सत्	सर्व पूज्य तथा आहवनीय रूप से यज्ञ के बैठने वाले,
नृषत्	रामकृष्णादि रूप से मनुष्यों में बैठने वाले,
वरसत्	उत्कृष्ट स्थान = क्षेत्र = तीर्थादि स्थानों में तीर्थाभिमानी देवरूप से रहने वाले,
ऋतसत्	यज्ञ एवं सत्य में स्थित होने वाले,
व्योमसत्	मण्डल रूप से आकाश में स्थित होने वाले,
अब्जाः	मत्स्य कूर्मादि रूप से जल में अवतरित होने वाले,
गोजाः	ग्रामदेव रूप से पृथ्वी = ग्राम में रहने वाले एवं बाराहरूप से पृथ्वी में अवतार लेने वाले
ऋतजाः	सत्य से प्रगट होने वाले; नृसिंहरूप से
अद्रिजाः	पाषाण प्रतिमा में; आराध्य रूप से प्रगट होने वाले
ऋतम्	और अग्नि, निदाध, मेघ, जल, शीत एवं हिमादि दृश्यादृश्य चराचर जगत में व्याप्त रहने वाले,
बृहत्।	सच्चिदानन्द स्वरूप दशरथ नन्दन रूप से अवतीर्ण महाराज श्रीरामचन्द्र जी ही सबसे महान् परब्रह्म हैं ॥

मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परशुरामवपुधरी ॥
जब २ नाथ सुरन दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नशायो ॥६४॥

(४१) इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे देवा अयमस्मि सर्वः।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥६५॥
(ऋ० १०।६१।१६)

इयम् मे	ये राजा श्री रामभद्र जी, मेरे
नाभिः इमे	हृदयान्तर्यामी हैं, और ये इन्द्रियाधिष्ठातृ
देवाः मे	देवगण मेरी इन्द्रियों के प्रेरक हैं परन्तु
अयम्	ये इन्द्रियाँ और इन

सर्वः अस्मि	सब इन्द्रियदेवताओं को शक्ति-प्रकाश देने वाला तो मैं (जीवात्मा) ही हूँ और जो परमात्मा सबका प्रकाशक है वह
प्रथमजाः	सबका पूर्वज सबसे अनादि होते हुए भी
द्विजाः	दुबारा जन्म लेने वाला है अर्थात् प्रति कल्प में दाशरथी राम रूप से अवतार लेता है।
जायमान	भगवन्निः स्वास से प्रगट हुई
धेनुः	वैदिकवाणी ने कृपा करके मेरे हृदय में ऐसा
अह अदुहत्।	निश्चित् प्रकाश पूर्णरूप से प्रकाशित किया है ॥६५॥

विषय करणासुर जीवसमेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(४२) अथासुमन्द्रो अरतिर्विभावाऽवस्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षूस्थिरं शेवृधं सूतमाता॥६६॥
(ऋ० १०।६१।२०)

अथ	इसके बाद अर्थात् अवतार धारण करकेश्रीरामचन्द्र जी
आ सु मन्द्रः	इस भव-प्रवाह-नदी से पार लगाने वाले होते हैं।
अरतिः अव स्यति	देशान्तर में जाकर भक्तोंकी रक्षा करते हुए राक्षसोंका संहार करते हैं। उस समय जब राक्षसों का संहार करने के लिये अयोध्या से देशान्तर को जाते हैं
वनेषाट्	तब वन पर्वतादिक वर्षा-ताप शीतोष्णादि सहते हुए।
द्विवर्तिनः	दो मार्ग अर्थात् तपस्वी मार्ग और शूर मार्ग का अनुसरण करते हैं।
यत् ऊर्ध्वा	जो श्री रामजी ऊर्ध्व स्थान-मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वालों के लिये
श्रेणीः न (इव)	सोपान के समान आलम्बीभूत होते हैं। [इस मन्त्र में तथा और भी कई मन्त्र में 'न' का प्रयोग 'इव' के अर्थ में हुआ है—ध्यान रहे।]

शिशुः मद्भ्रू	शत्रुओं का भली प्रकार दमन करके
दन् शेवृधम्	दमन करके भक्तों के सुख बढ़ाने वाले हैं।
स्थिरम्	ऐसे एक रस स्वभाव वाले पुत्र को
माता सूत।	माता कौशल्या जी ने उत्पन्न-प्रगट किया ॥ ६६ ॥

पूर्व मंत्र में जो 'वनेषाट्' कहा गया है उसका कारण बतलाते हैं कि जब यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय हो गया तब दशरथ जी की प्रेरणा से महर्षि बशिष्ठ जी कनक भवन में जाकर श्री राम जी को साम्बत्सरिक नियम समझाने लगे कि—

संवत्सरं न मांसमश्नीयात् न रामामुपेयात्।
नास्य राम ! उच्छिष्टं पिबेत् तेज एव तत्संश्यति ॥ ६७ ॥

तैत्ति० आर० ५।८।१३

राम !	हे वत्स राम ! (युवराज को चाहिये कि युवराज पद मिलने के एक दिन पूर्व ही से)
सम्बत्सरं, मांसम्*	एक वर्ष तक मांस शब्द से अभिहित जो जो वस्तुयें

---

* प्राण्यङ्ग चूर्ण चर्माम्बुजम्बीरं बीजपूरकम्।
अयज्ञशिष्टमाषादि यद्विष्णोरनिवेदितम् ॥ १ ॥
दग्धमन्नं मसूरं च मांसं चेत्यष्टधाऽऽमिषम्।
गोछागी महिषी क्षीरादन्यंदुग्धं तु ह्यामिषम् ॥ २ ॥
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा।
द्विज क्रीत रसा सर्वे लवणं भूमिजं तथा ॥ ३ ॥
ताम्र पात्र स्थितं गव्यं जलं पल्वल संस्थितम्।
आत्मार्थं पाचितं चान्नमामिषं तत्स्मृतं बुधैः ॥४॥

(सरोज सुंदरः पद्म पुराण)

आकर्षणेऽपि पुंसिस्यादामिषं पुंनपुंसकम्।
भोग्य बस्तुनि संभोगेऽप्युत्कोचे पललेऽपि च ॥ (मेदिनी कोश)

	हैं उनका (उनको आपत्ति काल में औषधि आदि के रूप में भी)
न अश्नीयात् रामाम्	नहीं भक्षण करै और स्त्री (पत्नी) के साथ
न उपेयात्	भोग न करे ब्रह्मचर्य से रहे। (और कोई अन्य
अस्य उच्छिष्ठम्	व्यक्ति भी) इस व्रती युवराज का जूठा जल तक
न पिवेत	न पीवे अर्थात् किसी को अपना जूठा जल तक भी न देवे। तब ऐसा नियम साल भर तक पालन करनेसे
तत् तेजः	उस व्रती युवराज का तेज प्रताप ऐश्वर्य
संश्यति एव।	दिनोदिन बढ़ता ही जाता है ॥ ६७ ॥

(राम धाम सिख देन पठाये ॥ गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ ॥ राम करहु सब संयम आजू)

उसी समय जब श्री राम जी को राज्याभिषेक दिया जाता हुआ जान कर महारानी कैकेयी ने 'राम को वन भरत को राज्य' दिये जानेके लिये हठ किया उसी सम्बन्ध में (कैकेयी चरित्र के उपलक्ष में) श्रुति कहती है कि—

(४३) मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम्।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ ६८ ॥
ऋ० १०।६१।६

अभीके,	देवासुर संग्राम में दशरथ से मिले हुये कैकेयी के
यत् कर्त्वम्	जिन दो वरदानों को लक्ष्य करके
मध्या	श्री राम जी के वनवास की मध्यस्था मंथरा ने
पितरि	श्री राम जी के पिता श्री दशरथ जी के प्रति
युवत्याम्	युवती रानी कैकेयी जी को निमित्त बनाकर कैकेयी के
कामम्	यथेष्ट वरदान रूप कार्य का
कृण्वाने। रेतः	सम्पादन किया। इसी से पिता को
जहतुः	त्याग कर (श्री सीता लक्ष्मण सहित श्री राम जी के)
वियन्ता	विदेश (वन) चले जाने पर पिता दशरथ जी

मनानक्	निर्मनस्क होकर मृतक हो गये। क्योंकि वे श्री राम जी को वन जाने देना नहीं चाहते थे। दशरथ जी
सुकृतस्य योनौ	पुण्य के फल स्वरूप प्राप्त होने वाले
निषिक्तम् सानौ।	महान् उच्च स्थान (स्वर्ग) को प्रयाण कर गये ६८

श्रीराम जी के बन जाते समय पीछे-पीछे कुछ दूर तक महर्षि विश्वामित्रजी भी गये और गङ्गा तट पहुँचकर महर्षि ने गङ्गा जी से प्रार्थना किया। विश्वामित्र जी की बड़ी बहिन सत्यवती लोक कल्याण के लिये अपने पातिव्रत बल से कौशिकी नाम की नदी बनकर प्रवाहित हो रही हैं, इसी से विश्वामित्र जी सभी नदियों को बहिन तुल्य मानकर प्रार्थना करते हैं कि—

(४५) ओषु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्वं भवतासुपारा अधो अक्षाः सिंधवः स्रोत्याभिः ॥६९॥

(ऋ० ३।३३।६)

स्वसारः सिन्धुः	हे बहिनों ! (बहिन के समान) समुद्र गामिनी नदियों !
ओषु शृणोतु	अत्यन्त सुन्दर मेरा वचन सुनो। इस समय श्रीरामजी
कारवे दूरात्	राक्षस वध रूप महान् कार्य के लिये नगर से दूर
अनसा रथेन वः	शीघ्रगामी रथपर चढ़कर तुम्हारे तट तक
ययौ। निषू	पहुँचे हैं। और निरन्तर अच्छे प्रकार से आप को
नमध्वम्। अधः	नमन-प्रणाम करते हैं। अतः आप कृपा करके नीचे
अक्षः श्रोत्याभिः	बहनेवाली छोटी-छोटी नदियों से भी
असुपारा भवत।	सुगमता पूर्वक पार हो जाने वाली हो जाइये इस प्रकार श्री रामजी सुखपूर्वक गङ्गादि पार किये और चित्रकूट में जाकर रहने लगे ॥६९॥

श्रीराम जी के बन जाने पर जब मातामह के घर से अयोध्या में आकर भरतजी ने श्रीराम जी का बन गमन सुना तब—

(४४) दण्डा इवेद्गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः।
अभवच्चपुर एता बशिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ७० ॥

ऋ० ७।३३।६

भरताः, गो	श्री भरत शत्रुघ्नादि गाय
अजनासः दण्डाः इव	चराने वाले की छड़ियों के समान
आसन्।	हो गये अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मूर्च्छित हो गये।
तृत्सूनाम्	और जब श्री राम जी के दर्शन से तृप्ति प्राप्त की इच्छा के कारण, और
परिच्छिन्नाः अर्भकासः	श्री राम जी से छोटे होने के कारण तथा श्री राम जी के सामने बालक-रूप श्री भरत शत्रुघ्न के राज्य पालन की राजप्रथा को न ग्रहण करने पर
पुर एता	इनके (सूर्य वंश-रघुवंश के) अग्रणी-पुरोहित
बशिष्ठः विशः	श्री बशिष्ठ जी ने ही राज काज की
आदित अप्रथन्त	व्यवस्था उत्तम प्रकार से किया
च अभवत्।	और (वे बशिष्ठ जी ही) प्रजा पालक भी हुये ॥७०॥

(४६) अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम्।
प्रपिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणा पृणुध्वं यातशीभम् ॥७१॥
(ऋ० ३।३३।१२)

गव्यवः	न्यायतः प्राप्त राज्य को त्याग देनेवाले
भरताः नदीनाम्	भरतादि तमसा, गोमती; स्यंदिका गङ्गादि नदियोंको
अतारिषुः, विप्रः	पार करके प्रयाग पहुँचे तब ब्रह्मर्षि श्री भरद्वाज जी ने
सुमतिम् समभक्त	सुन्दर बुद्धिवाले श्री भरत जी का अच्छी तरह आतिथ्य किया। (कैसा आतिथ्य किया इसे श्रुति स्पष्ट करती है कि श्री भरद्वाज जी ने समस्त ऋद्धियों सिद्धियों को आज्ञा दिया कि)
इषयन्तीः सुराधाः	इच्छा करने मात्र से प्रीतिपूर्वक बहुत प्रकार की सम्पत्तियों को क्षणमात्र में प्रस्तुत कर देने वाली हे प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, बशित्वादि सिद्धियो तुमलोग श्री भरत जी के यहाँ जाकर

प्र पिन्वध्वम् आ	प्रकर्ष रूप से सब काम सिद्ध करो, और सभी तरफ (भरत जी की सैन्य में)
वक्षणाः पृणध्वम्	घी, दूध, शहद आदि की नदी परिपूर्ण कर दो
शीभम् समभक्त	ईश्वरावतार श्री भरतजी का भली प्रकार आतिथ्य
यात।	करके तब अपने अपने स्थान को जावो ॥ ७१ ॥

श्रीराम जी के पास जाकर भरत जी ने क्या किया। वह महर्षि विश्वामित्र के वचन जाना जाता है कि—

(४७) यदंग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः।
अर्षादह प्रसवः सर्ग तक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञिमानाम् ॥७२॥
(ऋ० ३।३३।११)

अंग ! भरताः	हे प्रिय ! आप महा नदीवत हैं क्योंकि श्री भरतादि
त्वा संतरेयुः	आपको तरना (तैरकर पार करना) अर्थात् निर्विघ्न अवधि पूरी करना चाहते हैं। इसलिये उनकी पूजा अर्थात् प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये। ये
यज्ञीयानाम् सुमतिम्	पूजन के योग्य सुन्दर शरणागति पूर्वक
आवृणे गव्यन्ग्राम	प्रार्थना करते हैं और नन्दीग्राम में चौदह वर्ष तक
इषितः	रहना चाहते हैं अतः
इन्द्रजूतः	इन्द्रादि देवताओं के प्रेरक सर्वस्वामी हे श्रीरामजी
प्रसवः अह	आपकी आज्ञा प्राप्त कर निश्चित रूप से अप्रतिहत
वः अर्षात्	गतिक होकर आपकी आज्ञा का पालन करें।
सर्ग तक्तः।	तब श्रीराम जी की आज्ञा से श्री भरत जी ने नन्दिग्राम पहुँचकर कृच्छादि व्रत करते हुए श्रीराम जी की आज्ञा का पालन किया अर्थात् चौदह वर्ष तक राज्य प्रबंध सुचारु रूप से किया ॥ ७२ ॥

मुनियों ने राक्षसों द्वारा खाये हुए महर्षियों की अस्थि समूह को दिखलाकर श्रीराम जी से प्रार्थना किया कि—

(१०५) अयो दंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूरदेवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपिधत्स्वासन् ॥७३॥
(अथर्व ८।३।२)

जात वेदः समिद्ध — हे सर्वज्ञ परमात्मन्! आप परम तेजस्वी हैं,
अयो दंष्ट्रः — लोहे के तीक्ष्ण दाँत अर्थात् बाणवाले हैं, अतः आप
अर्चिषा यातुधानान् — अपने उन बाणों को तीव्र ज्वाला से राक्षसों को
उपस्पृश — स्पर्श कीजिये अर्थात् नष्ट कीजिये
मूरदेवान् — हिंसक राक्षसों को "मारक व्यापारा, राक्षसाः"
जिह्वया — अपने प्रज्वलित बाणरूपी जीभ से
आ रभस्व — अच्छी तरह चाट जाइये—नाश कर दीजिये
वृक्त्वी क्रव्यादः — अपने बाणों से काट २ कर उन मांसाहारी राक्षसों को
आसन् अपिधत्स्व। — अपने कालरूपी मुख में रख लीजिये ॥ ७३ ॥

दण्डकारण्य में शूर्पणखा जब सुन्दरी बन कर श्री राम जी के पास गई तब श्री राम जी ने उसे श्री लक्ष्मण जी के पास भेजा। जब श्री लक्ष्मण जी ने भी वाक् चातुरी से उसे श्री राम जी के पास लौटा दिया तब शूर्पणखा ने श्री राम जी से श्री लक्ष्मण जी की शिकायत किया कि—

(४८) न हिं सस्तव मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति।
यो अस्मान् वीर आनयत् ॥ ७४ ॥ ऋ० ८।३३।१६

हि सः तव — यह निश्चय है कि वह (लक्ष्मण) आपकी
शास्त्रे न रण्यति — आज्ञा में नहीं चलता तथा
न मम — न मेरी ही बात मानता है और
न अन्यस्य — न किसी दूसरे की ही बात मान सकता है। तब श्री राम जी ने कहा कि—
यः वीरः — जो पुरुष वीर है वह किसी के आधीन नहीं रहता परन्तु लक्ष्मण कुमार
अस्मान्; आनयत। — मेरी आज्ञा मान लेगा। अतः तुम पुनः जाकर उसको मेरी आज्ञा सुनाओ ॥ ७४ ॥

(४९) इन्द्रश्चिद्घा तदब्रवीत् स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ ७५ ॥ (ऋ० ८।३३।१७)

चित् या	श्रीरामजी के ऐसा कहने पर जब वह किसी तरह नहीं गई तब
अह उत्	उसका वहाँ निश्चित् रूप से रुकी रहना देखकर
इन्द्रः	परमैश्वर्य शाली श्री राम जी ने
रघुम् तत्	रघुवंशवीर श्री लक्ष्मण जी से ऐसा
अब्रवीत् स्त्रियाः मनः	कहा कि सामान्य स्त्रियों का मन (इन्द्रियाँ)
अशास्यम् क्रतुम्।	अजित होने से उद्दण्ड होता है। अतः इसका शासन करना चाहिये अर्थात् इसे दण्ड देना चाहिये ॥७५॥

(५०) सप्ती चिद्घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद् धूर्वृष्ण उत्तरा ॥ ७६ ॥ (ऋ० ८।३३।१८)

सप्ती	सात घोड़ों के रथवाले सूर्य का घोड़ा (उच्चै श्रवा) यहाँ पर श्रवण अर्थात् कान से तात्पर्य है। और
मदच्युता	शरीर से प्रत्यक्ष मद बहता है जिस इन्द्रिय से अर्थात् नासिका
मिथुनौ	नाक और कान दोनों इन्द्रियाँ
रथम्	शरीर रूपी रथ को
वहता	धारण करती हैं। इस तरह कि प्रथम तो शरीर की शोभा नाक और कान से है। दूसरे घोर अन्धकार में जहाँ का पता आँख, हाथ, पाँव आदि को नहीं लग सकता वहाँ के शब्द और गन्ध का पता अनायास ही दूर से ही पाकर श्रवण और नासिका शरीर रूपी रथ को धारण करते हैं सँभालते हैं।
चित् ह वृष्णः	किन्तु इन दोनों में भी मद वर्षाने वाली नासिका का
धूः उत्तरा	वंशनाल श्रेष्ठतर है अतः नाक और कान

एव इत्	हाथ का झटका देकर बताया कि 'ऐसे' काट लो। "वेद नाम गनि अँगुरिन खण्डि अकास। पठई शूर्पणखाहिं लखन के पास ॥ (बरवैरामायण)

उपर्युक्त ७५ और इस ७६ दोनों मन्त्रों का भाव यह है कि इसे जान से न मार कर इसका कान और नाक काट लेना ही उचित है ॥ ७६ ॥

शूर्पणखा के विरूप होकर चले जाने पर विघ्न की संभावना से श्री राम जी ने श्री सीता जी से कहा कि—

(५१) अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥७५॥ ऋ० ८।३३।१६

अधः	हे सीते ! तुम नीचे की तरफ ही
पश्यस्व	देखो। सामने अगल बगल और
उपरि मा	ऊपर इस समय मत देखो।
पादकौ सन्तरां हर	चरणों को अत्यन्त विचार और नम्रतापूर्वक चलाओ
ते कशप्लकौ मा	तुम्हारे पादगुल्फ नहीं
दशन् हि	दिखाई पड़ें। क्योंकि पूर्वकाल में
स्त्री	स्त्रियाँ (अङ्गावयव, स्वभाव, सदाचारणादि का सब तरह से रक्षण करके ही)
ब्रह्मा बभूविथ।	ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने वाली हुईं हैं। तात्पर्य यह है कि दुरात्मा वंचक राक्षसों से अपनी रक्षा करो अर्थात् कुछ काल के लिये जब तक कि रावणादि का नाश न हो जाय तुम अपने इस दिव्य विग्रह को तिरोहित कर लो। इस प्रकार कहने पर श्री सीता जी अपने उस दिव्य विग्रह को अन्तर्हित करके एक मायिक विग्रह से अवस्थित हो गई। जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी ॥७७॥

(५२) स इदासं तु वीरवं पतिर्दन् षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्।

अस्य त्रितोन्वोजसा वृधानो विपा बराह मयो अग्रया हन् ॥७८॥
ऋ० १०।६६।६

इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि शूर्पणखा को विरूपित देखकर श्री राम-लक्ष्मण को मार डालने के लिये त्रिशिरा, खर और दूषण सेना लेकर चढ़ आये तब श्री राम जी ने अकेले अनायास ही त्रिशिरादि को मार डाला-

सः एव	श्री राम जी ने अकेले ही
इद्दासम्	लोकों को दूषित करने वाले 'दूषण' का
वीरवम्	महा भयङ्कर स्वर करने वाले खर का और
दन् पतिः	(जो दण्डक वनस्थ) दनुजों-दुष्टों का पति-रक्षक था
षडक्षम् त्रिशीर्षाणं	छ आँख तथा तीन शिर वाला 'त्रिशिरा' उसका
दमन्यत् ।	दमन कर दिया—मार डाला ।

श्री राम जी ने जो त्रिशिरादि को मार डाला तो कौन सी बड़ी विचित्र बात हो गई अरे

अस्य अनु	इन श्री राम जी के अनुयायी कृपा पात्र ऋक्ष बानरों
ओजसा वृधानः; अयः	ने तो बल से बढ़े हुये अपने लौह मय
त्रित अग्रया वि पा	अँगुली के अग्रभाग-नख से बिना प्रयास के ही
बराह	बाराहाकार विशाल एवं भयङ्कर राक्षसों को
अहन् ।	मार डाला । इसलिये सिद्ध हुआ कि अभय चाहने वालों को श्रीरामजी की ही शरण लेनी चाहिये ॥७८॥

"करि उपाय रिपु मारे छनमहँ कृपानिधान ।"
"खर दूषन सुनि लगे गोहारा । छन महँ सकल कटक उन मारा ॥ ३७।४

इस प्रकार जब ससैन्य खरदूषण त्रिशिरादि को मारकर श्रीराम जी स्थिर हुये तब देवतागण स्तुति करने लगे कि—

(५३) यद्चरस्तन्वा वा वृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत् सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥७९॥
(श० ब्रा० ११।१।६।१० ऋ० १०।५४।२)

इन्द्र !	हे परमैश्वर्यशालिन् ! श्रीरामजी !
जनेषु	जनस्थान (पञ्चबटी नासिक) में जो राक्षस
तन्वा वा वृधानः	शरीर से बहुत लम्बे चौड़े थे और जो
बलानि प्रबुवाणाः	अपने अपने बल की प्रशंसा किया करते थे,
यत्	जिनके डर से जनस्थान में कोई जा नहीं सकता था
अचरः	स्थान अगम्य था। उन राक्षसों को मारकर आपने जनस्थान को सबके संचार-निर्भय घूमने फिरने योग्य बना दिया। आपने इन राक्षसों से जो
यानि	
युद्धानि	'घोर युद्ध किया' ऐसा जो कहा जाता है वह तो
मायेत् ननु	आपकी लीला मात्र थी क्योंकि निश्चय करके आपने तो
अद्य पुरा	आज या पहले (पूर्व काल में) कभी किसी को
शत्रुम् न	वैरी करके नहीं ही
विवित्से ।	जाना क्योंकि आप तो सर्वान्तर्यामी परमात्मा हैं ।।७९।।

शूर्पणखा के मुख से जनस्थान का वृत्तान्त सुनकर रावण ने जो किया उसे श्रुति बतलाती है कि—

(५४) स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ।।८०।।

(ऋ० १०।३४।११)

स्त्रियं दृष्ट्वाय	नाक कान कटी हुई स्त्री शूर्पणखाको देखकर रावण ने
कितवम्	कपट मृगवेष धारी मारीच को साथ लिया और कपट भिक्षुक ब्राह्मण का वेष स्वयं धारण कर
पूर्वाह्णे हि बभ्रून	दोपहर-मध्याह्न के पहिले ही, वर्ण शंकर
अश्वान्	घोड़ों अर्थात् खच्चरों को रथ में
युयुजे	जोत लिया और उसी रथ पर बैठ कर धर्म द्रोही
सः वृषलः	वह नीच कर्मा रावण मारीच के सहित
अग्नेः अन्ते	श्रीराम जी की अग्नि शाला के पास

पपाद	गया। वहाँ जाकर छल पूर्वक सीताजी का हरण करके
अन्येषाम् च	अन्य की पाणिगृहीता पत्नी श्री सीता जी को और
सुकृतम् योनिम्	अग्नि होत्रादि शुभ कर्म करने वाले उनके वंश को
तताप।	तापित किया। श्री सीता जी के हरण से श्री राम जी श्री सीता जी और (श्री हनुमान् जी से सुनकर) अयोध्या वासी गण तापित हुये ॥ ८० ॥

श्री सीता हरण का स्पष्टी करण करते हुए श्रुति कहती है कि—

आ जामिरत्के अव्यत् भुजेन पुत्र ओण्योः।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनि मासदम् ॥८१॥
(ऋ० ६।१०१।१४)

जामिः	रावण की पुत्री रूप (देखिये मन्त्र ४६) श्रीसीताजी
अत्के आ	पर्ण कुटीमें अच्छी तरह (सुख पूर्वक) निश्चिन्त होकर
अव्यत्	निवास करती हैं,
न पुत्रः ओण्योः	जैसे पुत्र; रक्षक (माता पिता) की
भुजेन	भुजा द्वारा संरक्षित रहकर निश्चिन्त रहता है।
जारः योषणाम्	(उसी कालमें) कामी रावण श्री सीताजी को (हरण करने की इच्छा से उनकी कुटिया के पास)
सरत्; वरः	आता है और श्री सीतावर श्री राम जी
योनि आसदम्।	कारण रूप मारीच मृग को पकड़ने जाते हैं ॥८१॥

तत्पश्चात् माया मृग के 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनकर जब श्री सीता जी ने लक्ष्मण जी को हठ करके भेजा तब—

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीव नायकम् ॥ ८२ ॥
(अथर्व० ८।२।२५)

यत्र (यथा)	जैसे यज्ञ में अग्नि के चारों तरफ
परिधिः	रेखा खींची जाती है उसी प्रकार

ब्रह्म	ब्रह्म के कलांशावतार श्री लक्ष्मण जी ने (श्री सीता जी की कुटिया के चारों ओर)
परिधिः क्रियते	राक्षस पिशाचादि निवारक रेखा खींच दिया
जीव नायकम्	वह रेखा सारे जीव मात्र की रक्षक थी
तत्र वै	वहाँ (उस परिधि के भीतर) निश्चय ही
गौः अश्वः पशुः	गाय और घोड़ा आदि
पुरुषः जीवति ।	तथा मनुष्य सभी सुरक्षित रहते ॥ ८२ ॥

रेखा खींचते समय श्री लक्ष्मण जी ने यह मन्त्र पढ़कर रेखा को अभिमन्त्रित किया ।—

परित्वा पातु सामनेभ्योऽभिचारात् सबंधुभ्यः ।
अमम्रिर्भिर्वाऽमृतोऽति जीवो मा ते हासिषुरसवः शरीरम् ८३

अ० ८।२।२६

त्वा, परि	आपको यह परिधि (लघु रेखा)
अमम्रिभिः सबन्धुभ्यः	प्रबल मन्त्र शक्ति द्वारा सपरिवार
समानेभ्यः अभिचारात्	हमारे शत्रुओं के समस्त हानिकर प्रयोगों (उपायों) से
पातु । ते असवः	रक्षा करै । आपके प्राण
अति जीवः	बहुत काल तक जीवित रहैं ।
वा अमृतः	अथवा कभी मरैं ही नहीं अर्थात्
शरीरम् मा	शरीर को कभी भी न
हासिषुः ।	छोड़ने वाले हों अर्थात् परिधि के भीतर किसी प्रकार की भय न रहेगी ॥ ८३ ॥

सवीरो दक्ष साधनो वियस्तः स्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत् बेधा न योनिमासदम् ॥ ८४ ॥

साम० १२।२।६ ऋ० ६।१०१।१५

सः वीरः	वे वीरवर श्री रामचन्द्र जी
दक्षसाधनः	कार्य साधन अर्थात् मारीच बध में समर्थ हुये, और
यः रोदसी	जिन श्री राम जी ने पृथ्वी अन्तरिक्ष और

वियस्तः स्तम्भ	स्वर्ग तक को अपने तेज से व्याप्त किया है,
न बेधा	और अनन्त ब्रह्माण्ड विधायक
हरिः	भक्त भयहारी वे श्री राम जी
योनिम् आसदम्	स्वपत्नी श्री सीता जी के मिलने के लिये
पवित्रे अव्यत् ।	कुश काश निर्मित पर्णशाला में पहुँचे ॥ ८४ ॥

मारीच के मारे जाने पर ऋषिगण श्री राम जी की स्तुति कर रहे हैं—

(५५) इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं बज्रिन् वीर्यम् ।
यद्धत्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥८५॥

ऋ० १।८०।७। साम० ४।७।४

इन्द्र ! इत् तुभ्यम्	हे परमैश्वर्यमान् भगवन् ! यह आप ही का
वीर्यम् अनुत्तम्	पराक्रम है कि कहीं कभी भी किसी से हारते नहीं हैं।
बज्रिम् !	हे बज्रमणि-हीरा धारण करने वाले ! (अभी भी श्री राम जी मणि-हीरा जटित मुद्रिका हाथ में पहिने हुये है इससे ऋषिगण बज्रधारी कह रहे हैं ।)
अद्रिवः	आप मेरुवत् शिव चाप के नाशक हैं तब परम प्रताप शाली आपने जो
तम् ह उ	उस परम प्रसिद्ध जो कि परोक्ष रूप में
त्यम्	राक्षस था और प्रत्यक्ष रूप में
मायिनम्	अपनी राक्षसी माया (कपट) द्वारा
मृगम्	मृग बना था उस मायावी राक्षस-मृग मारीच को
त्वम् मायया	आपने अपने मनुष्य देहानुरूप लीला करके
अवधीः । स्व राज्यम्	मार डाला । यह आपने अपने राज्य वंश की
अनु, अर्चन् ।	पूर्व चली आई परम्परा को ही, पूजा-सत्कारमात्र किया । अर्थात् राजा लोग मृगया करते आये हैं इसीलिये आपने भी मृगया किया कुछ द्वेष बुद्धि से उस माया मृग को नहीं मारा है, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी सर्वात्मा हैं ॥ ८५॥

मारीच के कारण जब राम-लक्ष्मण जी आश्रम से दूर चले गये और कोई अन्य श्री रामानुयायी भी वहाँ नहीं था तब रावण अकेली सीता जी के समीप गया तब सीता जी उसे रावण जानकर समझाकर कहने लगीं कि—

(५६) यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥ ८६ ॥
ऋ० १०।३४।१२

यः वः गणस्य	जो तू राक्षस गणों का
महतः सेनानी	महान् सेनापति या नेता है और
व्रातस्य प्रथमः	सम्पूर्ण पतितों अधर्मियों का प्रधान
राजा बभूव, अहम्	चक्रवर्ती राजा हुआ है; मैं
तस्मै कृणोमि	उसका शीघ्र ही समूल नाश कर दूँगी ।
धना न रुणध्मि	तुम्हारे धन को मैं नहीं चाहती
दश प्राचीः	पूर्वादि दश दिशा की साक्षी देकर
तत् ऋतम् वदामि ।	यह बात मैं सत्य सत्य ही कहती हूँ ॥ ८६ ॥

श्री सीता जी के ऐसा कहने पर भी जब रावण उनके हरने को उद्यत ही रहा तब यह देखकर अग्निदेव चिन्ता करते हुए मन ही मन श्री राम जी से प्रार्थना करने लगे कि—

(५७) इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमानदर्शि ।
चिकिद्विभाति भासा बृहताऽसक्नीमेति रुषतीमपाजन ॥ ८७ ॥
ऋ० १०।३।१ साम० १५।२।१

राजन् ! इनः	हे महाराज श्री राम जी ! यह बलवान् राक्षसराज
अरतिः समिद्धः	काम सुख से अतृप्त अतः कामाग्नि से प्रदीप्त
रौद्रः दक्षाय	भयङ्कर राक्षस रावण दुःसाहस करने में
सुषुमान् अदर्शि ।	सर्वथा समर्थ दिखाई पड़ रहा है । मुझ अग्नि को
चिकित्	आपका सामर्थ्य जानते हुये भी यह विपरीत रूप से
विभाति	दीप्त जान पड़ता है । यद्यपि कि श्री जानकी जी
बृहती भासा असक्नीम्	बहुत बड़ी-महान् दीप्ति से काल रात्रि के समान

रुषतीम् अपाजन् ।	जलाती हुई आती हैं परन्तु तब भी रावण इन्हें उठा कर भाग ही जायेगा ॥ ८७ ॥

अग्निदेव पुनः विचार करते हैं कि—

(५८) कृष्णां यदेनीमभिवर्पसाऽभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिररतिर्विभाति ॥८८॥
(ऋ० १०।३।२ साम १५।२।२)

यत् कृष्णाम्	जो काल रात्रि तुल्य विवर्णा
एनीम्	इन श्री सीताजी को रावण ले जा रहा है ये
पितुः जाम्	जगत्पिता श्री रामजी की जाया-पत्नी हैं जिन्होंने
बृहत् वर्पसा	ब्रह्म श्रीराम जी के सङ्कल्प करते ही योग बल से
योषाम्	अन्य छाया—सीता को प्रगट कर अपने स्वरूप को
अभि अभूत् ।	सर्वथा तिरोहित कर लिया है । ऐसी छाया सीता को लेकर जाते हुए
अरतिः ऊर्ध्वम्	काम सुख से अतृप्त राक्षस रावण आकाश मार्ग से
सूर्यस्य	सूर्य के समीप रहनेवाले देवतागण और
दिवः	अन्तरिक्ष में रहनेवाले देवतागण
वसुभिः	अष्ट वसु आदि देवगणों के सहित
भानुं स्तभायन्	सूर्य किरण को स्तम्भन करते हुए
विभाति ।	प्रकाशित हो रहा है । अर्थात् श्री सीता जी को हरकर आकाश मार्ग से ले जाते हुए रावण को रोकने में कोई भी देवता समर्थ नहीं हुए ॥ ८८ ॥

(५९) स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परापैत दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न तानु मे पृशान्यो जगृभ्रे ॥८९॥
(ऋ० १०।६१।८१)

दभ्रचेताः	स्थूल बुद्धिवाला साँड़ दूसरे साँड़ को यह जानकर कि
स्मत् परा	हमारे परोक्ष में यह हमारी चाही हुई गाय को

अपैत	ग्रहण कर लेगा इसलिये
आ न	चारों तरफ देखते हुए नासिका से फूत्कार करते हुए
फेनस्	मुँह से गाज गिराते हुए और हुङ्कार देते हुए अपने
वृषा न	प्रतिद्वन्दी साँड़ को जैसे खोजता है (वैसे)
सः	पत्नी हरण कर ली गई है जिनकी ऐसे श्रीराम जी
ईम् आजौ	श्री सीता जी के लिये राक्षसों के साथ युद्ध में
अस्यत्	बाण चलाने को तैयार हुये और
दक्षिणा	दक्षिण दिशा में रथ की पहियों का चिह्न और
पदा	अश्व पद का चिह्न देखते हुए
सरत्	श्री सीताजी के लिये इधर उधर घूमते हुए जब
तान्	उन शुभाशुभ शकुन सूचक
पृशान्यः	पशु पक्षियों को भी देखा कि ये भी
मे उ	मुझे शुभ शकुन बताते हुये मेरा अनुसरण
न जगृभे परावृक् ।	नहीं करते तब शोक से व्याकुल हो गये ॥ ८९ ॥

(९०) विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सं तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाऽद्या ममार सह्यः समान ॥ ९० ॥

नि० १४।१८ ऋ० १०।५५।५ साम ३।१०।३ = २०।२।३ अथर्व ९।१०।९
तै० आ० ४।२०।१

समने बहूनाम्	युद्धभूमि में बहुत शूरों को
विधुम्	विधूनन नाश कर देने वाले
दद्राणम्	बहुत शूरों को युद्धभूमि से भगा देने वाले और
युवानम् सम्	जवान बने रहने वाले सबको सन्तप्त करने वाले।
तम् पलितः जगार ।	उस लङ्काधीश को बहुत वृद्ध होते हुए भी जटायु ने मूर्छित करके रोक लिया ।

जटायुराज के बुढ़ापा के शरीर में भी इतना बल था कि रावण को बाँध लेते क्योंकि वर प्रभाव से रावण मरता नहीं परन्तु—

देवस्य काव्यम् — सब राक्षसों का विनाश चाहनेवाले देवताओं का परिणामदर्शित्व विचार

पश्य — देखिये कि देवताओं ने सोचा कि अभी जटायु के हाथ से रावण यदि मर या बँध जायेगा तो श्री सीता जी को पा जाने से श्रीराम जी फिर रावण वध से उपरत हो जायेंगे, तब अन्य राक्षसों का मरण न होगा इसलिये जो

ह्यः समानः — पहले युद्ध में रावण की बराबरी करते हुए युद्ध में

आ सः — अच्छी प्रकार रावण को मूर्च्छित कर दिया था वही

अद्य ममार। — जटायु आज इस समय मर गया, फिर अब न उठेगा।

भाव यह कि सम्पूर्ण राक्षसों के वधार्थ जटायु की मृत्यु में देवताओं का विशेष हाथ था॥ ६०॥

(६१) शाक्मना शाको अरुणः सुपर्णः आयो महः शूरः स्यादनीड़ः।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता॥ ६१॥

(साम २०।२।४ ऋ० १०।५५।६)

शाक्मनाः — शक्ति उत्साह से भरे हुए मन वाले

अरुणः — भगवान् श्रीराम जी में अनुराग रखनेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र

महः शूरः सनात् — बड़े भारी बलवान् योद्धा सदैव

अनीड़ः — बिना घर के रहनेवाले अर्थात् परम वैराग्य शील

सुपर्णः आयः — महायोगी और सुन्दर बलिष्ठ पङ्खों से बहुत दूर तक उड़ने वाले जटायु राज ने

यत् चिकेत् तत् सत्यम् इत् — जो कुछ श्री सीताजी के सम्बन्ध में जानते थे वह सब सत्य-सत्य कह दिया, और यह भी कह दिया कि मैं चाहता था कि रावण को मारकर श्रीराम जी हाथ में श्री सीता जी को अर्पित कर दूँ। जटायु राज की वह

	रावण की मृत्यु रूप आकांक्षा सत्य हुई क्योंकि साधु पुरुषों का सत्य सङ्कल्प उनके पाँच भौतिक शरीर के त्याग देने पर भी
मोघम् न	व्यर्थ-निष्फल नहीं होता। इसी से श्रीराम जी ने जटायू के सामने प्रतिज्ञा किया कि मैं युद्ध में रावण
स्पार्हम् वसु	को मारकर स्पृहणीय धन श्री सीता को प्राप्त करूँगा
उत दाता।	और लङ्का-विजय की सम्पत्ति का दान भी कर दूँगा ॥ ९१ ॥

श्रीराम जी ने जटायु के सत्सङ्कल्प को कैसे पूरा किया उसे श्रुति इस मन्त्र में बताती है कि—

(९२) येभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभि रौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुद जायन्त देवाः ॥९२॥

(साम २०।२।५ ऋ० १०।५५।७)

येभिः	देवताओं के द्वारा पशु चिह्न—लोम लाङ्गूल से युक्त और मनुष्य चिह्न कर पद नाक कान आदि से
वृष्ण्या	युक्त बानरों अर्थात् हनुमान् सुग्रीवादिकों से
पौंस्यानि ददे	श्रीराम जी को मिला दिया (भेंट करा दिया) गया।
येभिः	पशु और मनुष्यों के चिह्न से युक्त होने पर भी
वज्री वृत्र	इन्द्रांशोत्पन्न बाली ने बहुत बड़ा पाप जो कि
हत्याय	मृत्यु दण्ड के योग्य था किया अर्थात् निर्दोष छोटे भाई से वैर किया और कन्यावत् छोटे भाई की स्त्री
औक्षत्	में बलात्कार पूर्वक वीर्य स्थापन किया। इसी से राम जी के हाथ से मारा गया
ये देवाः अह्नकर्मम् ऋते	और जो देवतागण पाप कर्म के बिना ही
क्रियमाणस्य कर्मणः	किये जानेवाले सेतुबन्ध राक्षस बधादि कर्म के
उद जायन्त।	प्रभाव को जानकर बानर रूप से महत्कर्म करने के

लिये ही आविर्भूत हुये थे, उनलोगों की सहायता से श्रीराम ने जटायु के सत्सङ्कल्प को पूरा किया ॥ ६२॥

जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया करके जब श्रीराम जी आगे चले तब रास्ते में—

(६३) नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥६३॥

(ऋ० ५।८५।३ नि० १०।४)

विश्वस्य भुवनस्य	सारे भुवन लोक (ब्रह्माण्ड) के
राजा, नीचीनवारम्	एकमात्र शाशक श्रीराम जी ने वक्षस्थल में मुखवाले
कबन्धम् वरुणः	'कबन्ध नामक राक्षस को वरण कर सद्गति देकर
रोदसी अन्तरिक्षम्	स्वर्ग पृथ्वी, पृथ्वी और स्वर्ग के मध्य वाले स्थान को
प्रससर्ज, तेन	सुखी बनाया और उस कबन्ध के शोणित से
भूम ब्युनत्ति	वहाँ की पृथ्वी को आर्द्र कर दिया
न वृष्टिः यवम्।	इस तरह कि जैसे वर्षा ऋतु की जलवृष्टि अन्न को आर्द्र कर देती है ॥ ६३ ॥

पौराणिक उपाख्यान है कि सत्य युग में ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुये ऋक्ष-राज जाम्बवान् ने अपनी जाति वालों से अलग कर दिये जाने पर अपने राज्य की प्राप्ति के लिये तपस्या किया, तब दो पुरुषों ने प्रगट होकर जाम्बवान् से कहा कि हम लोगों की सहायता से तुम अपने शत्रुओं को जीत लोगे। जाम्बवान् ने उन दोनों में बड़े पुरुष को अपनी कन्या देने के विचार से जैसे ही कुछ कहना चाहा। वैसे ही दोनों पुरुष अन्तर्धान हो गये। वैवस्वत मन्व-न्तर के चौबीसवें त्रेता में सुग्रीव के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुये जाम्ब-वान् ने उन्हीं दोनों पुरुषों के रूप में श्री राम लक्ष्मण को जब देखा तब पहिचान कर सुग्रीव को सिखलाया कि इन दोनों के साथ मित्रता कर लीजिये ये दोनों पुरुष आपका कार्य सिद्ध कर देंगे। तब सुग्रीव ने जेष्ठ भाई बालि से अपहृत अपने राज्य और अपनी स्त्री की प्राप्ति की इच्छा से श्री हनूमान् जी की मध्यस्थता में श्री राम जी से मैत्री किया। वहाँ सुग्रीव अर्थार्थी भक्त, जाम्बवान् आर्त भक्त और श्री हनूमान जी निष्काम भक्त बतलाये गये हैं।

इस कथानक का संकेत श्रुति ने इस मन्त्र में किया है। जाम्बवान् ने श्री राम-लक्ष्मण को देख कर कहा कि—

(६४) भीताय नाधमनाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृत्तं सं च वि चाचथ ॥ ६४ ॥

ऋ० ५।७८।६

सप्तवध्रये	चाम की सात (बाधी) रस्सी अर्थात् त्वक् (ऊपर का चर्म) असृक् (रक्त) मांस, मज्जा (पीप), अस्थि (हड्डी) मेदा और शुक्र (वीर्य) रूप सात
नाधमानाय	चर्म रज्जु से यह शरीर बँधा रहता है ऐसे सप्त बंधन युक्त पशु-ऋक्ष शरीर धारण किये
भीताय	जातिवालों से डरकर अत्यन्त उपतप्त हृदयवाले
ऋषये	ऋषियों की तरह तप करनेवाले मेरे ऊपर कृपा करने
अश्विनौ	के लिये अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर
मायाभिः	माया (इच्छा) कर बीरवेष बनाये हुये
युवाम् वृत्तम्	आप दोनों मेरे तपस्थान पर गये थे और
सं च वि चाचथ।	मेरे ऊपर कृपा कर वरदान देकर बहुत शीघ्र ही अन्तर्धान भी हो गये थे।

इस मन्त्र से यह भी जाना गया कि सकाम भक्तों की गति विलम्ब से होती है। यद्यपि—"लोकतः परमार्थतोऽपि सकृद् विभातो ह्येषः।"

इस श्रुति के अनुसार एक बार भी भगवद्दर्शन हो जाने से फिर वियोग नहीं होता तब भी भगवत्प्रीत्यर्थ जाम्बवान् से बहुत दिन तक वियोग रहा और श्री रामावतार में तो एक पत्नी ब्रत होने से जाम्बवान् की कन्या अब भी स्वीकार नहीं की गयी। हाँ वैवस्वत मनु के अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में श्री कृष्णावतार में जाम्बवती को पत्नी बनाकर भगवान् जाम्बवान् के जमाता बने। देवयोनि होने से जाम्बवती सदैव युवती ही बनी रहीं ॥ ६४ ॥

स्वार्थ में तत्पर होने से सुग्रीव ने अपने भृत्य द्वारा श्री राम जी से कहलवाया कि आप—

(६५) देहि मे ददामिते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ॥६५॥
(शु० य० ३।५०)

इन्! मे देहि	हे राजन् पहिले आप मुझे बचन दीजिये
ते ददामि	तब मैं आपको बचन दूँगा
मे निधेहि	पहिले आप मेरे लिये लड़िये तब मैं
ते निदधे च मे	आप के लिये लड़ूँगा। और आप मेरी
निहारं हरासि	वस्तु शत्रु के हाथ से वापस ला दीजिये
ते निहारं निहराणि	तब मैं आपकी वस्तु शत्रु के हाथसे लौटाकर ला दूँगा।
स्वाहा।	आपको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६५ ॥

इस प्रकार सकाम भक्त जाम्बवान् और सुग्रीव पर कृपा करने के बाद श्री राम जी ने जब निष्काम भक्त हनूमान जी पर कृपा करना चाहा तब श्री हमूमान जी ने प्रार्थना पूर्वक कहा कि—

(६६) एवाहि त्वामृतुथा यात यन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि।
किं ते ब्राह्मणो गृहते सखायो ये त्वा या निदधुः कामामिन्द्र! ॥६६॥
(ऋ० ५।३२।१२)

इन्द्र !	हे परमैश्वर्य शालिन् प्रभो !
एवाहि त्वाम्	इस प्रकार शास्त्र रीति से निश्चित रूपेण आपको
ऋतुथा	समय समय पर प्रत्येक ऋतु में जो सकाम पुरुष
यात यन्तम्	यज्ञादि में पूजन कर आपको प्रसन्न करने का यत्न स्वयं करते हैं और दूसरों से कराते हैं तब उस सत्प्रयत्न के फल स्वरूप सर्वान्तर्यामी आप
विप्रेभ्यः मघा	उन्हें श्रद्धावानों से धन
ददत्	देते अर्थात् दिलवा देते हैं।
शृणोमि	ऐसा शास्त्रों और गुरुओं से सुनता हूँ। परन्तु
किम् ते	क्या मेरे समान् आपके अनन्य भक्त

ब्राह्मणः	ब्रह्म निष्ठ पुरुष उस धन को
गृह्णते	ग्रहण करते हैं (प्रत्युत वे देने पर भी नहीं लेते) अतः
ये सखायः	जो आपके निष्काम भक्त हैं वे
या त्वा	अपनी जितनी इच्छाये हैं सभी को आपके चरणों में
कामम् निदधुः ।	सर्वथा (अच्छी तरह) अर्पण कर देते हैं अर्थात् वे चाहते हैं कि मैं ही प्रभु की सब सेवा किया करूँ और कोई दूसरी वस्तु आपसे नहीं चाहते ॥६६॥

(६७) कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमंतु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृड़ाति कतमो नो मयस्करत् कतम ऊती अभ्यावर्तति ॥६७॥
(ऋ० १०।६४।१)

शृण्वताम्	मेरी बात सुनने में चित्त लगाये हुए इन
देवानाम्	देवताओं के अवतार स्वरूप बानरों को मैं
कथा कथमस्य	किस प्रकार से किन शब्दों से अपना मन्तव्य
सुमन्तु मनामहे ।	सुन्दर तरह से समझा दूँ ।
यामनि कः	प्राण प्रिया सीता को खोजकर कौन सुकृती
नः मृड़ाति कतम	मुझे सुखी करेगा ? और कौन बीर
मयस्करत्	शत्रु के घर में पड़ी हुई
ऊतीः अभ्यावर्तति ।	मेरी विभूति प्रिया सीता जी को लौटा लायेगा ? ।

जब बानर गण सुग्रीव की आज्ञा से आ गये तब उन्हें उत्साहित करने के लिये श्री राम जी ने नरनाट्य पूर्त्यर्थ उपर्युक्त प्रकार से विलाप किया ॥६७॥

(६८) क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनंति वेनाः पतयंन्त्या दिशः ।
नमर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधिकामा अयंसत ॥६८॥
(ऋ० १०।६४।२)

क्रतवः	साक्षात् सत्य संकल्प ही
क्रतूयन्ति	मेरी सेवा करने की इच्छा करते हैं परन्तु सत्य सङ्कल्प प्रथम

धीतयः, हृत्सु वेनाः	बुद्धिमानों के हृदय में ही शोभित होते हैं तत्पश्चात्
आ दिशः पतयन्ति	सम्पूर्ण दिशाओं में जाते हैं।
एभ्यः मर्डिता	इन बानरों के अतिरिक्त दूसरा कोई सुख देने वाला
न। मे अधिकामाः	इस समय नहीं है। मेरा अनेक मनोरथ
देवेषु अयंसत्।	इन देवावतार बानरों से ही पूरा होगा ॥६८॥

इस प्रकार विचार कर श्रीराम जी ने बानरों से कहा कि—

(६९) तेनो अर्वन्तो हवन श्रुतो हवं विश्वे शृण्वंतु वाजिनो मितद्रवः।
सहस्रसा मेधसा ताविवत्मनामहो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६९॥
(ऋ० १०।६४।६ शु० य० ६।१७, तै० आ० १।७।८।२)

ये बाजिनः अर्वन्ति	जो बानर गण बहुत शीघ्रगामी हैं और
मितद्रवः हवनश्रुतः	जो कम दौड़ने वाले हैं, जो बहुत सुनने वाले हैं,
त्मना	जो अपने परिवार एवं प्रेमियों को
सहस्रसा	हजारों प्रकार के सुख देने वाले हैं और
मेधसा	यज्ञ में जैसे खुले हाथों धन लुटाया जाता है
तौ इव	वैसे दानशील उन्मुक्त दोनों हाथों की तरह
समिथेषु महः	संग्राममें शत्रुओंको समूल विनाश करके उनकी महती
धनम् जभ्रिरे	सम्पत्ति को हरण कर लेने वाले अर्थात् युद्ध की सभी
	कलाओं में निपुण अति प्रवीण हैं।
ते विश्वे नः	वे सब बानर वीर गण हमारे
हवम् शृण्वन्तु।	आवाहन को दत्तचित्त होकर सुनें ॥६६॥

(७०) प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम्।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचंते सचितः सचेतसः ॥१००॥
ऋ० १०।६४।७॥

प्र वः पुरन्धिम्	ऐ वानर वीरो! तुम लोगों के सामने
रथयुजम्	जो देह धारण किये (बानर बने हुये)
वायुम्	ये पवनदेव हनूमान् जी के रूप में विराजमान हैं,

सख्याय	तुम लोग और बानर राज सुग्रीव का मित्र जो मैं
पूषणम्	उस मेरे कार्य की सिद्धि के लिये इन्हीं वायु पुत्र को
स्तोमैः कृणुध्वम्; हि	स्तुति-प्रार्थना द्वारा तैयार करो, क्योंकि
सवितुः देवस्य	सूर्य भगवान् की तथा अन्य देवगणों की स्तुति करने
ते सचितः सचेतसः	से ही वे देवगण सहृदय, चेतन पुरुषों के
सवोमनि, क्रतुम्	लौकिक कार्य के, सङ्कल्प को
सचन्ते ।	पूरा कर देते हैं अर्थात् की गई स्तुति ही सज्जनों को
	सत्कार्य में प्रेरित करती है ॥ १०० ॥

(७१) त्रिःसप्त सस्रा नद्योमहीरपो वनस्पतीन् पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन् तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥ १०१ ॥
ऋ० १०।६४।८ ॥

त्रिः सप्त सस्रा	तीनों लोक, सातों द्वीप में बहती धार वाली
नद्यः महीः अपः	नदियाँ, पृथ्वी, समुद्र
वनस्पतीन्, पर्वतान्,	वृक्षगण, पहाड़ समूह,
अग्निम्	बड़वानल और
कृशानुम्, अस्तॄन्	प्रलयानल इन सबको नाश करने वाले
तिष्यम्	नक्षत्र मण्डल के सहित स्थित सर्व लोकों के
सधस्थे	आवास स्थान ब्रह्माण्ड में
आ	सब ओर से स्थित अनेक वस्तु समूह के प्रति
रुद्रम्	शब्द करते हुये जो चलता है अर्थात् गर्जते हुये
	समस्त ब्रह्माण्ड पिण्ड को अक्रान्त करने में परम
	समर्थ-महाशक्तिशाली
रुद्रेषु रुद्रः	सम्पूर्ण रुद्रों में महारुद्रावतार श्री हनूमान् जी ही
रुद्रियम्	रौद्र कर्म अर्थात् शत्रु संहार में परम समर्थ हैं अतः
ऊतये रुद्रम्	अपने कार्य के लिये रुद्र-हनूमान् जी को ही प्रधान
हवामहे ।	रूप से आवाहन मैं करता हूँ अर्थात् चुनता हूँ ।

'महावीर विनवौं हनुमाना। राम जासु यश आपु बखाना ॥'
महावीर विदित बरायो रघुबीर को' ॥ १०१ ॥

इस प्रकार प्रशंसा किये गये हनुमान जी का वर्णन करते हुए श्रुति कहती है कि—

(७२) अपस्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सम्भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१०२॥
(ऋ० १०। ७६।१, नि० ६।४)

अस्य महतोः	इन श्री हनुमान जी के बहुत बड़े
महित्वम्	माहात्म्य को अनेक प्रकार से
अपश्यम्	अनेकों बार अनेकों कल्पों में मैं = श्रुति ने देखा है।
अस्य मर्त्यासु	इनके मर्त्यलोक के समुद्र को उल्लंघन करते हुए
विक्षु। अस्य हनू	रूप को देखा है। तथा इनकी चिबुक में शत्रुओं को
नाना	अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का अलग अलग
विभृते	प्रहार करते देखा परन्तु इनके फैले हुये मुख पर बज्रादि महान् अस्त्रों को भी निष्फल होते देखा है।
असिवन्ती	बिना किसी प्रकार का स्पर्श किये ही इनकी
प्सती	जिह्वा लपलपाकर अर्थात् प्रश्वाँस के वेग से ही
भूरि अत्तः	सारे ब्रह्माण्ड को भक्षण करते हुये
संभरेते।	सम्पूर्णविश्व का संहार महाप्रलय कर देती है ॥१०२॥

(७३) गुहा शिरो निहित मृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि।
अत्राण्यस्मै षड्भिः संभरंत्युत्तान हस्ता नमसाऽधिविक्षु ॥१०३॥
(ऋ० १०।७६।२)

शिरः गुहा	श्री हनुमान् जी का शीश गुहा (गुफा में)
निहितम्।	छिपा है अर्थात् बानर रूप होने से शिर छोटा दिखलाई देता है। वास्तविक शिर तो बहुत बड़ा है।
अक्षी ऋधक्	दोनों आँखें गम्भीर नेत्रगोलक में निहित हैं।

अ्रसिन्वन् जिह्वया केवल मुँह फैलाकर जिह्वा लम्बी करके ही
वनानि जल समूह अथवा जङ्गल से जायमान फलों का
अत्ति । अस्मै भक्षण कर डालते हैं। इनके भोजन पात्र को निरन्तर
अत्राणि षड्भिः अन्नादि भोजन पदार्थों से छ दूत समूह
सम्भरन्ति नित्य पूरा किये (भरे) रहते हैं। (श्री सीताजी की आज्ञा से छ यक्षों के छ समूह-झुण्ड अर्थात् छत्तीस यक्ष नित्य श्री हनुमान जी की सेवा में रहते हैं, ऐसा भारत में देखा जाता है।)

अधि विक्षु ऊपर के लोक में रहनेवाले देव गन्धर्वादिगण
नमसा, उत्तान हस्ताः। नमस्कार के लिये हरदम, हाथ जोड़े रहते हैं अर्थात् प्रणाम कर श्री हनुमान जी को प्रसन्न करते हैं ॥१०३॥

(८२) सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवो वृषच्युता मदासो गातुमाशत् ।
शं नो निवेशे द्विपदे चतुष्पदेऽस्मे बाजाः सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥१०४॥
(ऋ० ६।६६।७)

सिन्धोः प्रवणे बड़ी नदी के प्रवाह और झरने के प्रपात में
इव पड़ा हुआ काष्ठादि जिस प्रकार अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है वैसे ही, और
वृष च्युताः उद्दण्ड पुरुष जैसे धर्म से भ्रष्ट हो जाता है वैसे ही
आशवः शीघ्रगामी बानर गण भी
निम्ने नीचे अर्थात् स्वयं प्रभा की मायामय भू-गर्भ में स्थित गुफा (तलगृह = तिलस्म) में जाने से
वृष च्युताः महीना भर में श्री सीता जी की सुधि लेकर लौटने की अपनी प्रतिज्ञा बद्ध सेवा से भ्रष्ट हो जाने से सभी दुःखी थे तत्पश्चात् उन लोगोंने भगवत्स्तुतिकी कि–
सोम ! नः हे मोक्षामृतस्त्राविन् प्रभो । हम लोगों के परम संबंधी
निवेशे शम् श्रीरामजी की गृहणी श्रीसीताजी का कल्याण हो तथा

नः द्विपदे — हम लोगों के संबंधी दो पाँव वाले श्री राम जी, श्री लक्ष्मण जी और

चतुष्पदे शम् — चार पाँव वाले बानर भालुओं में सदैव तरह तरह का कल्याण

तिष्ठन्तु अस्मे वाजाः — स्थिर रहे। हम लोगों में संग्राम भूमि में

कृष्टयः — शत्रुओं के कर्षण (विदीर्ण) करने की शक्तियाँ

तिष्ठन्तु — बनी रहे। इस प्रकार प्रार्थना करने पर उस बिबर से बानर गण सब प्रकार से

मदासः गातुम् — भगवत्कृपा प्राप्त होनेपर पृथ्वी के ऊपर (खुले मैदान में) आ गये ॥ १०४ ॥

उस बिल (तलगृह) से निकलने पर—

(८३) शुचिः पुनानस्तन्वमरेपसमव्ये हरिर्न्यधाविष्ट सानवि।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे त्रिधातु मधु क्रियते सुकर्मभिः॥१०५॥
(ऋ० ६।७०।८)

शुचिः — स्वाभाविक शुद्ध और निष्पाप होने पर भी

अरेपसम् — बिवशता से आज्ञा भङ्गरूपी अपराध हो जाने से

तन्वम् पुनानः — शरीर को ब्रत उपवास से शुद्ध करते हुये

हरि; सानवि अव्ये — बानरगण सुमेरु शिखर के सङ्गम पर स्थित

नि — ब्रह्मलोक की प्राप्ति के निमित्त

अधाविष्ट — दौड़ने लगे। तात्पर्य यह कि प्रतिज्ञा भंग के भय से भयभीत हुये बानरगण अनशन द्वारा अभय स्थान ब्रह्मलोक जाने की जल्दी करने लगे उसी समय सुना और देखा (वाल्मीकीय रामायण में सम्पाती और जटायु की माता का नाम श्येनी लिखा है। इसीसे सम्पाती और जटायु श्येन भी कहे जा सकते हैं और आथर्वणीय श्रुति का कहना है कि "श्येनाविव

सम्पातिनाविपश्यत् ।" श्येन = गृद्ध पक्षी की आकृति जैसे बड़े भारी सम्पाती को बानरों ने देखा ।) कि

सुकर्मभिः — पुण्यशाली गृद्धराज सम्पाती ने

त्रिधातुः — बात-पित्त-कफात्मक बानर शरीर को

मधु, क्रियते — अपना भोजन, निश्चित किया अर्थात् उपवास से अत्यन्त क्षीण इन बानरों में जो जो मरता जावेगा उसे खाता जाऊँगा ।

त्रिधातुः मित्राय — बानर शरीर से अग्निदेव (जठराग्नि)

वरुणाय बायवे — वरुण = अन्नमय कोश और वायु = प्राणमय कोश भी

जुष्टः । — अच्छी तरह तृप्त होंगे ऐसा वह गृद्ध कह रहा है ।

अर्थात् सुपक्व आहार मिलने से जठर में स्थित अग्नि देव तृप्त होंगे, सुन्दर रस खाने से रस के देवता वरुण देव प्रसन्न होकर अन्नमय कोश को परिपुष्ट करेंगे और सुन्दर स्पर्श और गन्ध से वायु देवता तृप्त होकर प्राणमय कोश को परिपुष्ट करेंगे । इस प्रकार बानरों को खाने से मैं भी शुद्ध एवं परिपुष्ट हो जाऊँगा । यही सम्पाती का आशय है । स्मरण रहे कि जङ्गम प्राणी का मांस गीध के लिये ही विहित है, मनुष्यों के लिये नहीं ।

बाहर होइ देखि बहु कीशा । मोहिं अहार दीन जगदीशा ॥
आज सबनि कहँ भक्षण करऊँ ॥ १०५ ॥

तब बानरगण सम्पाती को मारने की इच्छा से आते हुये जानकर पुनः स्तुति ईश्वर की करने लगे कि—

(८४) पवस्व सोम देववीतये वृषेन्द्रस्य हार्दि सोमधानमाविश ।
पुरा नो बाधाद्दुरितातिपारय क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते॥१०६
ऋ० ६।७०।६

सोम ! — हे चन्द्रवत् प्रिय दर्शिन् प्रभो ! आप अभिमत फल

वृषा देववीतये — वर्षने = देने वाले एवं देवतों के रक्षक हैं । अतः

पवस्व इन्द्रस्य — हम लोगों की रक्षा कीजिये और परमेश्वर्यमान्

हार्दि सोमधानम्	राम जी के हृदय में स्थित और श्री रामजी को सोम यज्ञ में अधिकार प्राप्त कराने वाली उनकी पत्नी श्री सीता जी को प्राप्त करा दीजिये।
पुरा नः	पहले हमलोगों को
बाधात्	प्राण बाधा स्वरूप इस पक्षी-गृद्ध से और
दुरित	अकाल मृत्यु रूप पाप आदि सङ्कटों से
अति पारय।	पार कर दीजिये। इस प्रकार भगवत्प्रार्थना करके जटायु की प्रशंसा करने लगे कि
हि	प्रसिद्ध तीक्ष्ण दृष्टि वाला जटायु नामक गृद्ध
क्षेत्रीवित्	श्री सीता जी का पता जानता था। उसने ही
वि पृच्छते	सीता जी का समाचार पूँछने पर राम जी को
दिशः आह।	इस दक्षिण दिशा को बतलाया था।

अहा एक तो वह श्री राम जी के लिये ही मरा पुनः मरते मरते भी श्री राम जी का कुछ कार्य कर ही गया। हम लोग तो व्यर्थ ही मर रहे हैं। "धन्य जटायु सरिस कोउ नाहीं।"

राम काज कारण तनु त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड़ भागी ॥१०६॥

(८९) हितो न सप्तिरभिवाजमर्षेन्द्रस्येन्दो जठरमापवस्व।
नावा न सिन्धुमतिपर्षि विद्वाञ्छूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः ॥१०७॥
(ऋ० ९।७०।१०)

इन्दो	हे अमृतानन्द दायक श्री रामचन्द्र जी!
हितः सप्तिः न	स्वामिहितकारी, चतुर अश्व जैसे
वाजम् अभि	संग्राम में जाता है वैसे आप भी संग्रामाभिमुख होकर
अर्ष	स्त्री-हारी शत्रु को मारकर पत्नी के सहित
इन्द्रस्य	अपने हविर्भोक्ता रूप से अपने ऐश्वर्यमान रूप के
जठरम् आपवस्व।	उदर को तृप्त कीजिये अर्थात् सोमयागादि कीजिये।
नावा न सिंधुम्	नाविक नौका से जैसे नदी को पार करता है

...अतिपर्षि ।	वैसे आप हमलोगों को संकटों से पार कीजिये।
...विद्वान्	आप तो हमलोगों के चित्त को जानते हैं कि हमलोग
...शूरः न युध्यन्	महान् वीरों के समान लड़ने वाले हैं। परन्तु कार्य सिद्धि से निराश होकर ही 'कार्यं साधयामि वा शरीरं पातयामि वा।' हमलोग अनशन व्रत ले चुके हैं इसलिये अनुष्ठान् की सिद्धि के पूर्व लड़ना अनुचित समझकर इस गृद्ध सम्पाती से लडेंगे नहीं। अतः ये बेचारे बानरगण व्यर्थ मर गये, ऐसी
...नः निदः	हमारी निन्दा करने वाले जो राक्षसगण हमारे
...स्थः अव ।	शत्रु हैं उनका विनाश कीजिये और व्यर्थ की निन्दा से हमारी रक्षा कीजिये ॥ १०७ ॥

इसके बाद जब सम्पाती ने उन बानरों का परिचय पूँछा तो जाम्बवान् ने संक्षिप्त रूप से कुछ प्रधान प्रधान बानरों का परिचय बताया कि —

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी, बभ्रुः सौम्यः पौष्णः, श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः, शिल्पो वैश्वदेवः, ऐन्द्रोऽरुणो, मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः, संहितोऽधो रामः सावित्रो, वारुणः कृष्णः, एकशितिपात्पेत्वः ॥१०८॥ शु० य० २६।५८

सारस्वती कृष्णग्रीवः	महाविद्वान्, श्यामकण्ठ वाले, सघन पुष्ट और सुन्दर
मेषी	भेड़ के बालों के समान बालों वाले ये
आग्नेयः ।	अग्नि के पुत्र नील हैं। 'पावकस्य सुतः श्री मान्नीलोऽग्निसदृशः प्रभः। (वाल्मी० १।१७।१३)
बभ्रुः सौम्यः पौष्णः	पिंगलवर्ण और सौम्य स्वभाव वाले ये कुबेर के पुत्र गन्धमादन हैं। 'धनदस्य सुतः श्रीमान् बानरो गन्धमादनः ॥ १२ ॥
श्यामः शितिपृष्ठः	सर्वांगश्याम परन्तु पीठ पर धवल धारी वाले ये बृह-
बार्हस्पत्यः ।	स्पति के पुत्र तार हैं। 'बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारं नाम महाकपिम् ॥ ११ ॥

शिल्पः वैश्वेदेवः।	शिल्प कर्म में परम प्रवीण ये विश्वकर्मा के पुत्र नल हैं। 'विश्वकर्मात्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥१५॥
ऐन्द्रः अरुणः।	इन्द्रके पौत्र; बालिके पुत्र ये लालरङ्गवाले अङ्गद हैं।
ऐन्द्राग्नः।	इन्द्र और अग्नि दोनों के समान कान्तिवाले
कल्माषः मारुतः।	कपिश-गेरू के रङ्ग वाले ये पवन पुत्र हनुमान हैं और
कृष्णः बारुणः।	अत्यन्त काले रङ्ग वाले ये बरुण के पुत्र सुषेण हैं। बरुणो जनयामास सुषेणं नाम बानरम् ॥ १५ ॥
एकशितिपात् पेत्वः।	ये वीर सब एक एक छलांग में बड़ी दूर जानेवाले अर्थात् बड़े बेग वाले हैं 'अप्रमेयवला वीरा विक्रान्ता कामरूपिणः ॥१७॥
संहितः; सावित्र्यः रामः अधः।	ये बानर वीर मिलकर; सूर्यवंशोद्भव श्री राम जी के नीचे अर्थात् आधीन हैं ॥१०८॥

तब बानरगणों को परम स्वामिभक्त जानकर सम्पाति ने भी उनपर कृपा किया और कहा कि—

(८६) आ दक्षिणाऽऽसृज्यते शुष्म्या सदंवेति द्रुहो रक्षसः पाति जागृविः।
हरिरोपशं कृणुते नभस्पय उपस्तिरे चम्बोर्ब्रह्म निर्णिजे ॥१०६॥
(ऋ० ६।७१।१)

शुष्मी, हरिः	जो बलवान्, बानर हो वह यहाँ से
आ दक्षिण	एकदम सीधे, दक्षिण दिशा (लङ्का) में जाकर
आ सृज्यते	अच्छी तरह श्री सीताजी का अन्वेषण करे। ऐसा करने से वह अच्छी तरह (सुगमता पूर्वक)
सदंयेति	श्रीराम जी की गृहरूप पत्नी को प्राप्त करेगा। सीताजी को प्राप्त करके
जागृविः द्रुहः	सावधानी से रहकर द्रोह करनेवाले
रक्षसः पाति।	राक्षस रावण से अपनी रक्षा करे। पुनः
ओपशम्	सबको धारण करने वाली (अपनी इच्छा से)

तमः, हरिः
पयः कृणुते ।

नर शरीरधारी मायामयी सीताजी को, वह बानर अपने ऊपर स्निग्ध (दयालु) करे। अर्थात् जैसे गाय अपने बच्चे को देखकर द्रवित हो जाती है वैसे ही उसको देखकर सीता जी दया से द्रवित हो जायँ जिससे कि "विषस्यविषमौषधम्।" कण्टकेनैव कण्टकं निष्कासयति। न्यायानुसार

चम्बोः
उपस्तिरे
ब्रह्म
निर्णिजे।

बानरी और राक्षसी दोनों सैन्यों का संग्राम अग्नि में होम हो जाय। इसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्माण्डान्तर्गत समस्त सज्जनों का इसीमें कल्याण है। इससे वह ध्वनित हुआ कि सत्व प्रधान होने से बानरगण युद्ध में मर जाने से भी जीवित हो जायेंगे और ऐसा ही हुआ भी ॥ १०६ ॥

(८७) प्रकृष्टि हेव शूष एति रोरुवदसूर्यं वर्णं निरिणीते अस्य तम्।
जहाति बव्रिं पितुरेति निष्कृतिमुपप्रुतं कृणुते निर्णिजं तना ॥११०॥
(ऋ० ६।७१।२)

शूषः	श्री सीतान्वेषण में नियुक्त किये गये हनुमान जी ने
प्रकृष्टि	लोकों को पीड़ा देनेवाले राक्षसों को प्रकर्ष रूप से
हा इव	मारने के लिये उनके प्रचण्ड काल के समान
एति। अस्य	गमन किया। इन लोकोत्पीड़क रावणादि राक्षसों के
वर्णम् असूर्यम्	शरीर का रंग काला आकृति अत्यन्त क्रूर थी।
तम्, निरिणीते	उस प्रसिद्ध राक्षस रावण को, जाते-जाते ही हनुमान्
रोरुवत्।	जी ने अपने गर्जना मात्र से दीन = त्रसित-रुला दिया
पितुः निष्कृतिम्	और अपने पिता वायु का निश्चित किया हुआ वेग
एति। तना	प्राप्त किया। तब विस्तार—बड़े विकराल रूप से
निर्णिजम्	तथा बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होकर
उप प्रुतम् कृणुते	श्री सीताजी के पास जाने के लिये समुद्रका उलङ्घन किया और लङ्का विजय के बाद

बिभ्रम् । आवरणस्वरूप अल्प तुच्छ बानर रूप त्यागकर सुन्दर उत्तम रूप बना लिया ॥ ११० ॥

हनुमदादि सब वानर बीरा । धरे मनोहर मनुज शरीरा ॥

(८८) अद्रिभिः सुतः पवते गभस्त्योर्वृषायते नभसा वेपते मती ।
स मोदते नसते साधते गिरा नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि ॥१११॥
(ऋ० ६।७१।३)

सः अद्रिभिः	ये हनुमान जी समुद्र से निकले मैनाक पर्वत द्वारा
सुतः	पुत्र सम्बोधन पूर्वक विश्राम करने के लिये कहे जाने
गभस्तिभिः, पवते*	पर उसे हाथ की अँगुलियों से स्पर्श कर चले गये उसके शिखर पर बैठकर विश्राम नहीं किया क्योंकि
वृषायते	महारुद्रावतार होने से अपने ही तेज से प्रकाशित
नभसा वेपते	होते हैं अतः आकाश मार्ग से ही जाते हैं,
मती	परम मेधावी श्री हनुमान जी मैनाक से
मोदते । नसते	बड़े प्रसन्न हुए । वचन मात्र से
साधते अप्सु	सत्कार-प्रणाम इसलिये किया कि एक तो हमारे काम में सहायता देता है, दूसरे सर्व नद नदी पति परम तीर्थरूप समुद्र के जल में रहकर
नेनिक्ते	अपने को पवित्र करता रहता है, तथा महात्मा लोग
परिमणि यजते ।	सर्व देहों में अन्तर्यामी रूप अपने प्रभु ही को देखकर सबका सत्कार करते हैं ॥ १११ ॥

(८९) परिद्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिंचन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम् ।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्द्धञ्छ्रीणंत्यग्रियं वरीमभिः ॥११२॥
(ऋ० ६।७१।४)

सहस्य — श्री हनुमान् जी ने अपने वेग से खूब बढ़ते हुये

---

* तैं मैनाक होहि श्रमहारी । हनुमान तेहि परसा पुनि तेहि कीन्ह प्रणाम ।"

परिक्षुद्रम् आवृधम्	सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को अत्यल्प कर दिया अर्थात् सम्पूर्ण अन्तरिक्ष प्लवन करने को परिपूर्ण नहीं हुआ।
पर्वत	गिरिवर मैनाक के सत्कार करने पर हनुमान् जी को
मध्वः	सामान्य लोगों को मत्त कर देने वाले पुष्पों की वृष्टिसे
परिसिंचति। यस्मिन्	देवताओं ने सींच दिया। राक्षसों के जिन घरों में
आ सुहुतादः	सभी तरह अच्छी तरह पालित होकर गायें
ऊधनि अग्नियम्	दूध घृतादि से अत्यन्त श्रेष्ठ और
मूर्द्धनि वरीम्	उच्चस्थान प्राप्त्यर्थ श्रेष्ठ यागादि का साधन होकर
अभि	यज्ञादि प्रवर्तित करती हैं, और दुग्ध नहीं देने योग्य हो जाने पर राक्षस गण
श्रीणाति	उन गायों को मारकर खा जाते हैं। ऐसे गोभक्षक
हर्म्यस्य सक्षणिम्	राक्षसों के घरों को श्रीहनुमानजी नष्ट कर देना चाहते हैं, अथवा राक्षसों को नष्ट करके उन घरों को किसी सज्जन के हाथ में देकर उस घर का अभिभावक बना देना चाहते हैं॥ ११२॥

(९०) समीं रथं न भुजयोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन्॥११३॥

(ऋ० ६।७१।५)

सः अदितेः	वे श्री हनुमान् जी पृथ्वी के एक
उपस्थे आ	निकृष्ट किंवा श्रेष्ठ स्थान लंका में कुशलता पूर्वक
जिगात्	पहुँच गये अर्थात् सभी विघ्न बाधाओं से अनायास ही उन्मुक्त होकर समुद्र पार लंका में पहुँच गये।
गोः अपीच्य अस्य	पृथ्वी के अत्यन्त रमणीय क्षेत्र राक्षसेन्द्र रावण के
पदम्, यत्	स्थान जिस लंका को
मतुथा	माननीय चित्र वाले प्रशंशनीय मनस्वी विश्वकर्मा किंवा दानव श्रेष्ठ मय ने

अजीजनन् उपज्रयति ।	बनाया सँवारा उस लंका के पास जाकर उसे शिथिल कर दिया।
रथम् न	वह इस तरह कि रथ में जुते हुये घोड़े के समान
अहेषत ईम्	हिनहिनाती (गर्जती) हुई उस लंका पुरी की अधिष्ठातृ देवी के
सम् भुजयोः	पास जाकर उसको अपने दोनों हाथों की
दशस्वसारः	दशो अँगुलियों से एक साथ ही दोनों हाथों से
ज्रियति ।	दो थप्पड़ गाल पर मारकर मूर्च्छित कर दिया ११३

(७४) प्रमातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन् कुमारो न वीरुधः प्रसर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचं तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अंतः ॥११४॥

(नि० ५।२ ऋ० १०।७९।३)

कुमारः	बालक, पुष्पान्वेषण में तत्पर होकर
न बीरुधम्	जैसे पुष्पों की क्यारियों में
अपसर्पति	घूमता है इसी तरह श्री हनुमान् जी ने
प्र मातुः	अखिल ब्रह्माण्ड की जननी श्री सीता जी के पास
प्रतरम्, गुह्यम्	अत्यन्त श्रेष्ठ, और गोपनीय संदेश प्राप्त करने की
इच्छन् उर्वीः	इच्छा करते हुए पृथ्वी के अनेक देशों में
प्रसर्पत्	भ्रमण किया। लंका में जाकर नगर ढूँढ़ने के बाद श्री सीता जी का दर्शन न पाने पर
शुचन्तम् ससम्	शोक करते हुए अन्न धानगेहूँ आदि के
पक्वम्	पकजाने से पांडुर वर्ण हो गये खेत के
न	समान स्वर्णमय पांडुर वर्ण वाली लंका पुरी को
रिरिह्वांसम्	रावण के सहित ग्रसन करने अर्थात् सर्वथा नष्ट कर देने की इच्छा से
अन्ते उपस्थे रिपः ।	पृथ्वी के (लंका की पृथ्वी के) अत्यन्त गुप्त स्थान पर बैठकर विचार करना आरम्भ किया ॥ ११४ ॥

(७५) इषुर्न धन्वन्प्रतिधीयते मतिर्वत्सो न मातुरुपसर्ज्यूधनि ।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥११५॥
(ऋ० ६।६६।१)

न धन्वनि इषुः — जैसे धनुष पर रखकर बाण
प्रतिधीयते* मतिः — छोड़ा जाता है वैसे अत्यन्त मेधावी हनुमान जी भी रामजी के द्वारा सीता जी का पता लगाने को आकाश मार्ग से भेजे गये और जैसे श्रीरामबाण की गति अप्रतिहत है ऐसे हनुमान जी की गति आकाशमार्ग में भी अप्रतिहत है और

न वत्सः — जैसे गाय का बच्चा बन्धन छूटते ही गाय के पास
ऊधनि — स्तन पान करने की आशा से दौड़ा जाता है
अग्रे आयती — और गाय बच्चे के आगे होकर बच्चे को
उरुधारा दुहे इव — दूध की स्थूल धारा से परिपूर्ण कर देती है जैसे
मातुः उपसर्जि । — वैसे ही माता सीता जी के पास स्तन पायी बालक के समान सरल एवं निर्भय होकर हनुमानजी श्री रामजी द्वारा भेजने से गये ।

माता श्री जानकी जी ने हनुमान जी को उनकी अभिलषित वाणी (मनोवाञ्छित आशीर्वाद) से सन्तुष्ट किया। यदि कोई शङ्का करे कि अत्यन्त सुन्दरी श्री सीता जी को देखकर श्री हनुमान जी के चित्त में विकार क्यों नहीं हुआ ? तब इसका समाधान यह है कि एक तो दर्शन के पूर्व से ही मातृभाव होना और दूसरा भाव श्रुति बतलाती है कि—

सोमः इष्यते — सोमयागादि करके लोग जिस चित्त शुद्धि को चाहते है
व्रतेषु — वह साधन व्रतादि के द्वारा प्राप्त होने वाली चित्त शुद्धि तो
अस्य मतिः । — इन श्री हनुमान जी की स्वाभाविक सम्पत्ति है ॥११५॥

---

*जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । ताहि भाँति चला हनुमाना ॥

(७६) उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मंद्राजनी चोदते अंतरासनि।
पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव मधुमान्द्रप्सः परिवारमर्षति ॥११६॥
(साम १०।२।२, ऋ० ६।६६।२)

मतिः	परममेधावी हनुमान जी रावण की बाटिका में सीता जी के
उपः पृच्यते	समीप स्थित हो गये और वहीं से सीताजी के कानों में
मधु सिच्यते*	श्रीराम कथा रूपी अमृत ढालने सुनाने लगे। उस रामकथा का वर्णन अगले मन्त्र में है। हनुमान जी के प्रति माता को विश्वास हो गया
अन्तरासनि मन्द्राजनि	तब सीताजी के हृदय में स्थित बाग्देवी ने बोलने को
चोदते	प्रेरित किया, बाग्देवी से प्रेरित होने पर पूँछा कि
पवमानः	पाप नष्टकर पवित्रकारक श्री रामजी एक होते हुये भी
प्रघ्नताम्	संहार-प्रलय करनेवाले काल-अग्नि रुद्र आदि के
सन्तनिः इव	बहुत समुदाय सरीखे मालूम पड़ने लगते हैं वे
मधुमान्	मेरे प्रति परम प्रीति रखते तो हैं। यदि रखते हैं तो
द्रप्सः	प्रीति रखते हुये भी उद्दण्ड अधर्मी रावण के
परिवारम्	समस्त परिवार के पास उन्हीं कालाग्नि रुद्रादि रूप से
अर्षति।	क्या आयेंगे ? अर्थात् सपरिवार रावण को भस्म करने के लिये क्या श्री रामजी लङ्का आयेंगे ॥११६॥

श्री हनुमान जी ने जो अमृत कथा श्री जानकी जी को सुनाया था श्रुति उसका संकेत करती है कि—

(७७) संम्राजो ये सुवृद्धो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिविक्षयम्।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥११७॥
(ऋ० १०।६३।५)

ये संम्राजः	जो रामजी चक्रवर्ती श्री दशरथ जी के

---

* 'रामचन्द्र गुण बरणै लागा।' 'श्रवणामृत जे कथा सुनाई॥'

सुवृद्धः	बढ़े हुये प्रेम के आधार भूत थे, उन्होंने
यज्ञम्	ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और राजर्षि जनक के यज्ञ में
आययुः	आकर उनके यज्ञों को निर्विघ्न समाप्त कराया
अपरिहृता,	पुनः जिन्होंने शुद्ध सरल पुण्य तप से निर्मित
दिवि क्षयंदधिरे	परशुरामजी के स्वर्ग को नाश कर दिया है।
तान् आदित्यान्	उन आदित्य वंशीय श्रीराम लक्ष्मणादि के
आ नमसा	अत्यन्त समीप में नमस्कार पूर्वक सेवा करते हुये
विवास* महो	मैं दासभाव से रहता हूँ। अत्यन्त संकटों को जो आप
सुवृक्तिभिः अदितिम्	सह रहो हैं इसलिये पृथ्वी एवं पृथ्वी पुत्री आपके
स्वस्तये।	कल्याण के लिये अर्थात् आप अब श्रीराम जी पास
	पहुँच चलें इसलिये मैं आया हूँ ॥ ११७ ॥

(९१) श्येनो न योनिं सदनं धियाकृतं हिरण्ययमासदं देव एषति।
एरिणन्ति बर्हिषि प्रियं गिराऽश्वो न देवाँ अप्येति यज्ञियः ॥११८॥
(ऋ० ९।७१।६)

न श्येनः योनिम्	जैसे पक्षी आकाश में उड़कर घोंसले में
एषति। देवः	जाता है। उसी तरह महारुद्र श्री हनुमान् जी
धियाकृतम्	ब्रह्म सङ्कल्प मात्र से निर्मित
सदनम्	श्री राम गृहणी सीता जी के पास आये।
यज्ञियः अश्वः	जैसे अश्वमेध यज्ञ का अभिमन्त्रित घोड़ा
देवान् अप्येति	देवताओं को प्राप्त होकर उन्हें प्रसन्न कर देता है
न हिरण्ययम्	वैसे ही राम जी की भेजी हुई स्वर्ण मुद्रिका ने भी
आसदम्, बर्हिषि	सीता जी को प्रसन्न कर दिया। यज्ञ पूर्ण हो जाने
प्रियम् गिरा	पर जैसे देवताओं की आशीर्वादात्मक प्रिय वाणी
	यजमान् को हर्षित करती है उसी प्रकार अभिज्ञानांगु-

---

* रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुणानिधान की॥

	लीयक से सीता जी को हर्षित कर हनुमान् जी ने बोलने के लिये—जानकी जी को
एरिणन्ति ।	स्वाभिमुख किया। जब सीताजी हनुमान्‌जी की ओर मुँह करके बैठीं तब हनुमान् जी कहने लगे ॥११६॥

(९२) परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि।
सहस्राणीतिर्यतिः परायतीरेभो न पूर्वीरुषसो विराजति ॥११९॥
(ऋ० ६।७१।७)

दिवः परः	जो द्युलोक से भी सर्वथा परे हैं 'परोदिवो ज्योतिर्दीप्यते।' (छा० उ० ३।१३।७)
आ, व्यक्तः	जो अक्षय लाभ मोक्ष को देने वाले हैं,
अरुषः	पर स्वरूप होने से परम शान्त हैं और
कविः	सर्वज्ञ हैं परन्तु माया-मनुष्य होने के कारण स्त्री हरण हो जाने से गृहस्थधर्म रूप
त्रिपृष्ठः	अर्थ, धर्म, काम किंवा यज्ञ, राज, रति तीनों उनके पीछे पड़ गये हैं अर्थात् बिना धर्मपत्नी के तीनों का पालन नहीं हो रहा है, इसलिये आपके शोक में
गाः अभि	पृथ्वी के चारों ओर ढूँढ़ते हुये आपके बिना
अर्षति।	सब दिशाओ को शून्य देख हा! हा! शब्द करते हैं।

मन्त्र ११६ के उत्तरार्ध में सीता जी ने पूँछा था कि 'राम जी' मेरे प्रति प्रीति रखते हैं क्या? इस ११९ वें मन्त्र का पूर्वार्द्ध उसी प्रश्न का उत्तर है। और उसी ११६ वें मन्त्र में ही श्री सीता जी का यह भी प्रश्न था कि 'क्या सपरिवार रावण वधार्थ लंका में 'श्री राम जी' आयेंगे? उसका ही उत्तर इस ११९ वें मन्त्र का उत्तरार्द्ध है कि—

यतिः	आपकी प्राप्ति के लिये श्री राम जी
सहस्राणि ईतिः	सहस्रों बानर बीरों को एकत्र करके
परा यति	शत्रुओं के साथ पराक्रम करने का उद्योग कर रहे हैं
रेभः न	शब्द करते हुये गरजते हुए मस्त साँड़ की तरह

पूर्वीः	आपके वियोग काल से हम लोगों से मिलने पर भी
उषसः	राक्षसों पर क्रोधित हुये किष्किन्धा में
विराजति ।	विराजमान हैं अर्थात् अग्नि सरीखी तीक्ष्ण सेना लाकर समूल शत्रुओं को जला देने में समर्थ हैं केवल आपके निश्चित पता लगने भर की देरी है ।

कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन सहित अइहैं रघुबीरा ।
निशिचर मारि तुमहि लै जइहैं ॥११६॥

(६३) त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्त्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सङ्गो अग्रया ॥१२०॥

(ऋ ६।७१।८)

अस्य वर्णः	इन रामजी का जैसा क्षत्रिय वर्ण है उसी के अनुरूप
त्वेषम् रूपम् कृणुते	अपना प्रदीप्त रूप-वीरदर्प युद्ध में प्रकाशित करेंगे
सः यत्र समृता	वे श्री रामभद्र जी जिस किसी युद्ध क्षेत्र में
सङ्गः स्त्रिधः	प्रवृत्त हो जायेंगे उसमें शत्रुओं को
सेधति अशयत्	सदा के लिये मृत्यु शय्या पर सुला देंगे अर्थात् अवश्य ही सपरिवार रावण को मारेंगे ।
स्वधया दैव्यम् जनम्	पितृकार्य एवं देवकार्य सम्पन्न करने के लिये
अप्सा याति	जल का विभाग करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण देवपितृ कार्य केवल जलमात्र से करते हुए भी आपकी प्राप्ति के लिये केवल जलमात्र पानकर व्रतानुष्ठान में तत्पर रहते हैं । अपने पास कुछ कन्द मूल फल ही रखने से
सुष्टुती अग्रया	सुन्दर एवं सुसंस्कृत वाणी युक्त स्तुति मात्र से ही देवता पितरों एवं आगत ऋषियों अतिथियों का
सम् नसते ।	आतिथ्य करते हैं ॥ १२० ॥

तुम्हें यहाँ का पता बताकर लङ्का में किसने भेजा है ? श्री सीता जी के ऐसा पूँछने पर श्री हनुमान् जी कहने लगे कि—

(९४) उक्षेव यूथाः परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽवचक्षत क्ष्मां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ।।१२१।।
ऋ० ६।७१।६।।

उक्षा यूथाः	जैसे रेतः सिंचन की इच्छा से मत्त सांड़ गायों में
परियन	घूमता हुआ आवे, उसी तरह सम्पाति नामक गृद्ध
	पक्षी ने बानरों में आकर वचनामृत सेचन करते हुये
अरावीत् ।	यह शब्द कहा कि तुम लङ्का में जाओ वहीं अशोक
	वाटिका में शोकमग्ना सीता जी बैठी हैं। उस
	सम्पाती का परिचय यह है कि सम्पाती और जटायु
	दोनों अरुण के पुत्र गृद्ध पक्षी के रूप में प्रगट हुये।
सुपर्णः क्ष्माम्	सुन्दर पङ्ख वाला सम्पाती उड़ते उड़ते सारी पृथ्वी
अवचक्षत् ।	को देखता था। एक बार दोनों भाई सूर्यस्पर्श की
	इच्छा करके बहुत ऊपर तक उड़ गये तब सम्पाती ने
सूर्यस्य त्विषीः	सूर्य नारायण की प्रचण्ड किरणों का
अधित	स्पर्श किया अर्थात् जटायु को अपने पङ्खों के नीचे
	कर लेने के कारण वह अधिक जल गया जिससे एक
	पर्वत पर गिर पड़ा तब उसके पूर्व परिचित अत्रिनंदन
सोमः परि	चन्द्रमा ऋषि ने भगवद्भक्ति का उपदेश दिया उसी
अधिक्रतुना दिव्यः	भक्ति के प्रभाव से दिव्य दृष्टि वाला हो गया। जिससे
जाः पश्येत ।	अपने इष्ट देव श्री राम जी की पत्नी आपको देखा
	(और हम लोगों को बताया) ।।१२१।।

इस प्रकार अपने ऊपर श्री राम जी का परम अनुग्रह सुन कर श्री सीता जी अपनी मनोव्यथा श्री हनुमान् जी को बतलाने लगीं कि—

(९५) अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते ।
उताऽहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।१२२।।
नि० ६।३१ अथर्व २०।१२६।६ सू० १०।८६।६

अयम् शरारुः	यह दुष्टरावण मुमूर्षु मृत्युमुख में पड़ा हुआ है।
माम् अवीराम्	इसीसे मुझको अबला, अनाथा के
इव अभिमन्यवे	समान समझ कर राक्षसियों द्वारा दुःख देता है
उत अहं वीरिणी	परन्तु मैं वीरपत्नी हूँ।
इन्द्र पत्नी	परमैश्वर्यवान् कौशलेन्द्र श्री रामजी की पत्नी हूँ।
मरुत्सखा अस्मि	मरुपुत्र तुमको सहायक पा गई हूँ; और इस
विश्वस्मात् उत्तरः इन्द्रः।	सारे संसार से श्रेष्ठ सर्वैश्वर्य सम्पन्न तो मेरे पति श्री राम जी ही हैं अतः हमें दुःख देने वाला यह रावण अवश्य मरेगा ॥१२२॥

(९६) सं होत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
बेधा ऋतस्य बीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२१॥

ऋ० १०।८६।१०

सं होत्रं वा समनं	अग्नि होत्रादि यज्ञ में अथवा संग्राम में
नारी पुरा अवगच्छति	जो स्त्री पति के पहिले ही जाती है बह
ऋतस्य बेधाः	उस कर्म के फल स्वरूप ब्रह्मा जी के द्वारा
वीरिणी	बीर पत्नी एवं बीर पुत्र वाली होकर
इन्द्रस्य पत्नी	परमात्मा की स्त्री। "श्रीश्चतेलक्ष्मी च पत्न्यौ" यजु०
महीयते स्म्	श्री और लक्ष्मी के समान् शोभित एवं सम्मानित
विश्वस्मात् उत्तरः	होती हैं। इस सारे संसार भर में सबसे श्रेष्ठ
इन्द्रः।	सर्वैश्र्य सम्पन्न मेरे पति श्री राम जी ही हैं। अर्थात् अग्नि एवं जटायु से रक्षित मुझे श्री राम जी ही प्राप्त कर सकते हैं ॥१२३॥

श्री सीताजी के इस प्रकार कहने पर श्री हनुमान जी ने कहा कि गृहस्थ धर्म का पालन दम्पति (पति-पत्नी दोनों के) द्वारा होता है। दोनों आधा-आधा अङ्ग हैं अतः दाम्पत्य के आधे अङ्ग स्वरूप—

(९७) इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा संबिशस्व।

संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥ १२४ ॥
ऋ० १०।५६।१, साम १।७।२, अथर्व १८।३।७, तै० ब्रा० ३।७।१।२, तै० आ० ६।३।१।४।२

ते इदम् एकम्	आप का यह विग्रह एक अर्द्धाङ्ग है
एकम् परे	एक-दूसरा अर्द्धाङ्ग श्री रामरूप में समुद्र पार है
ऊ त	दोनों अर्द्धाङ्गों को मिलाने के लिये एक तीसरा मैं आ गया हूँ। अतः आप की ही कृपा से
ज्योतिषा	अत्यन्त कान्तिमान् प्रभावशाली, मुझ
तृतीयेन	तीसरे की सहायता से आप दोनों अर्द्धाङ्ग
संविशस्व	एक स्थान पर हो जाइये अर्थात् आपकी आज्ञा पाते ही मैं आप को श्रीराम जी के पास पहुँचा दूँ।
संवेशने तन्वः	संयोग हो जाने पर अर्द्धाङ्ग पूर्ण होने से दाम्पत्य
चारुः। देवान्	परम शोभायमान होगा क्योंकि देवताओं के
प्रियः	अत्यन्त प्रिय एवं यज्ञ करने योग्य श्रीराम जी ही हैं।
परमे जनित्रे एधि।	अतः आप अत्यन्त श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिये, रामजी के साथ स्थिर हो जाइये। अर्थात् आप मेरे कन्धेपर बैठ जाइये मैं आपको ले जाकर रामजी के साथ स्थिर कर दूँ ॥ १२४ ॥

उपर्युक्त ११६ मन्त्र के उत्तरार्द्ध में श्री सीता जी ने श्री राम जी की कृपा के सम्बन्ध में पूछा था अब अपनी शुद्धता दिखलाती हैं।

(७८) अव्ये बधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदिते ऋतंयते।
हरिरक्रान्यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते॥१२५॥
(ऋ० ६।८६।३)

अव्ये	
बधूयुः	मुझे अपनी पत्नी रूप में प्राप्त करने के लिये अनेकों भार्या एवं पुत्रों के होते हुए भी दुष्ट कामुक रावण ने अनेक उपाय किया, जब नहीं पाया तब
त्वचि परि	उसकी त्वचा = शरीर को पवनदेव खूब अच्छी तरह

पवते	शुद्ध कर रहे हैं अर्थात् रावण सूखकर पीला होता जा रहा है (ऐसा ये राक्षसियाँ कहती हैं) और जब से मुझे लाया है तबसे (ये राक्षसियाँ कहती हैं कि)
अदितेः ऋतंयते	"भूकन्या सीताकी प्राप्ति के लिये रावणने अब मानो ब्रह्मचर्य धारण किया है ; ऐसा इस तरह मालूम पड़ता है कि रावण के परिजनों द्वारा स्वर्ग से चुन चुन कर
नप्तीः	लाई गई रंभा-उर्बशी आदि सुन्दरी स्त्रियाँ रावण के पास जबरदस्ती
अध्नीते	शिथिल (विवस्त्रा) कर दी जाती हैं तब भी वे स्वर्ग की सुन्दरियाँ रावण को नही रुचतीं।" यदि कहा जाय कि ऐसी दशा में रावण सीता जी के साथ बलात्कार क्यों नहीं करता तो इसका कारण
हरिः	यह है कि—मन के अधिष्ठाता देवता सोम (चन्द्रमा) अथवा चित्त के देवता विष्णु
अक्रान्	रावण के अन्तःकरण को बलात्कार करने से आक्रान्त किये = रोके रहते हैं अतः पूर्वकाल में
यजतः मदः	अनेक यज्ञ करने वाले रावण का मद (वेग)
संयत नृम्णा	दबा रहता है इससे रावण बलात्कार नहीं कर सकता।
शिशानः	काम से दीप्यमान् अर्थात् कामाग्नि में जलता हुआ
महिषः	भैंसे के समान महान् कामी क्रोधी रावण शोभित
न शोभते।	नहीं होता दुबला एवं पीला होता जाता है ॥१२५॥

(७९) उक्षामिमाति प्रतियन्ति धेनवो देवस्य देवीरुपयन्ति निष्कृतम्।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं ननिक्तं परिसोमो अव्यत ॥१२६॥
(साम ६।३।२ ऋ० ९।६९।४)

उक्षाः मिमाति	मतवाले साँड़ के समान रावण स्वपत्नी से अन्यत्र रमण करके अपनी आत्मा का नाश करना चाहता है।

धेनवः	गायों के मालिक गायों को साड़ों के पास स्वयं ही जैसे ले जायें वैसे ही रावण के भय से स्वयं देवगण ही देवलोक से बारांगनाओं को रावण के पास लाते हैं परन्तु उर्वशी आदि अप्सरायें रावण के पास से
प्रतियन्ति	लौट जाती हैं और रावण को अप्सरायें अर्पण करके
देवस्य	देवताओं को भी बेगार से
निष्कृतिम्	छुट्टी हो जाती है अर्थात् देवगण तो रावण की आज्ञा पालन कर देते हैं और रावण अपने दोष के
ननिक्तम्	से देवदत्ता अप्सराओं को भोग नहीं सकता। इससे
देवीः उपयन्ति	देवाप्सरायें भी लौट जाती हैं। तात्पर्य जिसका अधर्म बढ़ जाता है उसका देवप्रदत्त सुख भी नष्ट हो
अर्जुनम्	जाता है। नारद श्राप से अर्जुन वृक्ष हो जाने वाले नलकूलवर तथा मणिकण्ठ के पास जाती हुई
अव्ययम्	सतत तरुण रहने वाली अप्सरा रम्भा को
अति वारम्	बलात् पकड़ कर रावण ने पुत्रवत् भतीजे का
अति अक्रमीत्	अति क्रमण किया अर्थात् उस काल में जो उसके लिये पुत्रवधू तुल्य थी उसके साथ बलात् रमण किया इसलिये कुबेर के पुत्रों ने श्राप दे दिया कि आज से रावण यदि किसी भी पर स्त्री के साथ बलात्कार करेगा तो उसी समय मर जायेगा। इसी श्राप के कारण मरणभय से सीता जी के साथ बलात्कार नहीं करना चाहता। यदि कोई शङ्का करे कि पाण्डु की तरह अत्यन्त कामुकता में मृत्युभय क्यों नहीं छोड़ देता ? तब इसका कारण श्रुति बतलाती है कि
अत्कम्	सम्पूर्ण राक्षसों के बध की इच्छा वाले
सोमः	मन के अधिष्ठाता देवता चन्द्रमा, रावण की
परि अव्यत।	सब तरफ के चित्त के भाव काम से रक्षा करते हैं।

इसी से रावण श्री सीता जी की प्राप्ति कामना से परिब्राजक-विरक्त के समान ब्रह्मचर्य धारण करता है, इसी से मुझ-सीता का संस्पर्श नहीं करता यदि बलात् करना चाहे तब नलकूबर-मणिकण्ठ के श्राप से तुरन्त मर जाये। इस प्रकार इन दोनों मन्त्रों में श्री सीता जी ने अपनी शुद्धता निर्वाह का कारण बतलाया ॥१२६॥

बिना देखे मुझे कैसे पहिचान लिया ? श्री सीता जी के इस प्रश्न पर श्री हनुमान् जी कहने लगे कि—

(८०) अमृक्तेनरुषता बाससा हरिरमर्त्यो निर्णिजानः परिव्यत।
दिवस्पृष्ठं बर्हणा निर्णिजे कृतोपस्तरणं चम्बोर्नभस्मयम् ॥१२७॥
ऋ० ९।६९।५॥

अमर्त्यः हरिः	मरणधर्म रहित; अमर = अप्राकृत बानर मैंने
निर्णिजानः	अन्वेषण करते हुये यहाँ आने पर आपके इस
अमृक्तेन	बहुत दिनों से धोये न जाने से मलिन होते हुये भी
रुषता	अत्यन्त महीन स्वर्ण तन्तुमय होनेके कारण देदीप्यमान्
बाससा	वस्त्रों से और वियोगिनी लक्षणों से आपको
परिव्यत। दिवः	अनुमान करके जान लिया। स्वर्गीय आनन्द से भी
पृष्ठम्	उच्च स्थान वाले ब्रह्मानन्दात्मक राम जी की
नभस्मयम्	अव्याकृत परमाह्लाददायिनी शक्ति आपको
निर्णिजे	सारे ब्रह्माण्ड में खोजवा कर परमेश्वर श्री राम जी नें
चम्बोः बर्हणा	बानर एवं राक्षस सैन्य से घोर युद्ध कराने की
उपस्तरणम् कृतः।	निश्चित तैयारी किया है ॥१२७॥

१२२ वें मन्त्र में जो श्री सीता जी ने 'उत अहमस्मिवीरिणीन्द्र पत्नी।' कहा था उसी पर श्री हनुमान् जी यहाँ कह रहे हैं कि—

(८१) सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते।
तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्राहते पवते धाम किंचन ॥१२८॥
साम० ९।३।१, ऋ० ९।६९।६, नि० ७।२

सूर्यस्य रश्मयः इव,	जैसे सूर्य की बहुत सी किरणों
साकं द्रावयित्नवः	एक साथ ही गमन करने वाली एवं
आशवः	शीघ्र गामिनी हैं वैसे ही मेरे समान एवं
मत्सरासः	मेरी जाति वाले बानरगण एक बारगी ही
प्रसुपः	सदैव से रहने वाले स्थावर अर्थात् बनों-पहाड़ों में
ईरते।	आपको ढूँढ़ते हैं। क्योंकि स्वामी श्री राम जी ने
तन्तुम्	महान् तन्तु-वंशसूत्र-परम्परा के चलाने अर्थात्
ततम्	विस्तार करनेवाली अपनी पत्नी = आपके चारों ओर
परि सर्गासः	अच्छी तरह से ढूँढ़ने के लिये बानरों को भेजा है।
इन्द्रादृते	परमैश्वर्यमान् राम जी की कृपा बिना उन बानरों में
किंचन धाम	कोई किसी प्रकार भी "गृहणीगृहमुच्यते" के अनुसार रामजी की गृहणी = धाम आपके स्थान शोधमें समर्थ
पवते न।	नहीं हो सकता। भाव यह कि राम जी के अनुग्रह से ही मुझे आपका दर्शन हो गया है ॥१२८॥

१२४ वें मन्त्र में जो हनुमान् जी ने "तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।" कहा था। उस पर श्री सीता जी ने कहा कि—

(९८) तनूष्टे वाजिन् तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम्।
अहृतो महो धरुणाय देवान् दिवीव ज्योतिः स्वमामिमीयाः ॥१२९॥

ऋ० १०।५६।२॥

वाजिन् ते	हे वेगवान् बानरेन्द्र ! यदि मैं तुम्हारे
तनूष्टे तन्वम्	अङ्ग। पीठ, कन्धे पर अपने अङ्ग को स्थापित = बैठ
नयन्ति तुभ्यम्	श्री राम जी के पास जाऊँगी तब तुम्हारे द्वारा
धातु स्मभ्यम्	धारण किये जाने पर मुझको शीघ्र ही राम दर्शन जन्य
शर्म	परमानन्द तो प्राप्त हो जायेगा परन्तु
वामम्	स्वेच्छा से परपुरुष स्पर्श जन्य कुटिलता प्राप्त होगी अर्थात् पाप एवं अकीर्ति होगी और रावण का स्पर्श

	तो अनिच्छा एवं निर्बलता से होने के कारण उसमें मेरा कोई दोष नहीं है। अतः
अह्रुतः महः	किसी से कभी नहीं हारने वाले महान् तेजस्वी श्री
देवान् धरुणाय	राम जी ही देवताओं को यज्ञादि के द्वारा पोषण
दिवि	करने के लिये हैं और मैं स्वर्ग की
ज्योतिः इव	ज्योति के समान् श्री राम जी की ही हूँ एतदर्थ
स्वम्	श्री राम जी की अपनी सम्पत्ति मैं उन्हीं से
आमिमीया।	प्राप्त करने योग्य हूँ। अर्थात् स्वयं श्री रामचन्द्र जी ही यहाँ आकर शत्रु नाशकर मुझे प्राप्त करें ॥१२६

तब श्री हनुमान जी ने प्रार्थना किया कि यदि ऐसा है तो श्री राम जी के लिये विश्वास योग्य कुछ अभिज्ञान रूप से कहिये तब श्री सीता जी ने कहा कि जो बातें मैं तुमसे कह रही हूँ—

(९९) दूरेतन्नामगुह्यं पराचैर्यत्त्वाभीते अह्वयेतां वयोधै।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान् मघवन् तित्विषाणः ॥१३०॥

ऋ० १०।५५।१

तत् गुह्यम्	वह बात बहुत ही गुप्त एवं कई वर्ष अर्थात्
पराचैः दूरे	बहुत दिन पहिले की और बहुत दूर चित्रकूट की है।
नाम	इस बात को निश्चय जानो। श्रीरामजी से कहना कि
यत् भीते	जिसके कारण भयभीत होकर द्यावा; पृथ्वी ने
त्वा अह्वयेताम्	आपको पुकारा था कि इस पीड़ा देने वाले
वयोधै	पक्षी से सीता की रक्षा कीजिये। तब उनके इस प्रकार की पुकारने पर आपने
अभीके पृथिवीम्	उस पक्षी के कारण समस्त पृथ्वीमण्डल और
द्याम् उदस्तभ्नाः	अन्तरिक्ष-आकाश-स्वर्गादि को स्तब्ध करा दिया था।
मघवन्	हे अखिल विद्यैश्वर्य पते ! (बमनावतार के कारण)
भ्रातुः पुत्रान्	अपने बड़े भाई इन्द्र के पुत्र काक रूपधारी जयन्तको
तित्विषाणः।	इषीकास्त्र मात्र से जलाते हुये से व्याकुल दिया था।

उस समय आपके अस्त्र से व्याकुल काक की रक्षा करने में तीनों लोकों में कोई भी समर्थ नहीं हुआ। इस चरित्र के स्मरण दिलाने का कारण यह है कि उस काक से बढ़कर दुखदायी रावण को मार कर मुझे ले चलिये। 'तात शक्र सुत कथा सुनायेहु। बाण प्रताप प्रभुहिं समझायेहु ॥१३०॥

श्रीराम जी के लिये श्री सीता जी का सन्देश लेकर श्री हनुमान जी रावण के अशोक बन को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे और रखवालों के रोकने पर उन्हें इस तरह मार पीट कर व्याकुल कर दिया कि जो मरने से बचे उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई जिससे उन्होंने समझा कि बहुत से देवता लोग आकर उपद्रव कर रहे हैं अतः बचे हुए घायल रक्षक जाकर रावण से कहने लगे कि—

(१००) देवास अयान् परशूँरबिभ्रन् वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्।
नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥ १३१ ॥
(ऋ० १०।२८।८)

देवासः आयन्	देवतागण अशोक वाटिका में आ गये हैं और ये
परशून्	हमलोगों के ही परशु आदि शस्त्रों को छीनकर
अबिभ्रत् विड्भिः	धारण किये हैं और हमलागों के परिवार सहित
वना वृश्चन्तः	अशोक बन को एकदम उजाड़ते और
अभि आयन्	इधर-उधर चारों तरफ खूब दौड़ते हैं।
सुद्रवम् वक्षणासु	अत्यन्त शीघ्रगामी अग्नि की लपटें जैसे घरों को
दधतः अनुयत्रा	जलाती हुयी पीछे—अर्थात् अलग पड़े हुए
कृपीटम् दहन्ति	काष्ठादि को भी जला डालतीं हैं। इसी तरह
तत् आ नि।	वे सब देवतागण चारों तरफ से एक-एक कुञ्ज आदि नष्ट करते हैं तब पास के वृक्षादि भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १३१ ॥

ऐसा सुनकर रावण विचारने लगा कि—

(१०१) शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेद मारात्।
बृहन्तं चिद्दहते रंधयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥ १३२ ॥
(ऋ० १०।२८।९।

शशः	तुच्छ पशु शशक = खरगोश जैसे
प्रत्यञ्चम् क्षुरम्	तीक्ष्ण धार वाली तलवार को
जगार	निगलने की चेष्टा कर अपना ही अनन्त करता है,
आरात् लोगेन् अद्रिम्	या कोई दूर से ही मिट्टी का ढेला मारकर पर्वत को
व्यभेदम् ।	चूर्ण करना चाहे। वही हाल मेरा है। (इससे ज्ञात होता है कि अपने मरण के लिये ही रावण ने श्री सीता जी का हरण किया था।)
वयत् वत्सः	तुरन्त का जन्मा हुआ बछड़ा समय पर बढ़कर
शूशुवानः वृषभम्	बहुत बड़ा पराक्रमी साँड़ हो जाता है। वैसे ही
बृहन्तम् चित्	अत्यन्त महान् एवं चैतन्य निश्चित् आत्मा को
ऋहते	त्यागकर तुच्छ सुखके लिये लोगोंको मैं पीड़ा देता हूँ।
रन्धयानि ।	पीड़ा देते २ मेरा पाप बहुत बढ़ गया है ॥ १३२ ॥

यद्यपि रावण को ऐसा ज्ञानोदय हुआ तथापि उसके तमः प्रधान प्राणी-राक्षस होने के कारण क्षणभर में ही वह ज्ञान तिरोहित हो गया। इससे—

(१०२) सुपर्ण इत्था नखमासिषायाऽवरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत्॥१३३॥
(ऋ० १०।२८।१०)

सुपर्णः	पक्षी के समान आकाश में विचरनेवाले रावणने
इत्था	इस प्रकार अनेक यत्न कर
नखम्*	छेदनभेदनादि से दुखी न होनेवाले हनुमानजी को
आसिषाय	बँधवाने के लिये ब्रह्मपाश का प्रयोग करवाया
रुद्धः	परन्तु श्री हनुमान जी ब्रह्मपाश से घिरे होने पर भी
सिंहः न	महाबली मत्त मृगेन्द्र के समान
परिपदम्, तर्ष्यावान्	चारों ओर घूमते ही थे, और जैसे प्यास से व्याकुल
महिषः	भैंसा जलकी ओर जाता है और महान् योगियोंकी

* "नखिद्यते च्छेदन भेदनादिना" इतिनखम्।

चित् निरुद्धः	मनोवृत्ति रोके जाने पर भी रोकनेवालों को
कर्षत्	वह मन खींचकर ले ही जाता है। वैसे ही
एतत् तस्मै अयथं	वे राक्षसगण हनुमान् जी को रोक रखने में असमर्थ थे
गोधा कर्षत्।	तो भी पाश में बाँधकर खींचने लगे ॥ १३३ ॥

इस प्रकार ब्रह्मपाश में बँधे होने पर भी श्री हनुमान जी ने जब कुछ परवाह नहीं किया तब ब्रह्मपाश का अपमान न हो इसलिये देवतागण श्री हनुमानजी की प्रार्थना करने लगे—

(१०३) अक्षानहो नह्यत नोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत।
अष्टाबन्धुरं बहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥१३४॥
(ऋ० १०।५३।७)

सोम्याः !	हे भगवद्भक्त परमवैष्णव श्री हनुमान जी !
नह्यत अक्षः	आपको बाँधते हुए रावणकुमार अक्ष
आ नहः	स्वयं ही सब प्रकार से मृत्यु पाश में बँध गया।
रशनाः इष्कृणुध्वम्	कृपा करके ब्रह्मपाश को अभी स्वीकार कर लीजिये
न उत आ	बाद में चाहे इस ब्रह्मपाश को सब तरह से
पिंशत	खण्ड-खण्ड ही कर डालियेगा तो कोई हर्ज न होगा
अष्टा	दो हाथ दो पैर दो कन्धा और दो उरू ऐसे आठ
बन्धुरम् रथम्	जगह बँधे हुए अपने शरीरस्वरूप रथ को
अभितः बहत	इस लङ्का नगरी में ले-जाइये।
येन	जिससे = आपके लङ्का नगरी में जाने से।
देवासः प्रियम् अभि	देवतागण अपना अभीष्ट मनोरथ अच्छी तरह
अनयत्।	प्राप्त करें। आपके लंका चले जाने से देवतों को सुख होगा ॥ १३४ ॥

देवताओं की इस प्रार्थना को स्वीकार करके श्री हनुमान जी बँधकर लङ्का को गये। वहाँ जब रावण ने उनकी पूँछ में अग्नि लगवा दिया तब इसे दूर से देखकर श्री सीता जी अग्नि से प्रार्थना करने लगीं कि—

(१०४) रक्षोहणं वाजिनमाजिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुपयामि शर्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा सरिषः पातु नक्तम् ॥१३५॥
(ऋ० १०।८७।१, अथर्व० ८।३।१ तै० सं० १।२।१४।६)

रक्षोहणम्	अक्षादि राक्षसों के नाश कर्ता एवं
वाजिनम्	परम वेग वाले हनुमान जी को इस दशा में देखकर
आ जिघर्मि	मैं शोक से आँसू बहाती हूँ
मित्रम्	हनुमान जी के पिता-पवन के सखा जो कि
प्रथिष्ठम्	पवित्र एवं परम संस्कृत हैं उन अग्निदेव से
शर्म उपयामि	हनुमान जी के कल्याण की याचना करती हूँ।
शिशानः क्रतुभिः	मैं पहिले (जब श्रीरामजी के साथ थी) यज्ञों के द्वारा
समिद्धः अग्निः	देदीप्यमान् अग्नि संदीपित किये गये हैं।
सः नः	वही अग्निदेव स्वयं मेरे प्रिय दास मारुति की
दिवानक्तं सरिषः पातु।	दिन-रात सर्वदा हिंसा (सभी कष्टों) से रक्षा करें ॥१३५॥

(१०५) अयो दंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुपस्पृश जातवेदः समिद्धः।
आ जिह्वया मूर देवान् रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यापिधत्स्वासन् ॥१३६॥
(ऋ० १०।८७।२)

अयोदंष्ट्रः अर्चिषा	हे लौहमय दाढ़ वाले अग्ने ! प्रज्वलित लपट से
यातुधानान् उपस्पृशः	इन राक्षसों को चाट जाइये—जला दीजिये
जातवेदः समिद्ध	हे सब कुछ जाननेवाले अग्निदेव ! प्रज्वलित होकर
जिह्वया मूर देवान्	अपनी जिह्वा की लपट से देवतों के मूर = अग्रज असुरों को
आरभस्व	सब तरफ से चाट लीजिये = सर्वथा जला डालिये।
क्रव्यादः वृक्त्वी	मांसाहारी राक्षसों को एकत्र करके अपने मुख में
आसन् अपिधत्स्व।	शीघ्र ही छिपा लीजिये = चबा-जला डालिये ॥१३६॥

(१०६) यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्त मग्न उत वा चरन्तम्।
यद्वाऽन्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥१३७॥
(ऋ० १०।८७।६ अथर्व ८।३।५६)

जातवेदः इदानीम्	हे सर्वज्ञ अग्नि देव ! इस समय
यत्र उत तिष्ठन्	जहाँ भी राक्षस गण हों, वे चाहे बैठे हों
वा मग्नः यद्वा	या जल मे निद्रा में या आनन्द में डूबे हों, या
अन्तरिक्षं चरन्तम्	बिमान पर आकाश में घूमते हों या खाते पीते हों
पथिभिः पतन्तम्	या मार्ग में जाते हों सब राक्षसों को, उस रावण को
शर्वा अस्तम्	और उसके घर की सम्पूर्ण वस्तुओं को
शिशानः, विध्य ।	जलाते हुये, सबका नाश कर दीजिये ॥ १३७ ॥

(१०७) परि त्वाऽग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवे दिवे हन्तारं भंगुरावताम् ॥ १३८ ॥
(ऋ० १०।८७।२२, अथर्व ७।७१।१, =८।३।३ शु० य० ११।२६, तै० सं० १।५।६।४, =४।१।२।२५)

अग्ने ! त्वा	हे अग्नि देव ! हे परमतेजस्विन् ! आपको
विप्रं सहस्य पुरं	व्यापक कहा गया है आप शत्रु के नगर के
परि	चारों तरफ अपना तेज स्थापित कीजिये अर्थात् सारा नगर घेर कर स्थित हो जाइये, जिससे कोई बाहर न जा सके
धृषद्वर्णम्	जो दूसरों को तो धर्षित करता है दबा देता है परन्तु जिसे कोई घर्षण नहीं कर सकता ऐसे अग्नि देव !
दिवेदिवे भङ्गुरवतां	नित्य प्रति विनाश शील माया करने वाले राक्षसों का
हन्तारं वयं	नाश करने वाले आपकी मैं
धीमहि ।	प्रार्थना करती हूँ कि आप हनूमान् जी की रक्षा कर दीजिये ॥ १३८ ॥

लङ्का जला कर जब श्री हनुमान जी बानरों सहित श्री राम जी के पास पहुँचे तब—

(१०८) हरिं मृजंत्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कतिचित् परिप्रियः ॥१३९॥
(ऋ० ९।७२।१)

* अरुषः	रोष रहित परमशान्त स्वरूप श्री राम जी बारम्बार
† हरिं मृजन्ति	हरि = श्रीहनुमान्‌जी के ऊपर प्रेम पूर्वक हाथ फेरते हैं
धेनुभिः कलशे	जैसे गाय से उत्पन्न पंचगव्य से युक्त घट में
सोमः सं अज्यते	सोमवल्ली लता का परिष्कृतरस विधिवत् मिलाया
वाचम्	जाता है उसी तरह हनुमान् जी ने सीता जी के प्रेम सन्देश रूप वाणी को सुनाकर
युज्यते।	श्रीरामजीके प्रेमपूरित हृदयकलशको पूर्णकर दिया।
मतिः हिन्वते	और कहा कि जिनकी बुद्धि सदैव सद्विचार में तत्पर रहती है उन श्रीराम जी की जब
पुरुष्टु तस्य	श्रेष्ठ शब्दों में बहुत काल तक स्तुति करनेवाले
ईरयति वाचं	ब्रह्मा शिवादि के द्वारा स्तुति की जाती हुई वाणी भी
परि प्रियः न उत्	सर्वथा प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होती, तब भला
कतिचित्।	मेरी वाणी किस गणना में है अर्थात् मैं जितनी भी स्तुति कर सकूँगा वह सब आपकी महिमा के सामने अत्यल्प ही रहेगी ॥ १३९ ॥

श्री हनुमान् जी के सन्देशा सुना चुकने पर—

(१०९) साकं वदन्ति बहवो मनीषिण इन्द्रस्य सोमं जठरे यदादुहुः।
यदीं मृजन्ति सुगभस्तयो नरः सनीडाभिः दशभिः काम्यं मधु ॥१४०॥
(ऋ० ९।७२।२)

बहवः मनीषिणः साकं	बहुत से बुद्धिमान् बानर गण एक साथ ही
वदन्ति इन्द्रस्य	बोलने लगे क्योंकि वे सब परमैश्वर्य मान् रामजी के
जठरे सोमम्	हृदय में सीता जी की चर्चा रूपी सोमवल्ली को

---

* शिशु पनते पितु-मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम विधु बदन रिसौहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ ॥ विन० प०

† हरिश्चन्द्रार्क वाताश्व शुकभेक यमाहिषु।
कपौ सिंहे हरेऽजेंऽशौ शक्रे लोकान्तरे पुमान् ॥ मेदिनी कोश।

आदुहुः । यत्	निचोड़ते हुये उसे भरने लगे । क्योंकि
सुगभस्तयः नरः	ज्ञान भक्ति सम्पन्न उत्तम पुरुष पाँच ज्ञान वृत्ति, पाँच धी वृत्ति,
दशभिः सनीड़ाभिः	इन दश समानशील कर्म अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान द्वारा
ईम् काम्यम्	इन श्रीराम स्वरूपी कमनीय एवं सर्व वाञ्छनीय
मधुम् ऋजन्ति ।	अमृत को ही खोजते हैं । अर्थात् रामजी के साथ संभाषण भी भगवत्कृपा रूप महत्पुण्य का फल है । अतः 'को न चहै जग जीवन लाहू ।' इससे बहुत से बुद्धिमान् बानर एक साथ ही कहने लगे क्योंकि अलग २ संभाषण के लिये इतना पर्याप्त समय नहीं मिल सकता ॥ १४० ॥

श्री सीता जी की दशा वर्णन करते हुये श्री हनुमान् जी ने एवं बहुत से बुद्धिमान् बानरों ने कहा कि—

(११०) अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनं गृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥१४१॥

(ऋ० ६।७२।३)

सूर्यस्य दुहितुः	सूर्य वंश की कन्या सीता जी का समाचार यह है कि
प्रियम्	रावण के चाटुकारिता युक्त प्रलोभन देने वाले प्रिय
रवं तिरः, गाः	बचनोंका तिरस्कार करदेती हैं और पृथ्वी में समाकर
अभि, अत्येति	इस लोक से अतिक्रमण कर जाना चाहती हैं परन्तु केवल आपके दर्शन रूपी आशा से रुकी हैं । यद्यपि
विनं गृसः अस्मै	हर ले जाने वाला रावण सीताजी को देने के लिये
योषं अनुअभरत	अनेक सुन्दर २ वस्तुयें सामने ले जाता है तो भी
स्वसृभिः जामिभिः	सीताजी बहिन एवं सहचरीके समान देह और देहबल
द्वयीभिः संक्षेति	इन दोनों से अत्यन्त क्षीण होती जा रही हैं । अतः
अरममाणः ।	बिना किंचित् मात्र भी विश्राम किये शीघ्र ही चलकर श्री सीता जी को प्राप्त कीजिये ।

'वेगि चलिय प्रभु आनिये भुजबल खलदल जीति ।' ॥१४१॥

(१११) नृधूतो अद्रिसुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः ।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१४२॥
(ऋ० ६।७२।४)

अद्रिसुतः	बड़े २ पत्थर शिरपर लेकर राक्षसियां कहती हैं कि इन्हीं पत्थरों से चूर-चूर कर दी जावोगी । ऐसे नित्य
नृधूतः बर्हिषि	राक्षसियोंसे डरवाई जाती सीताजी तृणपर बैठी रहती हैं।
प्रियः गवाम्	सीता जी एवं समस्त सज्जनों के प्रिय आप, इन्द्रियों के
पतिः	तथा पृथ्वी के अधीश इन्द्रीजित एवं पृथ्वी के
प्रदिवः इन्दुः	पालन कर्ता अनादि पुरुष स्व रक्षण में समर्थ ईश्वर
ऋत्वियः पुरन्धिवान्	श्रुति शास्त्र से व्याख्यात ज्ञेय और बहुत बुद्धि युक्त हैं
मनुषः सोम !	परन्तु लीलार्थ मनुष्य बने हैं । हे सोमवत् प्रियदर्शन !
इन्द्रः ! ते यज्ञ साधनः	हे सर्वैश्वर्यमान् प्रभो ! आपकी सहधर्मचरी सीता जी
शुचिः धिया पवते ।	अपनी पवित्र बुद्धि से लंका में अपनी रक्षा करती हुई अपने को पवित्र कर रहीं हैं ॥ १४२ ॥

(११२) नृ बाहुभ्यां चोदितो धारया सुतोऽनुष्वधं पवते सोम इन्द्र ते ।
आ प्राः क्रतून् समजैरध्वरे मतीर्वेर्न द्रुषच्चम्बोरासदद्धरिः ॥१४३॥
(ऋ० ६।७२।५)

इन्द्र !	हे परमैश्वर्य शालिन् प्रभो शीघ्र ही ऐसा कीजिये कि
नृ बाहुभ्यां चोदितः	नर रूपी आपकी भुजाओं से छूटे बाण जाकर
सोमः ते	यज्ञ साधन स्वरूपा आपकी पत्नी सीता जी के
अनुष्वधम् पवते	शरीर प्राण की रक्षा करैं । आप
धारया सुतः	अविच्छिन्नप्रवाह रूप से शत्रुओं पर बाण छोड़ कर
क्रतून्	अपने श्रीसीता जी के हमसब बानरों के सङ्कल्पों रूपी यज्ञों को
आ प्राः	अच्छी तरह पूरा कर लेंगे अर्थात् कार्य अवश्य

अध्वरे चम्बोः मतीः समजैः, — सिद्ध होगा। युद्ध भूमि में सम्पूर्ण बानरों एवं राक्षसों की सेनाके मध्यमें बुद्धिके धर्म शौर्यादिकों को अच्छी तरह से जानने वाले एक आप ही हैं अर्थात् आप शत्रुओं के जीतने में सर्वथा समर्थ हैं। यदि कहिये कि हम लोगों ने सीता जी को कैसे देखा है? तो

वेः न (इव) द्रुषत् हरिः आसदत्। — वृक्षारूढ़ पक्षी के समान एक छलाँग में ही समुद्र का उल्लंघन करके श्री हनुमान् जी लंका जाकर पुनः लौटे आये हैं इन्हीं से सब समाचार हम सभों ने जाना है ॥ १४३ ॥

(११३) अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कपयोऽपसो मनीषिणः।
समीग्रावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भवः ॥१४४॥

(ऋ० ६।७२।६)

जब सभी बानरों से प्रोत्साहित किये जाने पर श्री राम जी ने सब ऋक्षों बानरों आदि को साथ लेकर प्रस्थान किया तब—

मतयः मनीषिणः कपयः स्तनयन्तं अंशुं अपसः दुहन्ति — मन, इन्द्रियों के निग्रह में परम समर्थ परम बुद्धिमान बानरों ने गर्जते हुए अति विख्यात अग्नि सूर्य वायुके कर्मों को = सबके सार को अपने में परिपूर्ण किया अर्थात् वे बानर गण अग्नि के सार तत्व दाहकत्व, सूर्य के सारतत्व सर्वविषयप्रकाशकत्व और वायु के सार तत्व शीघ्रगामित्व में परिपूर्ण हो गये। अतः

अक्षितं कविम् — अक्षीण बल वेग वाले उन बानरों ने क्रान्ति दर्शी होकर गर्जते हुए गमन किया और जाकर

संयतः ऋतस्य — जो एकत्र होकर चले और एकत्र होकर अचल हो जाये ऐसे स्वभाव वाले जल के

योना सदनः — आधार समुद्र के पास कुछ काल तक ठहरने के लिये पड़ाव डाल दिया तत्पश्चात् कुछ काल तक

पुनर्भवम्	जो पूर्व काल में अनेक बालू धातु आदि के संयोग से पत्थर के ढेर (पर्वत) हो गये थे उन्हें पुनः दक्ष शिल्पी नल नील ने लम्बा, चौड़ा त्रिकोण चिकना आदि आवश्यकतानुसार बनाया।
ग्रावा ईम्	ऐसे पर्वतों = बिना गढ़े सँवारे पत्थरों को गढ़ सँवार कर लोक प्रसिद्ध पुल के समान
सम् यन्ति।	अच्छी प्रकार से एक में एक पर्वत मिलाकर पुल बाँध दिया। इस प्रकार समुद्र के जल को स्तब्ध कर देने से बानरों द्वारा समुद्र का भी सार दुहना सिद्ध हो जाता है॥ १४४॥

(११४) नाभा पृथिव्या धरुणो महोदिवोऽपामूर्मौ सिंधुष्वंतरुक्षितः।
इन्द्रस्य वज्रो वृषभो विभूवसुः सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः॥१४५॥
(ऋ० ६।७२।७)

दिवः महः	द्युलोक में भी अत्यन्त महती
अपां ऊर्मौ अन्तः	जलराशि समुद्र के उत्ताल तरङ्गों के मध्य में
पृथिव्याः नाभा	पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न उन पर्वतों को
धरुणः, सिन्धुषु	नौका के समान स्थापित करके सेतु बाँध दिया। जिन पर्वतों से सदा ही, बड़ी २ नदियाँ निकलकर
उक्षितः	पृथ्वी को सिंचित करती रहती थीं वे पर्वत तक सेतु बन्धनार्थ लाये गये थे। यदि कोई कहे कि पानी पर पत्थर कैसे तिरे? तो इसका उत्तर श्रुति देती है
इन्द्रस्य बज्रः	परमेश्वर श्रीराम जी की बज्रवत् अव्याहत गति है।
वृषभः विभूवसुः	श्रीराम जी का धर्म व्यापक फल वाला है और जैसे
चारु मत्सरः	देवताओं के हृदय को आनन्द मत्त बना देनेवाले
सोमः	सोमयज्ञ के फल स्वरूप प्राप्त चन्द्र कान्त मणि
हृदे	अग्निकुण्डको शीतल करनेके लिये लाई जाती है उस
पवते।	सोमोद्भव चन्द्रकान्त मणि के प्रभाव से—

अपना दाहकत्व गुण छोड़कर अग्नि शीतल हो जाता है उसी तरह श्रीराम जी के धर्म बल से समुद्र ने भी उतने स्थल पर अपना भिगाने और डुबाने वाला गुण छोड़कर घनत्व एवं काठिन्य धारण कर लिया इसी से पर्वत न डूबे न बहे। "बाँधा सेतु नील नल नागर।" "श्री रघुबीर प्रतापते सिंधु तरे पाषान।" ॥१४५॥

श्रुति लङ्का का वृत्तान्त कह रही है कि—

(११५) जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति ॥१४६॥
(ऋ० १०।३४।१०)

कितवस्य जाया	धूर्त रावण की, स्त्री मंदोदरी = धान्यमालिनी का हृदय
तप्यते, क्वस्वित्	अत्यन्त तपता रहता है, क्योंकि वह स्वकर्मानुसार
चरतः पुत्रस्य	परलोक में चले जानेवाले, पुत्र वीरसेनानी अक्ष की
माता	माता थी, हनुमान् जीने अक्ष को मार डाला था अतः
हीना	हतपुत्रा होने से तप्त हो रही थी, और रावण भी
ऋणावा	लंका ऐसी दुर्गम भूमि और समुद्र ऐसे जलाशय के रहते हुये भी हनुमानजी के प्रताप को देखकर
अन्येषाम् बिभ्यत्	श्रीराम-सुग्रीवादि से, भय करने लगा अतः
अस्तम् धनम्	गृह और धन-लक्ष्मी-सीता जी तथा राज्य की
इच्छमानः	इच्छा करते हुये दिन भर अनेक उपाय विचार करके
उपनक्तं एति।	प्रदोष काल—सन्ध्या में घर जाता है।

उहाँ निशाचर रहहिं सशङ्का। जब ते जारि गए कपि लङ्का॥ १४६॥

सन्ध्या समय घर पहुँचकर रावण विचारने लगता है कि—

(११६) न मा मिमेथ न जिहीड़ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत।
अक्षस्याहमेकपरस्यहेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥१४७॥
(ऋ० १०।३४।२)

एषा — यह मन्दोदरी मेरी पाणिगृहीता भार्या है इसने कभी

मा, न मिमेथ	मेरा किसी प्रकार का, अप्रिय नहीं किया प्रत्युत
मह्यं, सखीभ्यः	मेरे लिये और मेरे मित्रों के लिये भी
शिवा आसीत्	सदैव कल्याण रूपिणी ही रहा करती है।
अनुव्रताम् जायाम्	ऐसी अनुगामिनी पतिव्रता सहचारी पत्नी को
अहं, एकपरस्य	मैं दुख देने का कारण हुआ कि, एकशत्रु बन्दर के
हेतोः, अक्षस्य	कारण, अक्ष को भेजकर अक्ष के मारे जाने से मैं
अरोधम्।	अवरुद्ध निश्चेष्ट हो गया हूँ। मुझे धिक्कार है। ॥१४७॥

रावण के किसी हितकारी की उक्ति है कि इस समय राक्षसेंद्र रावण का स्वभाव ऐसा हो गया है कि—

(११७) द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विंदामि कितवस्य भोगम्॥१४८॥
(ऋ० १०।३४।३)

श्वश्रूः	राजा रावण उपदेश करती हुई अपनी सासु से
द्वेष्टि* जाया	द्वेष करता है और पत्नी धान्यमालिनी = मन्दोदरी
अपरुणत् हिं	को भी सुख नहीं देता। क्योंकि निरन्तर रावण का
नाथितः	हृदय उपतप्त रहता है अर्थात् दग्ध रहता है और
मर्डितारम्	जिससे उसे सुख होने को है वह सुखदाई पर स्त्री सङ्ग
न विन्दते जरतः	नहीं पा रहा है अतः जैसे अत्यन्त बूढ़े
अश्वस्य वस्नि	घोड़े का देह अधिक समय तक नहीं रहता।
इव अस्य भोगं	वैसे ही इस रावण का शरीर अब रहते दिखलाई
न विन्दते।	नहीं पड़ता। कामवेदना से अवश्य मर जायेगा १४८

* सम्भवतः जैसे रावण का नाना समय-समय पर रावण को सदुपदेश दिया करता था वैसे ही रावण की सासु भी उपदेश करती रही है और रावण सासु का भी वैसे ही अपमान करता रहता था जैसा कि माल्यवान का। यथा मानसे—

"बूढ़ भयसि नतु मरतेउ तोहीं। अब जनि नयन दिखावसि मोहीं।"
"रिपु उत्कर्ष कहत शठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥"

श्री हनुमान् जी के लङ्का जलाकर चले आने पर लङ्का में एक दिन

(११८) सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आकृतानि ॥१४२॥
ऋ० १०।३४।६

कितवः, पृच्छमानः	धूर्त रावण, सलाह पूँछने की इच्छा से
सभां एति	सभा भवन में गया तथा सबको बुलवाया और
जेष्यामि इति तन्वा	मैं रामदल को जीत लूँगा ऐसे अभिमान से शरीरको
शूशुजानः	फुलाकर अकड़कर बैठा। 'बैठा जाइ सिंहासन फूली'
अक्षासः अस्य	परन्तु उस सभा में पुत्र अक्ष के समानपुत्र प्रहस्त एवं बात्सल्य भाजन विभीषणादिकोंने इस रावण के
कामं वितिरन्ति	कुत्सित मनोरथ का अधिक तिरस्कार किया और
प्रतिदीव्ने	जिन राम जी को रावण जीतना चाहता है उनके
कृतानि आदधत्।	लिये सीता जी के लौटा देने में ही विभीषणादिकों ने कृतार्थता कल्याण बताया ॥१४६॥

इसके बाद भी वे सज्जन लोग रावण से प्रार्थना करते हैं कि—

(२२१) उदीर्ष्वातः पतिवतीं ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीड़े।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥१५०॥
ऋ० १०।८५।२१

अतः	इस काम से अर्थात् इन सीता जी की प्राप्ति की इच्छा से
उदीर्ष्व हि एषा	विरत हो जाइये। क्योंकि ये सीता जी पर पत्नी हैं
पतिवती	इनका पति वर्तमान है ये अपने पति को ही चाहती हैं
विश्वावसून्	सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले आपको
नमसा ईडे	हम लोग नमस्कारपूर्वक नम्र-उत्तम शब्दों से स्तुति करते हैं कि
अन्याम् पितृषदम्	अन्य किसी पिता के घर स्थित अर्थात् कुमारी एवं

व्यकाम् इच्छ ।	स्पष्ट हो स्त्री लक्षण जिसका ऐसी युवती कन्या की इच्छा कीजिये अर्थात् व्यवहार में लाइये । विवाह लीजिये
स: ते भागः	वह स्त्री रूपी धन आपका न्यायतः भाग है वह आपकी पत्नी होगी ।
जनुषा तस्य विद्धि ।	जन्म से ही उसके ऊपर अपना अधिकार समझिये ।

(१२०) उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥१५१॥
ऋ० १०।८५।२२

विश्वावसो !	हे सम्पूर्ण संसार की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले । रावण ! आप
अतः उदीर्ष्व	इन सीता जी की प्राप्ति की चेष्टा से विरत हो जाइये और
जायाम् सम्	राम की पत्नी को सम्यक् = आदर से ले जाकर उनके
पत्या सृज	पति श्री राम चन्द्र जी को दे दीजिये । हम लोग
त्वा तमसा इडामहे	आपकी नमस्कार पूर्वक स्तुति करते हैं कि
अन्यां प्रफर्व्याम्	अन्य किसी सुस्तनी युवती कन्या की
इच्छ ।	इच्छा कीजिये । अर्थात् उससे विवाह कीजिये १५१

इस प्रकार सज्जनों के समझाने पर सभासदों में—

(१२१) उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्नशृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१५२॥
ऋ० १०।७१।४ ति० १।८।१६

उत त्वः पश्यन्	कोई तो रावण की ओर सेनापतियों आदि की ओर देखते हुये और कोई हनुमान जी के किये गये नगर दाह राक्षस बध आदि की ओर देखते हुये भी मदान्ध होने से

वाचं न ददर्श	विभीषण आदि की वाणी को तथ्यपूर्ण नहीं देखा
उत त्वः शृण्वन्	किसी ने अर्थात् रावण ने सुनते हुये भी हित को
एनाम् न शृणोति	इस वाणी को अनसूनी कर दिया ध्यान नहीं दिया
उत तु अस्मै	अपितु विभीषणादि समझाने वालों के सामने
तन्वम् विसस्रे	अपना स्वरूप-वाक् स्वार्थ प्रकट करने लगे। जैसे
उशती जाया	काम से अभिभूता स्त्री ऋतुमती नहीं होने पर भी
पत्ये सुवासाः	अनिच्छुक पति के सामने वस्त्र हटाकर
विसस्रे।	अपना स्वार्थ प्रगट करने लगती है। तात्पर्य यह कि दूसरों के नहीं देखने पर भी विभीषणादि ने रावण के भविष्य को देख लिया, इसीसे रावण की कामुकता-स्वार्थ की बातें सुनने के अनिच्छुक रहे ॥१५२॥

जब रावण ने विभीषणादि का सत्परामर्श नहीं ग्रहण किया उलटे मन्त्रियों सहित विभीषण ही को निकाल दिया तब—

(१२२) परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१५३॥

पूर्वेषां परा	पूर्वज-बड़े भाई रावण कुम्भकर्णादि के अत्यन्त उत्कृष्ट
सख्या वृणक्ति	सख्य स्नेह को त्याग कर, संसार समुद्र के
वितर्तुराणः अपरेभिः	तरने-मुक्ति की इच्छा से निश्चरों से अपर श्री रामादि **के पास**
एति, अनानुभूतीः	जाकर विश्राम किया और रामादि शत्रुओं को अवश्य जीत लूँगा रावणादिकों के इस भ्रान्त ज्ञान का
अवधून्वानः इन्द्रः	अनादर करते हुये भावी विनाश को देखने वाले विभीषण ने
पूर्वीशरदः तर्तरीति।	मृत्यु काल का अतिक्रमण कर अमरत्व प्राप्त कर तरने (मुक्ति)का निश्चित अधिकार प्राप्त किया ॥१५३॥

यहाँ इस मन्त्र में 'तमिदं द्रः सन्तमिद्र इत्याचक्षते।' इस श्रुति के अनुसार 'इन्द्र' शब्द का निर्वचन जानना चाहिये।

श्री रामजी के पास आकर श्री रामजी से मैत्री हो जाने पर ऋषियों ने विभीषण का स्वस्तयन किया कि—

(१२३) अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा संभगो नोनिनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तुदेवाः ॥१५४॥

(ऋ० १०।८५।२३, अथर्व १४, १, ३४)

अनृक्षराः	ऋक्—वेद मार्ग से जिनका क्षरण-पतन हो जाता है = जो वेद मार्ग से च्युत हो जाते है वे राक्षसादि 'ऋक्षर' हैं तुम उन 'ऋक्षर' राक्षसादि कण्टकों से रहित हो जाओ
पंथाः ऋजवः सन्तु	तुम्हारे मार्ग सरल एवं सीधे हो जायें तुम्हें जगद्-व्यवहार में कोई कठिनता न होवे।
येभिः नः	जिन मार्गों से हमारा—मोक्षमार्ग के पथिकों का
सखायः वरेयम्	हित होता है उसी श्रेष्ठ स्थान को तुम्हें श्रीराम जी
यन्ति	प्राप्त करावें अर्थात् श्रीराम जी तुम्हें अपना दिव्य धाम दें और
सं अर्यमा संभगः	पितृपति अर्यमा तथा भग आदि देवतागण
संनिनीयात्	हमलोगों को श्रीराम जी की सन्निकटता प्राप्त करावें।
देवाः ! जास्पत्यं	हे देवताओं श्रीराम जी का दाम्पत्य धर्म
सु यमं अस्तु।	सु संयत हो ॥१५४॥

नकी रेवंतं सख्याय विन्दसे पीयन्ति तेऽसुराश्वः।
यदाकृणोषि नदतुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥१५५॥

(ऋ० ८।२१।१४ साम० १२।२।८ अथर्व० २०।१४।२)

की* ! रेवन्तम्	हे श्री सीताराम जी ! आप धनवान रावण को
सख्याय न विन्दसे	मित्र भाव के लिये नहीं पाते हैं और
असुराः	सुरापान से मत्त असुरगण मतवाले

* कं वै प्रजापतिः शत० ब्रा० २।४।२।१३ कं ब्रह्म = उपनिषत् ई = लक्ष्मी।

अश्वः, ते	घोड़ों के समान होकर आपके भक्तों को
पीयन्ति।	मारते हैं। और आप हैं कि रावण के भाई-
नदतुम्	त्राहि-त्राहि शब्द चिल्लाने विभीषण को जब
कृणोषि आदित्	राज्य से संस्कृत करते हैं। तब उस भक्त विभीषण से
पिता इव हूयसे।	पिताके समान स्तुति द्वारा आह्वान किये जाते हैं १५५

लङ्का से चलते समय विभीषण ने श्री सीता जी को आश्वासन दिया था कि—

(१२४) प्र त्वा मुंचामि वरुणस्यपाशाद्येन त्वा बध्नात् सविता सुशेवः।
ऋतस्ययोनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सहपत्याद्धामि ॥१५६॥
ऋ० १०।८५।२४ अथर्व १४।१।१९

वरुणस्यपाशात्	प्राणी मात्र को दुख देने वाले वरुणपाशरूप रावणसे
त्वा प्र मुञ्चामि	आपको मैं सर्वथा छुड़ा दूँगा
येन त्वा	अवश्य ही जिस दुख के छूटने पर आपको
सविता	सर्व कर्माराध्य, आपके पूर्वज भगवान् सूर्य ही
सुशेवः योनौ	उत्तम सुखदायी कर्म फल के भोगस्थान,
सुकृतस्य लोके	परम पुण्य फल—भक्ति के स्थान रामजी के पास
अबध्नात् त्वाम्	पहुँचा देंगे, और मैं भी यत्न करके आपको
अरिष्टां पत्या	दुःख रहित करके आपके पति श्री राम जी के
सह दधामि।	साथ स्थापित कर दूँगा चिन्ता न कीजिये ॥१५६॥

(१२५) आसूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः।
उद्वान नावमनयन्तधीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१५७॥
(ऋ० ५।४५।१०)

आ सूर्यः	सूर्यवंशावतंस श्री रामभद्र जी ने
शुक्रं अर्णः	शुद्ध निर्मल जल वाले समुद्र को
अरुहत् ! हरितः	बाँध लिया। वह इस तरह कि हरे हरे वृक्षादि के
	कारण हरे दिखलाई पड़ने वाले पर्वतों को

अयुक्तयत्	सेतु रूप से संयोजित किया। वह सेतु अत्यन्त बराबर
वीतपृष्ठाः ताः	ऊँचाई-नीचाई रहित समतल था उन पर्वतों को
वीराः उद्भान	श्री हनुमानादि बानर वीरों ने पानी में चलने वाली
नावम्, अनयन्त	नाव चलाने के समान अनायास ही, यत्र तत्र से उखाड़ कर लाया था और अगाध जल में भी पर्वतों के न डूबने का कारण यह है कि
अपः आशृएवतीः	समुद्र स्वयं ही श्री रामजी का आज्ञाकारी दास बनकर
अर्वाक् अतिष्ठन्	पर्वताक्षेपण से पूर्व ही सेवामें आ गया था ॥१५७॥

समुद्र पर पुल तैयार हो जाने पर सेनापति ने सुग्रीव की आज्ञा पाकर बानर एवं ऋक्षों से कहा था कि—

(१२६) अश्मन्वती रीयते संरभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्राजहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्॥१५८॥
(ऋ० १०।५३।८ अथर्व १२।२।२६ शु० प० ३५।१० तै० आ० ६।३।२

सखायः।	ऐ मित्रो ! पार जाने के लिये
अश्मन्वती रीयते	पाषाणमय सेतु तैयार हो गया है अतः अब
संरभध्वम्	बहुत जल्दी करो उठो और
प्रतरता अत्र	समुद्र को पारकर चलो। इस सामने स्थित लंका में
ये अशेवाः असन्	जितने विश्वदुखदाई राक्षस प्रदीप्त हो रहे हैं
आ जहाम	मौज कर रहे हैं उनको चलकर सर्वथा मार डालें
शिवान् अभि	कल्याण देनेवाले सम्मुख
वाजान् वयम्	संग्राम समुद्र को भी इसी समुद्र के समान हमलोग
उत्तरेम।	पार कर लेंगे—जीतकर कृत्य-कृत्य हो जायेंगे ॥१५८॥

दहीआदि में अत्यन्त खट्टापन के कारण जो भाग ऊपर बुदबुदाकर आ जाते हैं उसे द्रप्स कहते है। उस (मैल) द्रप्सके शुद्ध दूध में पड़ने से दूध फट जाता है। इसी तरह पृथ्वीपर द्रप्सरूप रावण था अतः श्रुति कहती हैं कि—

(१५०) स्वके द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योनौ समरंत नाभयः।

त्रीन्समूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥१५६॥
(ऋ० ६।७३।१)

धमतः द्रप्सस्य	सभी लोकों के ताप देने वाले द्रप्स रूप रावण के
स्रक्के	प्रति जातेहुये रामादलने श्रीराम लक्ष्मण सुग्रीवादिके
समस्वरन्	जय जयकार का अच्छे प्रकार शब्द किया, तब
ऋतस्य योनौ	यज्ञ के कारण भूत जल अर्थात् समुद्र में
नाभयः समरन्त	पृथ्वी के नाभि-स्तनरूप पर्वत गण तैरने लगे
सः त्रीन्मूर्ध्नः	और वह त्रिशिरा नामवाला भयंकर
असुरः चक्रे	राक्षस काटा गया अर्थात् रावण के प्रधान सेनापति त्रिशिरा को प्रथम मार-काट श्रीराम ने राक्षसों का बध
आरभे	प्रारम्भ किया था और गर्जते हुये बानरों को लेकर समुद्र तट पर आये और बानरों ने समुद्र में पुल बाँध दिया। पर्वत क्यों उतराया ? इसका समुचित समाधान यह है कि अग्नि के पास चन्द्रकान्त मणिको रख देने से उस मणि के प्रभाव से जैसे अग्नि शीतल हो जाता है वैसे ही श्री सीता जी के सत्य पातिव्रत प्रभाव से शिला भी रावण बधार्थ नाव का काम देने लगी एतदर्थ शिला को 'सत्यस्य नावः' सत्य की नाव कहा—
सत्यस्य नावः सुकृतं, अपीपरन्।	सत्य-धर्म की नाव-शिलाओं ने पुण्य कर्म के करनेवाले श्री रामजी को सेनासहित पार कर दिया॥

(१५१) सम्यक्सम्यंचो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधिवेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥१६०॥
(ऋ० ६।७३।२)

सम्यंचः	सुन्दर तरह अनायास ही सर्वत्र जाने की शक्तिवाले
महिषाः	भैंसे के समान विशाल काय बानरगणों ने

सम्यक् अहेषत	खूब बृद्धि प्राप्त करके गर्जना किया। उन बानरों ने
सिन्धोः ऊर्मौ	अगाध समुद्र की उत्ताल तरङ्गों पर एक जगह
वेनाः	सुन्दर सुन्दर अर्थात् गढ़ सँवार कर शिलायें
अधि अवीविपन्	जलके ऊपर छोड़ा और उन बानरों ने
मधोः	सूर्य की 'असौ वा आदित्यो यदेतन्मधुः।' छा० उ०
धाराभिः	धारासे अर्थात् सूर्यवंशोद्भव श्रीरामजीकी उपासना से
अर्कं जनयन्तः इत्	सूर्य के समान तेज उत्पन्न करते हुये ही
इन्द्रस्य प्रियाम्	परमैश्वर्यमान् श्री रामजी की प्रिया सीता जी के
तन्वं अवीबृधन्।	शरीर के रोमों को आनन्द से खूब बढ़ाया अर्थात् श्री रामजी के जय जयकार के नारों से = शब्दों के घोष से रावण के कारागार में बन्दिनी श्री सीताजी को आह्लादित किया ॥१६०॥

(१५२) पवित्रवन्तः परिवाचमासते पितैषां प्रत्नोऽभिरक्षति व्रतम्।
महः समुद्रं वरुणस्तिरोदधे धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम् ॥१६१॥

ऋ० ६।७३।३ तै० आ० १।११।१ नि० १२।३२

पवित्रवन्तः वाचम्	अध्वर्युगण जैसे वाणी की सिद्धि के लिये
परि आसते	पूर्ण विधानसे यज्ञपुरुष श्रीहरिका अनुष्ठान करते हैं।
एषां पिता	इन ऋत्विजोंके पोषण कर्ता-पिता = यजमान। "वृत्ति या वेतन देकर पालन करने के कारण यजमान को
व्रतम् प्रत्नः	पिता कहा गया है"। यज्ञ और यज्ञ के फल को
अभिरक्षन्ति	स्वीकार करके स्थिर रहता है। उसी प्रकार श्री राम जी के नियुक्त किये हुये बानरगण यत्र तत्र से पर्वत लाये और तब
महः वरुणः	महान् एवं वरणीय श्री रामजी ने उन पर्वतों से
समुद्रम् तिरोदधे	समुद्र को आच्छादित करा दिया अर्थात् वहाँ पर पर्वत तिरा कर सेतु बँधवा दिया, क्योंकि

धीराः धरुणेषु	वीर बानरगण तो भूधरों = पर्वतों को
आरभितुम् शेकुः ।	स्पर्श करने में ही समर्थ थे ढोने, तैराने में नहीं।

मन्त्र रामायण भाष्य में कहा भी है कि—

येमज्जन्ति निमज्जयन्ति च पराँस्ते प्रस्तरा दुस्तरे,
वार्धौ नीरतरन्ति बानरभटान् सन्तारयन्ते च वै ।
नैव ग्रावगुणा न वारिधिगुणा नो बानराणांगुणाः,
श्रीमद्दाशरथेः प्रताप महिमारम्भः समुज्जृम्भते ॥

महिमा यह न जलधि कै बरनी । पाहन गुण न कपिन कै करनी ॥
श्री रघुबीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषान ॥१६१॥

लङ्का में बानर राक्षसों में घोर युद्ध होते समय आकाश मार्ग से महर्षियों ने श्रीराम-लक्ष्मण से कहा कि—

(१२०) उरूं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यं मुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृष शिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥१६२॥
(ऋ० ७।९९।४)

नराः ! पृतना	हे मनुष्य रूपधारी श्रीराम लक्ष्मण जी। आप की
आज्येषु उ	सेना इस युद्ध में निश्चित रूप से विजयी होगी। आप
	दोनों भाई राक्षस रूपी अन्धकार का नाश कर
यज्ञाय, उरूँ लोकं	देवताओं के हित के लिये, महान प्रकाश
चक्रथुः । सूर्यम्	करेंगे। आप तो सर्व प्रकाशक सूर्य,
उषासं, अग्निम्	अमृतस्रावी चन्द्रमा और सर्वदाहक अग्नि के
जनयन्ता; वृष शिप्रस्य	उत्पन्न करने वाले हैं और साँड़ जैसी देह वाले
दासस्य	दास भूत भानुप्रताप या जय विजय रूप रावण की
माया जघ्नथुः ।	नाग पाशादि माया के नाश करने वाले हैं ॥१६२॥

(१२८) हरयोधूमकेतवो वातजूता उपद्यवि । यतन्ते पृथगग्नयः ॥१६४॥
(ऋ० ८।४३।४)

धूमकेतवः	धूमिल पूँछ को केतु के समान उठाये दुस्तर वेगवाले

हरयः उपद्यवि यतन्ते	बानर गण, माया से अन्तरिक्ष चारी राक्षसों को मार डालने के लिये उपाय कर रहे हैं। यद्यपि कि ये बानरगण स्वतन्त्र रूप से
पृथक् अग्नयः।	एक एक बानर अलग अलग ही अग्निवत् प्रचण्ड होने से सम्पूर्ण राक्षसों को जला देने अर्थात् नाश कर देने में समर्थ हैं ॥१६४॥

(१२९) **रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।**
इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शतादश ॥१६५॥
(ऋ० ६।४७।१८)

तत् अस्य	जब राक्षसगण माया करके एक से अनेक दिखलाई पड़ने लगे तब इन श्रीराम जी का रूप
प्रतिचक्षणाय	राक्षसों की माया का प्रत्युत्तर देने के लिये राक्षसों के
रूपं रूपम् प्रतिरूपः	जितने रूप थे उतने ही उन राक्षसों के प्रतिकूल रूप
बभूव।	हो गया। अर्थात् श्रीराम जी ने उतने रूप एक साथ बना लिया।
इन्द्रः मायाभिः	परमैश्वर्यमान् श्रीरामजी अपनी इच्छा = योगमाया से
पुरु रूपः ईयते।	एक काल में अनेकों रूप बना लेते हैं। यद्यपि कि
अस्य दश	इन श्रीराम के अनन्त अवतार हैं तथापि दश अवतार परम विख्यात हैं और
शताः हरयः युक्तः।	इस समय तो ये श्रीराम सैकड़ों "शतं सहस्त्रमयुतं सर्वेह्यानन्त वाचकः। मा०भा०द्रो०" अनन्त वानरों से युक्त हैं।

अन्य श्रुति में भी बानरों की असंख्यता बताते हुये कहा है कि—

अयं वै हरयोऽयं वै दश च शतानि च
सहस्त्राणि च बहूनि चानन्तानि च। (बृ० उ० २।५।१९)

कुम्भकर्ण को मारने के लिये जब श्री राम जी जाने लगे तब लक्ष्मण जी से कहा कि—

धनुर्हस्तादाददानोऽमृतस्याऽस्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम् ॥१६६॥
(ऋ० १०।१८।६ अथर्व वेद १८।२।६० में इस मन्त्र का उत्तरार्ध ऋग्वेद से भिन्न है।)

अमृतस्य अस्मे हस्तात्	इस अमृत स्वरूप = मुझसे अर्थात् मेरे हाथ से
धनुः* आददानः	धनुष अर्थात् सैन रक्षण का भार लेकर
क्षत्राय बर्चसे बलाय च	वीर्य, तेज और बल की सुरक्षा के लिये
त्वं अत्र एव। वयं	तुम यहीं रहो। मैं अकेले ही जाकर
अभिसातीः सुवीराः	इस गर्वयुक्त सुन्दर वीर कुम्भकर्ण को
स्पृधः जयेम।	समर में जीतता हूँ अर्थात् मार डालूँगा ॥१६६॥

(१३०) यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दास मही शुवम्।
बधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ १६७ ॥ (ऋ० ८।३२।२)

उग्रः यः	श्रीरामजी अत्यन्त तेजस्वी हैं जिन्होंने
सृबिन्दम् अनर्शनिम्	पाप कर्ममें अपने वीर्य को नष्ट कर देने वाला कामी† चित्त की दुर्वृत्तियों के रोकने में असमर्थ लोभवत्
पिप्रुम्	काटने पर भी जिसका शिर बढ़ता जाता रहा।
दासम् अहीशुवम्	पूर्व जन्म के दास भानुप्रताप या जय विजय, अब साँप के समान क्रोधरूपी विष से हरदम भरा रहने
अपः, रिणन्, वधीत्।	वाला पानी भरी खाल तुल्य रावणकी देहको खण्ड-खण्ड करते हुए मार डाला।

वेद भाष्य कारों में किसी ने 'सृबिंदु, अनर्शनि, पिप्रु, दास और अही-शुव' नामक पाँच विशेषण न मानकर पाँच नाम के अलग-अलग राक्षस माना है। किसी वेद भाष्यकार ने इनकी उपमा 'सृबिन्द-निर्वीर्य-प्रहस्त-

---

* तुम सुग्रीव विभिषण अनुज हौंभारहु सैन।
मैं देखौं खल बल दलहिं बोले राजिव नैन ॥

† मोह दशमौलि तद्भ्रात हंकार पाकारि जितकाम० (विनय पत्रिका ५८)

चित्तनिरोधनादगतिक अहङ्कार-अतिकाय, लोभ-कुम्भकर्ण' काम रावण और क्रोध इन्द्रजित कहा है। तथा किसी भाष्यकार ने—सृबिन्द = मत्सर-महोदर, अहङ्कार-कुम्भकर्ण, लोभ-अतिकाय, काम इन्द्रजित् और मोह को रावण कहा है ॥ १६७ ॥

रावण को श्री राम जी ने अकेले मारा है यह ऊपर की श्रुति बतला चुकी है अब श्रुति बताती है कि राक्षसी सेना को श्रीराम जी ने बानरों को सहायक बनाकर मार डाला—

आशु शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एक वीरः शतं सेना अजयत् साकमिन्द्रः ॥१६८॥

(ऋ० १०।१०३।१, अथर्व० १६।१३।२, शु० य० १७।३३, साम० २१।१।१,
तै० सं० ४।६।४।१ नि० १।१५)

आशु	उन बानरों में प्रत्येक बानर शीघ्रगामी हैं। कई
शिशानः	पत्थरों के शिल्पी हैं अर्थात् पत्थरों को शान दिया; गढ़ छाँट, काट कर सेतु योग्य बना लिया, प्रत्येक बानर
वृषभः न भीमः	साँड़ के समान बड़े एवं भयंकर शरीर वाले हैं।
घनाघनः	उनमें कोई बानर झुण्ड बाँध कर (घन) तथा कोई बानर अघन (अकेले अकेले) ही लड़ता है। कोई
चर्षणीनां क्षोभणः	दस्यु अधर्मी राक्षसोंको क्षुभित = व्याकुल करदेता है
अनिमिषः	हर एक बानर किसी न किसी देवता के अवतार हैं
संक्रन्दनः	इससे प्रत्येक बानर खूब गर्जते हैं इन
साकम् एकः वीरः	बानरों को साथ लेकर सारे ब्रह्माण्ड में एक वीर
इन्द्रः	परमैश्वर्यमान् सर्व समर्थ श्रीराम जी ने रावण की
शतं सेनाः अजयत् ।	सैकड़ों अनन्त सैन्य दल को जीत लिया अर्थात् सारी राक्षसी सैन्य को मार डाला।

सारी राक्षसी सैन्य के मर जाने पर रावण अकेला लड़ता रहा और बराबर शिर भुजा कटने पर भी क्यों नहीं मरता था ? इसका कारण पीछे मंत्र १४ वें में बताया जा चुका है ॥ १६८ ॥

स स्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हँसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्द्धो अभितो मा निषेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥१७९॥

स स्वम्	यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्व पदास्पदम् ॥ इस श्रौत निरुक्ति से स्वः का अर्थ हुआ "परमानन्द चिद्विग्रह श्री हरि" 'स' अव्यय का अर्थ सहित है अर्थात् जब परमानन्द चिद्विग्रह श्रीरामजी के संयुक्त अवतार के समय भूमंडल में—
नीलपृष्ठाः	'डलयोरैक्यम्' नीड = स्वर्ग, पृष्ठ = स्थान है जिनका, ऐसे
चित् ह हँसासः	जीव विशेष ही हैं निश्चय करके जो; ऐसे वे देवता लोग
आ अपप्तन	सब प्रकार से भगवत्सेवा के लिये सन्नद्ध होकर
शुम्भमानाः	आये हैं और परमशोभनीय दिव्य शरीर वाले
तन्वः	इच्छा शरीर धारण किये हैं। वे देवगण अंश मात्र से स्वर्ग में स्थित थे और पूर्ण रूप से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये थे, भगवत् सेवा के लिये। यहाँ आकर
विश्वम् शर्द्धः	सम्पूर्ण रूप से 'शृधुक्लेदने' वृष्टि करने वाले अन्तरिक्ष स्थान के वे देवगण
अभितः मा (माम्)	सब प्रकार से मेरे पास मुझसे अभिन्न-सखा होकर
निषेद (निषषाद)	रहें मुझे सुखी करें इस पर दृष्टान्त है कि
न नरः सवने	जैसे मनुष्य पुत्र जन्मादि उत्सव में
रण्वाः	रमणशील = प्रफुल्लचित्त होकर
मदन्तः	आनन्द मत्त हो जाता है। इसी तरह भगवान के अवतार लेने पर
सवने।	युद्ध रूपी यज्ञ में लंका में आनन्दित मन से ऋक्ष-बानर रूप में देवता लोग भगवान के चारों ओर

स्थित हुये 'चिदानन्द मय देह तुम्हारी।' 'सुर अंशिक सब कपि अरु रिच्छा' ॥ १६९ ॥

(१३१) भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सु प्रकेतैर्द्युभिराग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥१७०॥

ऋ० १०।३।३ साम १५।२।३

भद्रः भद्रया	श्री राम जी श्री सीता जी के सहित
सचमान्, आगात्	बनवासी रूप से सुसज्जित होकर दण्डक में गये
पश्चात्	वहाँ जाने पर श्री राम जी के परोक्ष में पञ्चवटी में
स्वसारम्	'पर स्त्री माता एवं बहिन के तुल्य होती है। इस न्याय से बहिन रूप अथवा पृष्ठ ८३ के अनुसार अपनी कन्या श्री सीता जी को हरने
जारः अभ्येति।	जार बन कर पर स्त्रीगामी रावण आया।

यहाँ तक पूर्व कथा का सम्बन्ध है अब आगे की कथा श्रुति बतलाती है कि रावण बध के बाद जब लोकमर्यादा रक्षणार्थ श्रीरामजी ने श्री जानकीजी को बहुत दुर्वचन कहा जिससे श्रीजानकीजी अपनी निष्पापता=शुद्धि सिद्ध करने के लिये सबके समक्ष ही प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर गईं उस समय

अग्निः वितिष्ठन्	अग्नि उस प्रज्वलित ज्वाला में अपने देव विग्रह से
उशद्भिः वर्णैः	आकर के अत्यन्त कमनीय वर्ण आकृति एवं
सुप्रकेतैः	सुन्दर लक्षणों से सम्पन्न अर्थात् सर्वथा निर्दोष,
द्युभिः	द्युलोक मोक्ष-नित्यविभूति को प्रदान करने वाली; श्री राम पत्नी श्री सीता जी के सहित
रामं अभि अस्थात्।	श्री रामजी के सामने उपस्थित किया श्री सीताजी को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके श्री राम जी की बगल में स्थापित किया ॥१७०॥

उस समय जो लोग श्री सीता जी को शुद्ध जानते थे

(१३२) ते अवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा।

वीडुहरास्तप उग्रो मयो भूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१७१॥
ऋ० १०।१०९।१ अथर्व ५।१७।१

ते अकूपारः	वे लोग अर्थात् समुद्र और समस्त
सलिलः मातरिश्वा	निर्मल जल या जलाधिदेव बरुण, वायु तथा,
वीडुहराः, तपः	कालचक्र के सञ्चालक निमेषाद्यधिदेवगण, धर्म
उग्रः, मयः	रुद्र, आनन्दादि के अधिदेवगण इन्द्र यमादि
भूः, आपः	पृथ्वी, शरीर = इन्द्रियों के अधिदेवगण और
प्रथमजा देवीः	सृष्टि के आरम्भ में प्रगट हुई देवी योगमाया आदि
प्रथमा	सबने प्रत्यक्ष होकर श्री रामजी से अनादि आह्लादिनी शक्ति श्री सीताजी के
ब्रह्म किल्बिषे ऋतेन	ब्रह्म वीर्यरक्षा के दोष के सम्बन्ध में सत्य की शपथ ले
अवदत्।	निवेदन किया कि सीता जी सर्वथा निर्दोष हैं १७१

श्री सीता जी को देकर वे सब श्री राम जी को समझाने लगे कि—

(१३३) सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः।
अन्वर्तिता वरुणोमित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्यानिनाय ॥१७२॥
ऋ० १०।१०९।२ अथर्व ५।१७।२

प्रथमः राजा सोमः	सबसे पहिले सम्राट् पद पाने वाले चन्द्रमा ने
ब्रह्मजायाम्	अपने गुरु बृहस्पति की धर्मपत्नी को हरण करके
पुनः	और उससे पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् पुनः
प्रायच्छत्	बृहस्पति को लौटा दिया। चन्द्रमा ने तारा के साथ बलात्कार किया था पर तारा का स्वकृत दोष न होने से तारा के ग्रहण कर लेने पर, किसी के द्वारा
अहृणीयमानः	बृहस्पति निन्दित नहीं हुये किसी ने निन्दा न की
अन्वर्तिता मित्रः	तारा को निर्दोष बतलाने वाले सूर्य या मित्र देवता,
वरुणः, अग्निः	जलाधिदेव वरुण, सर्वसाक्षी वैश्वानर अग्नि और
होता	होता आदि यज्ञ के ऋत्विज = यज्ञाचार्य या देव

हस्तं निनाय आसीत्। सभी ने तारा का हाथ पकड़ कर = आगे करके बृहस्पति के पास लाकर स्थित कर दिया और बृहस्पति ने उसे स्वीकार कर लिया। जब दूसरे से पुत्र हो जाने पर भी स्वकृत दोष न होने के कारण तारा को बृहस्पति ने ग्रहण कर लिया, तब श्री सीता जी तो लङ्का में पूर्ण रूप से ब्रह्मचारिणी रहीं अतः आप अवश्य स्वीकार कर लें।

इसी तरह बाली ने सुग्रीव से छीनकर सुग्रीव की पत्नी रुमा से बलात्कार करते हुये अपने घर रखा था परन्तु रुमा का कोई भी स्वकृत दोष न होने के कारण ही रुमा को सर्वथा निर्दोष मानकर श्री राम जी ने ही सुग्रीव को दिया था "पावा राज कोष पुरनारी।" परन्तु अहल्या ने तो (वा० रा० में)

मुनि वेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन। मतिं चकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात्॥

अपनी दुर्वासना से इन्द्र को पहचान कर अपना सतीत्व अर्पण कर दिया था, इसीसे वह महर्षि गौतम द्वारा परित्यक्ता एवं शापित हुई थी। अतएव वेद मानने वाले प्रत्येक वैदिक धर्मानुयायी-सनातनधर्मी आस्तिक मात्र को चाहिये कि अत्याचारी गुंडों द्वारा बलपूर्वक भ्रष्ट की गई अबलाओं को बिना किसी प्रत्यवाय के ग्रहण कर उन्हें समाज में पहले सा स्थान दें जैसा कि आज भी पाकिस्तानी बर्वर गुण्डों से अपहृता बलात् भ्रष्ट की गई ललनाओं को सद्विचार शील सज्जन गण ग्रहण करते हैं और ग्रहण करना ही चाहिये। धर्म-शास्त्रों में मान्य धर्मशास्त्र मनुस्मृति में भी ऐसा ही करने को धर्म बतलाया गया है—

बलाद्दत्तं ब्रलाद्भुक्तं बलाद्यच्चापि लेखितम्।
सर्वं बलकृतान् अर्थान् अकृतान् मनुरब्रवीत्॥ ८।१६८

परन्तु स्वेच्छा से भ्रष्ट हुई कुल दूषिकायें तो सर्वथा त्याज्य ही हैं। वे तो—

"पति वंचक पर पति रति करहीं। रौ रौ नर्क कल्प शत परहीं॥"
"पति प्रतिकूल जन्म जहँ जाई। विधवा होय पाइ तरुणाई॥"

बृहस्पतिपत्नी तारा के समान पुत्रोत्पत्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती जब कि—

(१३४) हस्तेनैवग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्वे तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥१७३॥
(ऋ० १०।१०६।३ अथर्व ५।१७।१०)

हस्तेन ग्राह्यः एव	रावण ने हाथ से सीताजी को पकड़ा ही था इससे ही
अस्याः आधिः	इन सीता जी को महान् दुःख हुआ है ।
इयम् ब्रह्मजाया	ये श्री सीता जी ब्रह्म-विवाह पद्धति से दूसरे की पत्नी हैं तथा वनवास काल के कारण ब्रह्मचर्य व्रती हैं और साक्षात् ब्रह्म की पत्नी हैं । उसी समय
इति अवोचन्	ऐसा देवताओं ने रावण से यह भी कहा कि
चेत्	यदि इनके साथ बलात्कार की चेष्टा करोगे तो उसी समय नल कूबर के श्राप से चेष्टा करते ही तुरन्त मर जावोगे । अतएव
दूताय	हे श्री राम जी आपके दूत—पार्षद जय जन्मान्तर में रावण के हरण करके
प्रह्वे एषा	वेग से ले जाने पर भी इन श्री सीता जी ने
तथा न तस्थे	वैसा रावण का अनुसरण नहीं किया,
क्षत्रियस्य	अपितु क्षत्रिय कुलावतीर्ण आपके
राष्ट्रम् गुपितम् ।	राजकुलोचित धर्म की रक्षा किया ॥ १७३ ॥

(१३५) देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥१७४॥
(ऋ० १०।१०६।४ अथर्व ५।१७।६)

एतस्याम् देवाः	इस सीताजी के सतीत्व व्यवहार में सब देवगण और
पूर्वे	श्री राम के पूर्वज तथा ब्रह्मा के मानसिक पुत्र
सप्त ऋषयः	मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और नारदादि सभी सप्तर्षि मंडल

ये तपसे निषेदु	जो लोग कि ब्रह्मविचार के लिये एकत्र बैठे थे,
अवदन्त, भीमा,	एक मत से कहने लगे कि अरे रावण ! राक्षस कुल को मृत्यु देने, नाश करने वाली ये
ब्राह्मणस्य जाया	पर ब्रह्म श्री रामजी की पत्नी श्री सीता जी कैसे भी
उपनीता	श्री राम जी के पास से अलग की गईं तो
परमे व्योमन्	परलोक में सुख देने वाले तुम्हारे तप यज्ञादि कर्म
दुर्धराम् दधाति ।	नाश करके तुम्हे जीते ही नर्क यातना के समान कष्ट देने वाली हो जाती हैं अर्थात् हो जायेंगी ।

कालरात्रि निशिचर कुल केरी । तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥१७४॥

(१३६) ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥१७५॥

(ऋ० १०।१०९।५, अथर्व ५।१७।५)

बृहस्पतिः देवानां एकं	देवगुरु बृहस्पति देवतों के एक अर्थात् प्रधान
अंगं भवति जाया स	सहायक होते हैं । वे बृहस्पति अपनी पत्नी ताराको
सोमेन नीतां	सोम के द्वारा बलात्कृत होने पर भी
अन्वविन्दत् ।	स्वीकार कर लिया । यद्यपिकि बलात्कार से सोम ने उससे पुत्र भी उत्पन्न कर दिया था ।
सः विषः	परन्तु वह रावण यद्यपिकाम विष से व्याप्त था तथापि सप्तर्षियों के वचन से उसके
वेविषत्	नख से शिख तक सर्वांग में भय व्याप्त हो गया था
ब्रह्मचारी चरति	इससे सीता के सामने ब्रह्मचारी ही रहता था । इस लिये श्री सीताजी लङ्का में सदैव शुद्ध रहीं
देवाः जुह्वं न ।	जैसे श्रुवा में रखी हुई मन्त्र पूत हवि को देवता लोग ग्रहण करते हैं वैसे ही तन-मन वचन पूता श्रीसीताजी को आप ग्रहण कीजिये ॥१७५॥

इस तरह उपर्युक्त प्रकार से श्री सीता जी को निर्दोष बताकर

(१३७) पुनर्वै तेवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥१७६॥
(ऋ० १०।१०९।६ अथर्व ५।१७।१०)

वै ब्रह्मजायाम्	सर्वथा निष्पाप ब्रह्मचारिणी श्री सीताजी को
सत्यम् कृण्वाना	सत्य की शपथ लेते हुये
देवाः पुनः	ब्रह्माशिवादिकों ने अग्नि के साक्षी देने के बाद
अददुः। पुनः	श्री सीताजी के सत्यता की साक्षी दिया पुनः
उत्	देव लोक से आये हुए, दशरथ, हरिश्चन्द्र आदि
मनुष्याः अददुः	मनुष्यगण ने श्री सीताजी को सच्चरित्रता कहा
राजानः पुनः ददुः।	और इसके बाद इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि दिशाओं के राजाओं ने श्री सीता जी के पातिव्रत की साक्षी दिय। ॥ १७६ ॥

जिस तरह विवाह काल में सर्व देवताओं की साक्षी से कन्या पति को दी जाती है उसी तरह श्री सीता जी के पुनर्गहण में आप को कोई दोष नहीं है इस प्रकार श्रीराम जी को—

(१३८) पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्विषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥ १७७ ॥
(ऋ० १०।१०९।७ अथर्व ५।१७।११)

निकिल्विषम्	सबके द्वारा निर्दोषिता घोषित करदेने के बाद
देवैः ब्रह्मजायाम्	देवताओं ने श्री सीताजी को अग्नि जाता कन्या
पुनः	प्रत्यक्ष देखने से फिर से 'रामहिं समर्पी आनिसो।'
दायकृत्वी पृथिव्याम्	कन्या दानवत दान दिया और जब श्रीरामजी राज गद्दी पर वैठे तब पृथ्वी की उत्तमोत्तम
ऊर्जम् भक्त्वाय	अन्न, रत्न, राज्यादि वस्तु विभक्त कर अर्थात् विभीषण सुग्रीवादि को राज्य ब्राह्मणादिको रत्न, धन, गाय आदि और देवताओं को, यज्ञ, हवि, सोमरस, पुरोडास आदि विभक्त कर जब सुस्थित हुये तब

उरुगायम्	महान् कीर्ति वाले श्रीराम जी की सभी
उपासते।	उपासना करते हुये कालक्षेप करने लगे ॥१७७॥

श्रीराम जी को सिंहासन पर अभिषिक्त करके बशिष्ठादि महर्षि जब आशीर्वाद दे चुके तब—

> प्रतद्दुः शीमे पृथवाने वेने प्र रामेऽवोचमसुरे मघवत्सु
> ये युक्त्वाय पञ्चशता स्म यु पथा विश्राव्येषाम् ॥ १७८ ॥
> (ऋ० १०।६३।१४)

ये पञ्चशता	जो देवता पाँच सौ घोड़ों से खींचे जाने वाले
युक्त्वाय यु	रथ पर चलनेवाले हैं वे इस रामाभिषेक के
पथा, स्म, एषाम्	उत्सव में आये हैं। इन देवताओं की वाणी
दुः शीमे	अनन्त स्वरूप वाले, व्यवहार में—राजारूप में
पृथवाने, वेने	विस्तृत राज्य वाले, सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य वाले,
असुरे	सुरावर्जित-परम सदाचारी अतएव महाबली
मघवत्सु	सर्व गुण एवं सर्वश्री से सदैव सम्पन्न रहने वाले,
रामे	रामजी में परमभक्ति के कारण अब तक के किये हुये
प्रतत् विश्रावि	परमोत्कृष्ट उन चरित्रों को स्मरण कर सुनाते हुये
प्र अवोचम्।	परमोत्कृष्ट स्वर में गान करने लगे

भिन्न-भिन्न स्तुति करि गे सुर निज-निज धाम ॥ १७८ ॥

देवताओं ने अपनी सुन्दर वाणी में श्रीराम जी की कीर्ति का गान किया उसका वर्णन जिन मन्त्रों में है उनमें से कुछ निम्नलिखित मन्त्र हैं—

> इन्द्र क्षत्रमभिवाममोजोऽजायथा बृषभ चर्षणीनाम्।
> अपानुदो जनममित्रयंतमुरुं देवेभ्यो अकृणोरुलोकम् ॥१७९॥
> (ऋ० १०।१८०।३ अथर्व ७।८४।२)

इन्द्र !	हे परमैश्वर्यमान् श्री रामजी !
चर्षणीनां बृषभ	शुभ कामनाओं की वर्षा करने वाले ! आपने
क्षत्रम् वामम्	क्षत्रिय धर्म का रक्षा करने और

ओजः	बल को यथा स्थान प्रगट करने की शिक्षा देने को
अजायथा उरुं जनं	जन्म लिया है जन्म लेकर बहुत से मनुष्यों को
अमित्रयन्तम्	खा जानेवाले रावण एवं रावण के अनुयायियों को
अपानुदः	दूर कर दिया = मार डाला । राक्षसों को मारकर
देवेभ्य उरु लोकम्	देवताओं के लिये उनके श्रेष्ठ लोक को
अकृण ।	निष्कण्टक एवं सुखी बनाया ॥ १७६ ॥

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत प्रयद्ववक्षे शिपिविष्टोऽस्मि ।
मा वर्पो अस्मदपगूह एतद्यदन्य रूपः समिथे बभूव ॥१८०॥
(तै० स० २।२।१२।५ नि० ५।८, ऋ० ७।१००।६, साम १७।१।६)

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है कि किसी समय बशिष्ठ जी के लिये किसी दुष्ट से भगवान् ने युद्ध किया था इससे देवताओं के साथ महर्षि बशिष्ठ जी भी श्रीराम जी की स्तुति करते हैं—

विष्णो ! किम् ते	हे सर्व व्यापक प्रभो ! क्या आप के नाम का
परिचक्ष्यं इत् भूत	प्रख्यापन करने में पूर्ण रूपेण कोई समर्थ होगा
यत् प्र ववक्षे	आप जो श्रुतियों द्वारा यह कहते हैं कि
शिपिविष्टः अस्मि	मैं शिपिविष्ट हूँ = मेरा तेज सब में प्रविष्ट है ।
ते, यत् अन्यः रूपः	तब आप का, जो दूसरा तेजोमय रूप
समिथे बभूव	युद्ध भूमि में प्रगट हुआ था वही
एतत् वर्पः अस्मत्	यह तेजोमय विग्रह है इस तथ्य को हमसे
मा उपगूह ।	मत छिपाइये । अर्थात् हमलोगों को उस तेजोमय विग्रह का भी दर्शन करा दीजिये ॥१८०॥

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापि त्वमिच्छसे ॥१८१॥ (ऋ० ८।११।१३)

इन्द्र ! त्वम्	हे परमैश्वर्यमान प्रभो श्री राम जी ! आप तो
सनात् अभ्रातृव्यः	सदा अनादि काल से बन्धुओं के सहित हैं फिर भी
जनुषा असि	जन्म = अवतार लिया करते हैं ।
त्वम् अना	आप अग्रणी हैं आपके ऊपर कोई नेता नहीं है ।

त्वम् अनापिः	आपको किसी की सहायता की आवश्यता नहीं रहती
युधा इत्	आप तो युद्ध = दण्ड द्वारा ही भक्तों-जीवों की
आपि इच्छसे ।	सहायता = शुद्ध करने की इच्छा करते रहते हैं ।

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी । ईश देई फल हृदय विचारी ॥१८१॥

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्र हत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥१८२॥

ऋ० ८, ८६, ५ साम० ६।२।७, १२।६।४

अपूर्व्य ! मघवन् !	हे सर्वादि ! हे ज्ञानवान्, लक्ष्मीवान् श्री राम जी !
यत् वृत्र	आपने जो पाप एवं पापी राक्षसों के
हत्याय, जायथा	मारने के लिये अवतार ग्रहण करके राक्षसों को मारा
तत् पृथिवीम्	है उससे आपने पृथ्वी का
अ प्रथयः, उत्	विस्तार किया अर्थात् प्रजा को सुखी किया जिससे प्रजाओं के कारबार, जीविका साधनादि की अधिक वृद्धि हुई । प्रजा के सुखी होकर यज्ञादि करने से
द्याम् अस्तभ्ना ।	स्वर्गस्थ देवगण भी स्थिर हो गये । जो कि रावणादि के डर से मारे मारे घूमते थे ॥१८१॥

त्वं ह त्यत् सप्तभ्योऽजायमानोऽशत्रुभ्योऽभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढ़े द्यावा पृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भयो भुवनेभ्यो रणंधाः १८३

अथर्व २०, १३७, १ ऋ० ८, ६६, १६ साम० ३।१०।४

इन्द्र ! त्वम्	हे परमेश्वर्यशालिन् श्री राम जी ! आप अजन्मा हैं
अजायमानः सप्तेभ्यः	तो भी जन्म ग्रहण करके रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, त्रिशिर, दूषण, खर और सुबाहु ये सात वीर जो
अशत्रुभ्यः	शत्रु रहित थे अर्थात् जिनसे शत्रुता करने सम्मुख लड़ने की हिम्मत किसी को नहीं थी। ऐसे प्रबल उन सातों खलों के
शत्रुः अभवः	आप शत्रु हुये । उन सातों के मर जाने के बाद अब

त्यत् द्यावा	जो लोग धर्मके उन सात शत्रुओं के भय से अन्तरिक्ष
पृथिवी गूढ़े	पर्वत की गुफाओं, पृथ्वी के भुइधरों में छिपे रहते थे
अविन्दः	अब प्रगट होकर अपना-अपना कार्य करने लगे। और
विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः	बहुत बड़े १४ भुवनों के लिये रावणादि सातों को मार कर आपने तो
रणम् धाः	अपनी रण क्रीड़ा को ही धारण-पुष्ट किया ॥१८२॥

उभेचिदिन्द्र रोदसी आ पप्राथोषा इव महांतं त्वा महानान् ।
सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा ॥१८३॥

ऋ० ७।२०।४ (भाष्यों में इस मन्त्र में बहुत पाठ भेद है)

इन्द्र !	हे परमात्मन् ! आपने दुष्ट बध कर तीनों लोकों का कल्याण किया इससे सर्वत्र अर्थात्
उभेरोदसी पृथिवी	दोनों अन्तरिक्ष आकाश और पाताल तथा भूमण्डल में
उषः इव	अपने यश के प्रातः काल के समान शीतल प्रकाश
आ प्रपथ	का विस्तार किया अर्थात् आपका यश त्रैलोक व्याप्त है !
जनित्री भद्रादेवी	जन्म देने वाली कल्याण रूपणी कौशल्या देवी ने
महानां महान्तं त्वा	पूज्य ब्रह्मादिकों से भी पूजनीयतम आपको
चर्षणीनां सम्राजम्	सम्पूर्ण मनुष्यों के सम्राट् रूप में
अजीजनत्	उत्पन्न प्रकट किया ॥१८३॥

अर्हन् विभार्षिसायकानि धन्वर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयोरुद्रा ! त्वदस्ति ॥१८४॥

ऋ० २।३३।१० तै० आ० ४।५।७

अर्हन् ! त्वम्	हे पूज्यतम प्रभो ! आप सदैव अपना दिव्यायुध
धनुः सायकानि बिभार्षि	धनुष और वाणों को धारण किये रहते हैं। और समय समय पर
यजतं निष्कं विभर्षि	जगद्रक्षार्थ अनेक चित्र विचित्र रूप धारण किया करते हैं। और

अर्हन् ! इदं अभ्वं विश्वम् दयसे	हे पूज्यतम प्रभो ! आप ही इस समस्त जगत् की रक्षा करते हैं।
रुद्र !	हे रुद्र ! अर्थात् प्रलय काल में समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में लीन कर लेते हैं किंवा आप शत्रुओं को रुलाने वाले हैं अतः आप रुद्र हैं।
वै त्वत् ओजीयः न अस्ति।	यह सर्वथा निश्चित् सत्य है कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई बल वाला कहीं भी नहीं है।

इस मन्त्र में आया हुआ 'विश्वरूपम्' शब्द 'निष्कं' का ही विशेष्य समझना चाहिये ॥१८५॥

धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतबधं शिखण्डिन्।
रुद्रस्येषुश्चरति देव हेतिस्तस्यै नमो यतमस्या दिशीतः ॥१८४॥

(अथर्व० ११।२।१२)

*शिखण्डिन् !	हे शिखा धारण करने वाले श्री राम जी
धनुः विभर्षि	आप ऐसा धनुष धारण करते हैं जो कि
सहस्रघ्नि, शतबधम्	हज़ारों का नाशक और सैकड़ों को मारने वाला है,
हिरण्ययं, हरितम्	तथा स्वर्णमय एवं सूर्यवत् कान्तिमान है।
देव !	हे दिव्य क्रीडनशील प्रभो ! उस धनुष पर से
हेतिः† रुद्रस्य इषुः	अग्निज्वालवत्प्रज्वलित पाशुपत-ब्रह्मास्त्रादि मंत्रितबाण
अस्या दिशीतः चरति	इस संसार की सारी दिशाओं में चलता है अर्थात् आपका शत्रु कहीं भी नहीं बच सकता।
यतम् तस्यै नमः।	जिस दिशा में आप का बाण है उसे प्रणाम है॥

देवताओं द्वारा श्रीराम जी के कीर्तिगान् का स्पष्टीकरण इन दो मन्त्रों में किया जाता है—

(१३९) सृजः सिन्धूँ रहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्रविविश्रे जवेन।

---

* शिखा चूड़ा शिखण्डश्च (अमरकोश)

† वह्नि ज्वाला च हेतयः। (अमर)

मुमुक्षमाणा उत या मुमुक्त्रेऽथैता न रमन्ते नितिक्ताः ॥१८५॥
(ऋ० १०।१११।६)

अहिना जग्रसानाम्	रावण रूपी महान् सर्प से डसे गये
सिन्धून्	समुद्रों को उन्मुक्त कर मानों फिर से उनकी
सृजः।	रचना की गई हो अर्थात् मानों उसका पुनर्जन्म हुआ हो
आदित् एताः	उसी रावण से डरकर छूटकर ये नदियाँ
जवेन प्रविविज्रे	अपने वेग से चलने = बहने लगीं। तथा
मुमुक्षमाणाः	जो लोग रावण के कारागार से छूटना चाहते थे वे
मुमुक्त्रे उत याः	उसकी बन्दी से छूट गये और जो
एताः तिक्ताः	ये सब देवतागण रावण के कारण शोक मोह से पीड़ित हो जीवन में सर्वैव कटुता का ही अनुभव करते हुये किसी तरह का
न रमन्ते अथ	सुख नहीं पाते थे अब वे सब सम्पूर्ण
नितिक्ताः रमन्ते।	कटुता से रहित होकर आनन्दोपभोग करते हैं ॥१८५॥

(१५३) सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः।
अस्य स्पशा न निमिषन्ति भूर्णयः पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः ॥१८६॥
(ऋ० ६।७३।४, अथर्व ५।६।३)

मधु जिह्वाः	अत्यन्त मीठी वाणी से हित और प्रिय बोलनेवाले
सहस्रधारे	देवता एवं ऋषिगण जो कि सहस्रधार से घृत क्षरण वाले सोमाभिषवसवन में भाग लेने वाले हैं वे
दिवः नाके	स्वर्ग निवासी देवर्षिगण अन्तरिक्ष में घूम-घूमकर समस्त प्राणियों को जो कि
असश्वतः	यज्ञ, तप आदि करने में असमर्थ हैं उन्हें सिखाते
समस्वरन्	समझाते हैं कि, समुद्र के तीर में विश्वधारक
अस्य, स्पशाः पदे पदे	इन श्री रामजी के पहरेदार बानर गण हैं थोड़ी-थोड़ी दूर पर वे पहरेदार नियत किये गये हैं,

ते च — सोने की कौन कहे अपने पहरे पर वे बानरगण
न निमिषन्ति — पलक तक नहीं झपकाते अर्थात् हरदम सावधान रहते हैं। वे बहुत प्रकार से अपनी सेवा उपस्थित करने वाले हैं अर्थात् सब प्रकार से श्रीराम जी की सेवा में तैयार रहते हैं। और वे सब बानर वीर
पाशिनः — अनेक आयुध धारण करनेवाले हैं 'गिरि पादप नख आयुध धारी।'
सेतवः — उन्हीं बानरों ने मिलकर पुल बनाया। तो क्या बानरों की शक्ति पानी पर पहाड़ तैराकर पुल बनाने की थी? नहीं, वह तो श्रीराम जी की कृपा है जो श्रीराम जी बानर भालु तक पर करते हैं भला उनकी कृपा से वञ्चित कोई भी मनुष्य कैसे रह सकता है जो कि भगवत्कृपा कांक्षी हो। अतः सभी ममुष्य को सदैव प्रार्थना करना चाहिये कि
अव। — हे प्रभो! रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए ॥१८६॥

(१४०) सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन् सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम्।
अस्तमाते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१८७॥
(ऋ० १०।१११।१०)

सध्रीचीः सिन्धुम् — सहधर्मचारिणी श्री सीता जी समुद्र के समान अपार एवं गंभीर गुण युक्त श्रीरामजी के पास
उशतीः इव, आयन् — मिलन कामना करती हुई कमनीय नदी के समान आ गईं
सनात् पूः भित्* — और सदैव निरन्तर शरीर को शोषण करने वाला तथा पुर अथवा नगर गाँव आदि सभी को अग्नि आदि द्वारा-भेदन कर उजाड़ देने वाला और

---

* 'नगर गाँउपुर आगि लगावहिं ॥'

आसाम् जारः आरितः।	इन सीता जी पर कुदृष्टि वाला रावण मारा गया।
इन्द्र! ते अस्तम्	हे परमैश्वर्य शालिन् श्री राम जी! आपके घर
पार्थिवाः वसूनि	अयोध्या जी में पृथ्वी की सारी सम्पत्ति।
आजग्मुः †अस्मे	आ गई है। हम लोग आपके दर्शनाभिलाषी
पूर्वीः सूनृताः।	तो निरन्तर ही अनाद्यनिधना वेदवाणी से आपकी स्तुति किया करते हैं॥ १८७ ॥

देवता एवं महर्षियों के स्तुति कर लेने के बाद वेद ने भी श्री राम जी की स्तुति किया जिसका एक मन्त्र यह है—

बोध मे अस्य बचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयते त्वो अनु त्वो गृणाति बन्दारुस्ते तन्वं बन्दे अग्ने॥१८८॥

(ऋ० १।१४७।२, शु० य० १२।४२, तै० सं० ४।२।३।४, नि० ३।२०)

यविष्ठ! मे अस्य	हे सदैव युवा रहने वाले भगवन्। मेरे इस
मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य	पूजनीय अच्छे प्रकार से सजाये हुए
वचसः बोध। स्वधावः	स्तोत्र को सुनिये। हे सुन्दर रीति से प्रजा को धारण करने वाले राजा रूप परमेश्वर
त्वः पीयते त्वः	कोई तो आपकी निन्दा करता है और कोई
अनुगृणाति। अग्ने!	आपकी स्तुति करता है। हे प्रकाश रूप परमेश्वर!
ते वन्दारुः	हम वेद तो आपकी स्तुति करने वाले हैं। अतः
ते तन्वम् आ	आपकी मूर्ति को सम्यक् प्रकार से विधिपूर्वक
बन्दे।	बन्दना करते हैं।

'ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुण यश नित गावहीं।' ॥८८८॥

(१४१) सचन्तः यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आयन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो न किरद्धानु वेद॥१८९॥
(ऋ० १०।१११।७)

---

† ऋधिसिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

केतवः अस्य राम् — ज्ञानी लोगों ने इस वेदत्रयी के सारभूत प्रणव के कारण राम पद को शब्दतः एवं अर्थतः

अविन्दन्। यत् — प्राप्त किया। जो लोग 'राम्' पद से 'ओम्' नहीं मानते उनके लिये श्रुति कहती हैं कि जैसे

उषसः — उषा काल में थोड़ा प्रकाश होता है वैसे ही कल्पादि में अल्प प्रकाश जो कि विराट् रूपेण हुआ वह 'अ' कार रूप है और जो

सूर्येण — सूर्य के समान पूर्ण प्रकाश रूप हिरण्य गर्भ 'उ' है

सचन्तः — उन दोनों 'अ' 'उ' को एक में मिलाते हैं अर्थात् 'ओ' बनाते हैं

चित्राम् राम् — स्वर युक्त 'चित्र' अग्नि बीज 'राँ' को

अबिन्दन्। दिवः — प्राप्त किया। दिन = जागृत काल का अनुभव किया हुआ, देखा हुआ और सुना हुआ पदार्थ ही

जैसे स्वप्न में पुनः प्राप्त होता है उसी तरह यह बीज 'राँ'

पुनः ददृशे — फिर दुबारा ज्ञानियों द्वारा ही देखा गया अर्थात् 'राँ राम्' ऐसा देखा गया उसके बाद

आयत् — उस 'राँ राम्' पद में 'आय जोड़ देने से 'राँ रामाय' ऐसा रूप बना। उसके बाद उसमें

नक्षत्रम् — चन्द्रमा अर्थात् चन्द्रमा का परम कारण हृदय के पर्यायवाची शब्द 'नमः' को जोड़ देने से ' राँ रामायनमः' ऐसा रूप बना।

यह श्री राम मन्त्रोद्धार हुआ। श्रुति इसके बाद श्री राम मन्त्र के यजन का फल बतलाती है कि 'मन' जिसका रूप कि स्वाभाविक ही चंचल है 'मनोदुर्निग्रहं चलम्।' ऐसा होते हुये भी—

यतः किः न — यति अर्थात् इस मन्त्र के याजक का मन फिरः इधर उधर विक्षिप्तः नहीं होता अर्थात् श्री राम मन्त्र

जापक का मन निर्विकार हो जाता है और उस निर्विकार मन से भगवान् श्री रामचन्द्र जी को वह साक्षात्-प्रत्यक्ष पा जाता है।

अद्धा वेद।

अर्थात् सविधि श्री राम मन्त्र जपने से श्री रामभद्र जी का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। वयोवृद्ध रामायणी श्री श्यामसुन्दर दास जी (कड़ा—प्रयाग) ने अपनी 'वेद तत्व प्रकाशिका' पुस्तिका में इस मन्त्र की व्याख्या निम्न प्रकार से किया है।—

भाषा भावार्थः—ज्ञानियों ने श्री राम सम्बन्धिनी वेदत्रयी सारभूता ब्रह्म वीज राँ रूपी सम्पत्ति को प्राप्त किया। प्रणव और राम में अभिन्नता है। सांख्य सिद्धान्त सिद्धान्तित कार्य कारण भाव के ऐक्य का सिद्धान्त करते हुये भदे निरासपूर्वक केतवः का विशेषण 'उषसः सूर्येण सचन्तः' पद से दिया गया है, उसका भावार्थ यह है कि उषोवत्' = कल्पमुखोवत्-अल्पप्रकाश 'विराट' 'आ' कार का सूर्य पूर्ण प्रकाश हिरण्य गर्भ 'उ' कार रूप से ऐक्य किया "अ + उ = गुण 'ओ" यह कार्यत्व सामान्यात् 'ओम्' का उपलक्षण हुआ अतः स्पष्टतः राँ और 'ॐ' का ऐक्य है।

यदि कोई सन्देह करै कि 'प्रणव' को ही ज्ञानियों ने प्राप्त किया 'राँ' को नहीं, तो इसी श्रुति में चित्राम् पद दिया है क्योंकि 'चित्रकिरण' होने से अग्नि को चित्र कहा जाता है। भावार्थ यह कि जिसमें वह अग्नि स्वर युक्त राँ है। यहाँ पर चित्र शब्द को अर्शादि मानकर " अर्शादिभ्योऽच् = ५।२।१२६ " पाणिनि के इस सूत्र से 'अच्' के बल से ऐसा अर्थ हुआ कि राँ राम का उपलक्षक है अतः स्पष्ट हुआ कि 'राँ' बीज को ही ज्ञानियों ने प्राप्त किया, अतः प्रस्तुत ऋचा के पूर्वार्द्ध से 'राँ' सिद्ध हुआ अब उत्तरार्द्ध से राम मन्त्र = बीज प्रथमपद, रामाय' मध्यम पद और 'नमः' अन्तिम पद सिद्ध होता है। यथा— 'दिवो न पुनर्ददशे' = जैसे दिन की प्रत्यक्ष की हुई वस्तु रात्रि में स्वप्नावस्थापन्न मनुष्य को दिखलाई पड़ती है, वैसे ही 'राँ' फिर देख पड़ा अर्थात् 'राम्' को फिर पढ़ना चाहिये। अब 'राँ राम्' ऐसा बना इसके आगे राम का

विशेषण 'आयत् नक्षत्र' इस पद से दिया है 'आय' को (राम्) के साथ योजित करने से 'रामाय' सिद्ध हुआ। प्रश्न = 'आयत्' का 'त्' क्या हुआ ?

उत्तर = 'त्' का 'इत्' संज्ञा हो कर लोप हो गया। 'य' इव यति यति यतीति यत्। आचार क्विवन्तय धातु से कर्ता में 'क्विप्' कर निष्पन्न जो 'यत्' शब्द है उसका स्वार्थिक अर्थ 'य' ऐसा ही होता है। अतएव 'राँ रामाय' सिद्ध हुआ। 'आयत्' के आगे 'नक्षत्रम्' पद है। नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा हैं अतः 'नक्षत्र' शब्द 'चन्द्रमा' का वाचक है। चन्द्रमा का परम कारण हृदय लिया जाता है और हृदय से तन्त्रागम प्रसिद्ध 'नमः' शब्द लिया जाता है। चन्द्रमा का परमकारण हृदय है ऐसा 'हृन्मनो मनसश्चन्द्रमा।' यह श्रुति कहती है। इस तरह राममन्त्रोद्धार कर अब उस राममन्त्र का माहात्म्य श्रुति कह रही है कि 'यत्' अर्थात् 'यतमान' 'इस राममन्त्र के याजक' का मन इतस्ततः न 'किः = किरति न' अर्थात् विक्षिप्त नहीं होता, अपितु 'अद्धानु वेद' याजक इस राममन्त्र का यजन करते हुये मन से ब्रह्म का = श्री राम जी का साक्षात् करता है ॥१८६॥

उपरोक्त मन्त्र में कथित श्रीराम मन्त्र के मुख्य उपासक परमाचार्य श्री हनुमान जी ही उस मन्त्र के इस एक पाद विभूतियों में प्रचारक एवं प्रसारक हैं अतः श्रुति इस मन्त्र से श्री हनुमान जी की स्तुति करती है कि—

(१४२) तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारुचित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम् ॥१९१॥
(ऋ० ५।३।३)

रुद्र !	हे रुद्रावतार श्री हनुमान जी।
तव श्रिये	आपने जो परमनिधि सम्पत्ति श्री राममन्त्र को श्री जानकी जी से प्राप्त कर ब्रह्मा को दिया है आप की उस ब्रह्मविद्या रूपी सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये
मरुतः मर्जयन्त।	मरुत आदि देवतागण तप ध्यानादि द्वारा आत्म संशोधन कर रहे हैं।

ते जनिम चारु	आप ही का जन्म लेना रमणीक सुफल है।
यत् विष्णोः उपमम्	क्योंकि श्री जानकी जी से आपने ही सरहस्य विष्णु आदि सम्पूर्ण भगवन्नाम वाचक शब्दों के वाच्य
चित्रम् पदम् निधायि	'राम' पद के पास में स्थित अग्नि वीजात्मक पद 'राँ' को धारण किया है
तेन नाम गोनाम्	उस अग्नि बीज पूर्वक रामपद के साथ निहित "नमन्त्यनेनेति नाम" नमस्कार वाचक 'नमः' पद के साथ अपने इन्द्रियों के
गुह्यम् पासि।	गूहन स्थान हृदय को आप पवित्र किये रहते हैं।

बिना गुरू के मुख से प्राप्त किये मन्त्र जन्य सिद्धि नहीं होती अतः वेद द्वारा श्री राम मन्त्र को जानते हुये भी देवता एवं ऋषिगण श्री हनुमान जी से प्राप्त करने के लिये तप ध्यान आदि से अपना आत्म सन्शोधन कर रहे हैं ॥ १९२ ॥

जीव और शरीर का पृथक्सिद्ध सम्बन्ध है परन्तु तादात्म्य भाव धारण करने के कारण जीव-देह के धर्म का अपने में आरोपण करते हुए अनुभव करता है कि मैं, काला, गोरा, दुबला, मोटा, काणा, खन्जा आदि हूँ। परन्तु परमात्मा और जीव का अपृथक्सिद्ध सम्बन्ध है। अतः व्रह्म और जोव में तत्वतः भेद होते हुए भी परस्पर तादात्म्य भाव है। इसी अपृक्सिद्ध सम्बन्ध के कारण कभी जीव कह बैठता है कि मैं ब्रह्म हूँ और ब्रह्म कह बैठता है कि समस्त चराचर भूत मैं ही हूँ। जिसका एक उदाहरण यह मन्त्र है। [श्री मद्भगद्गीता का दसवाँ अध्याय श्लोक २० से २६ तक इसी मन्त्र का भाष्य है।]

श्रीराम जी ने अपने प्रिय साधकों से कहा कि—

(१४२) अहं मनुरभवंसूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्सामार्जुनेयंपृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१९१॥
(ऋ० ४।२६।१, वृ० उ० १।४।१०)

अहम् सर्व नियन्ता मैं जिस वंश में अवतरित हुआ हूँ

मनुः ।	इसका प्रवर्तक (मनु श्राद्ध देव) अथवा मननशील विद्वान् के सदृश सम्पूर्ण विद्यावों का मत्ता-ज्ञाता
सूर्यश्च	और इस वंश के प्रथम पूर्वज सूर्य अथवा सर्व प्रकाशक भी मैं ही
अस्मि ।	हूँ । और जिनकी सन्तुष्टि के लिये मैंने अवतार लिया जो मेरे इस अवतार के कारण हैं वह
कक्षीवान्	पुत्र कामार्थी–स्वयम्भुवमनु = दशरथ नामक राजा भी
अहम् अभवम् ।	मैं ही हुआ था ।
ऋषि अहम् अस्मि ।	मेरे इस अवतार के लिये यज्ञ करनेवाले ऋषि शृंग और बशिष्ठ भी मैं ही हूँ ।
आर्जुनेयाम् कुत्साम्	अर्जुनी पुत्र कुत्सा को दीर्घायु देकर उसका बल मैंने ही बढ़ाया था,
अहं पृंजे बिप्रः ।	जिन्होंने सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र विद्या प्रदान किया वह ब्रह्मर्षि
अहस्मि । उशना कविः ।	मैं ही हूँ और जो मेरे भक्तों के शत्रुओं (असुर दैत्यों) का तेज बढ़ाया करते हैं वह भार्गव शुक्र मैं ही हूँ । सर्वत्र-सब में मैं ही हूँ । अतः
मा, आ, पश्य ।	मुझे सर्वत्र देखते हुए मेरी उपासना करो ।

यद्यद्विभूतिमत् सत्वं श्री मदूर्जितमेव वा । तत्तमेवांशमे विद्धि ॥ गी०

सो अनन्य जाके असिमति न टरै हनुमन्त । मैं सेवकसचराचर रूप स्वामि भगवन्त ॥ सतम मो मय जब जग देखा ॥ १६१ ॥

बिना गुरू से रहस्य प्राप्त किये हुये उपासना सफल नहीं होती इस लिये श्री राम जी ने उपासना का एक अङ्ग मात्र बतलाया अब आप अपनी = श्री रामोपासना एवं श्रीराममन्त्र के आद्याचार्य श्री हनुमान जी को आराधनीय बतला रहे हैं ।—

(१४५) प्र वः पातं रघुमन्यवोऽन्धोयज्ञं रुद्राय मीढुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१६२॥
(ऋ० १।१२२।१)

रघुमन्यवः !	हे श्री रामोपासना प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यगण !
मीढुषे रुद्राय	विद्यामृत की वर्षा करने वाले रुद्रावतार श्री हनुमान जी की प्रसन्नता के लिये उनकी
यज्ञम् भरध्वम्	स्तुति पूजा अच्छी तरह करो जिससे कि
वः अन्धः प्र	शरीर और मन की अच्छी तरह
पांतं असुरस्य ।	रक्षा होती रहेगी। सुरा को नहीं स्पर्श करने वाले
बीरैः	ब्रह्मा के बीर = माया जयी पुत्र सनकादिकों ने भी मनुष्य शरीर ही की प्रशंसा की है।
रोदस्योः मरुतः	पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य में रहने वाले मनुष्य और देवता सभी के प्राणवायु 'स्वास' शरीर रूपी
इषुधौ इव	तरकस से निकले हुए बाण के समान है अतः जीवन के चञ्चल स्वास क्षणस्थायी
दिवः स्तोषि ।	होने के कारण शीघ्र ही तारकब्रह्म षडक्षर मन्त्र प्राप्ति के लिये श्री हनुनान जी की आराधना करो ॥१६२॥

(१४६) हिरण्य कर्णमणिग्रीवस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आजग्मुषीरुस्राश्चाकंतूभयेष्वस्मे ॥१६३॥

(ऋ० १।१२२।१४)

नः अर्णः विश्वदेवाः	मन्त्र रहस्य प्राप्ति के इच्छुक सभी देवगण
हिरण्यकर्ण, मणिग्रीवं	अग्नि बीजात्मक जो तारक महामन्त्र है वह जिनके कान में हैं, और जो मणिवत प्रकाशित ब्रह्मविद्या आत्मतत्व को कण्ठस्थ रखने वाले हैं
तत् वरि वस्यन्तु	उन हनुमान जी की आराधना करने से ही
अर्यः सद्यः	पर्वत धारण करने वाले श्री हनुमानजी जो कि मन्त्र सिद्धि के स्वरूप ही हैं तथा शीघ्र = बिना विशेष जप तप के थोड़ी सेवा से ही
आजग्मुषीः	कृपाकर प्राप्त होने वाले हैं ऐसे हनुमान जी जी

उभयेषु आ उस्रा	अत्रामुष्मिक दोनों लोकों या सविकल्पक; निर्विकल्पक दोनों भावों की सिद्धियों से
अस्मे चाकन्तु ।	हमारी उपासना करने वालों की तृप्ति करें ॥१९३॥

इस प्रकार श्रीराम जी से अपनी प्रशंसा सुनकर श्री हनुमान जी ने प्रार्थना पूर्वक कहा कि—

(१४७) न स स्वो दक्षो वरुण धृतिःसा सुरामन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता॥१९४॥
(ऋ० ७।८६।६)

वरुण !	हे वरणीय प्रभो !
सः दक्षः	वह समुद्र तरणादि कुशलता का कार्य
स्वः न, उ	मेरे पुरुषार्थ से नहीं हुआ अपितु सब कार्य तो
सा धृतिः ज्यायान्	आप की ही धैर्याष्ठितृ शक्ति ने ही किया कराया है क्योंकि आप सर्व प्रकार समर्थ (ईश्वर) हैं तब भी
कनीयसः	हम सब तुच्छ जीवों पर कृपा कर हमलोगों के
पारे	समीप हीं रहते हैं अतः आप की सामर्थ्य से ही समुद्रतरण आदि कार्य सिद्ध हुये हैं यदि कहा जाय कि दूसरे की सामर्थ्य से दूसरा कोई कार्य कैसे कर सकता है तो जैसे
सुरा, मन्यु, विभीदकः अचितिः न इत	मद्य, क्रोध, बहेड़ा का वृक्ष, भूत, प्रेत एवं सन्निपातजन्य उन्माद से आविष्ट होने से अशक्त—निर्बल पुरुष भी शक्ति साध्य कार्य कर डालता है वैसे ही आपकी शक्ति से ही हमारे द्वारा बड़े-बड़े कार्य हुये हैं और आप जो जीव के शुभाशुभ कर्म फल भोगार्थ
अमृतस्य	स्थूल शरीर के जाग्रत में सत्य मालूम पड़ने के समान
स्वप्नः प्रयोता अस्ति ।	स्वप्न सृष्टि के कर्ता हैं वही आप हमलोगों को शक्ति भी देते हैं

सो सब तुव प्रताप रघुराई । नाथ न कछुक मोरि मनुसाई ॥ १९४ ॥

अब श्री हनुमान् जी ऋषियों और देवताओं से संसार समुद्र से पार होने अर्थात् माया जीतने के निश्चित् स्वानुभूत उपाय बतला रहे हैं । वैष्णवीय पंच संस्कारों में मन्त्र एवं तसमुद्राङ्कन का वर्णन पीछे के मन्त्र में करके अब तसमुद्रा का प्रभाव वर्णन करते हैं । मन्त्र एवं तसमुद्रा अमिट संस्कार होते हैं इसी से श्रुति में इन्हीं दो संस्कारों का वर्णन विशेष रूप से है क्योंकि मन्त्र तथा मुद्रा (धनुर्बाण) ये दोनों संस्कार ही यथार्थ श्री राम जी की प्रधान वस्तु है इसी से मन्त्र माहात्म्य कह कर अब श्रुति धनुर्बाण धारण का माहात्म्य कहती है—

धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥१९५॥
(ऋ० ६।७५।२, शु० य० २६।३९ तै० सं० ४।६।६।१ नि० ६।१७)

धन्वना	श्री राम जी के प्रधानायुध धनुर्बाण से अंकित होने परब्रह्म श्री रामजी की प्राप्ति के विरोधी पापों के नाश करने में
तीव्राः समदः जयेम ।	हम सब बड़े समर्थ होकर कामादिकों के ठाने हुये संगाम को जीतेंगे । यदि कहा जाय कि इन्द्रियाँ तो विषयोन्मुख हो रहीं हैं तब कामादि कैसे जीते जा सकेंगे ? इसके समाधान में श्रुति का कहना है कि—
धन्वना, गाः जयेम	धनुरंकन के प्रभाव से इन्द्रियों को भी जीतेंगे और इन्द्रियों के जय से ब्रह्म साक्षात्कार का लाभ हो जायेगा । और
धन्वना *आजिम्	धनुरंकन के प्रभाव से ही मोक्ष मार्ग को भी जीतेंगे

अर्थात् धनुरंकन के प्रभाव से प्रसन्न हृदय ईश्वर से प्रदर्शित सुषुम्णा

---

*आजिम्—अजन्ति गच्छन्ति परब्रह्म गंतारोऽस्मिन्निति आजिमार्गः तम् ।

नाड़ी से निकल कर अर्चिरादि मार्ग† होकर परब्रह्म श्री राम जी को प्राप्त होंगे यदि कहा जाय कि माया वन्धन रहित हुये बिना ईश्वर की प्रसन्नता कैसे प्राप्त होगी ? तब इसका समाधान श्रुति इसी मन्त्र के उत्तरार्द्ध में सुन्दर एवं सुस्पष्ट रूप में करती है कि हमारे प्रभु का

धनुः शत्रोः	धनुष ही अनादि माया बन्धन रूप शत्रु की
कामं अपकृणोति	संसार में डालने वाली कामना को नाश करने वाला है। यदि कहा जाय कि संचितादि कर्मों के बने रहते माया-बंधन-व्यवस्था कैसे नाश होगी ? तो
सर्वाः प्रदिशः	सब दिशाओं में वर्तमान् नाना प्रकार की योनियों में जन्म देने वाले सर्व कर्मों को
धन्वना जयेम ।	धनुरङ्कन के प्रभाव से जीत कर नाश कर देंगे। इसी तरह भगवद्बाण भी महामहिमशाली हैं ॥१६५॥

भगवान् श्री राम जी के कर कमलों में निरन्तर शोभित जो बाण हैं वे—

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्याः दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मयंसन् ॥१९५॥
(ऋ० ६।७५।११, शु० य० २६।४८, तै० सं० ४।६।६।४, नि० २।५।६)

इषवः, सुपर्णं वस्ते	वे बाण सुन्दर पक्षों=परवनों को धारण करते हैं।

---

† सत्संगाद्भव निस्पृहो गुरुमुखाच्छ्रीशं प्रपद्यात्मवान्,
प्रारब्धं परिभुज्य कर्म सकलं प्रक्षीण कर्मान्तरः ।
न्यासादेव निरंकुशेश्वर दया निर्लून मायान्वयः,
हार्दानुग्रह लब्ध मध्य धमनिद्वाराद्बहिर्निर्गतः ॥ १ ॥
मुक्तोऽर्चिर्दिन पूर्वपक्ष षड्उदङ्मासाब्द बातांशुमद्,
ग्लौर्विद्युद्वरुणेन्द्रधातृ महितः सीमान्तसिन्ध्वाप्लुतः ।
श्रीवैकुण्ठमुपेत्य नित्यमजडं तस्मिन्परब्रह्मणः,
सायुज्यं समवाप्य नन्दति समं तेनैव धन्यः पुमान् ॥१॥
श्री यामुनाचार्य जी कृत गीता भाष्य

अस्याः दन्तः मृगः *गोभिः सन्नद्धा ।	इन तीरों के दाँत-फलक, शत्रुओं को ढूँढ़कर मारने वाले हैं । ये सदा किरणों या वेदमन्त्रों से युक्त रहते हैं । इसी से सदैव बलशाली रहते हैं ।
प्रसूता पतति ।	वे बाण श्री राम जी के हाथों से अमंत्रित भी छोड़े जाने पर शत्रुओं पर गिरते हैं, गिर कर बाह्याभ्यन्तर के शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं ।
यत्राः नरः सं द्रवन्ति	जिन बाणो को बाहुमूल पर धारण करके मुमुक्षु मानव भगवद्धर्म में श्रद्धा सम्पन्न होकर द्रवित हृदय वाले हो जाते हैं । अर्थात् बाणांकित होते ही प्रत्यवाय रूप संचित कर्म नष्ट हो जाने से स्वच्छ हृदयवाले हो जाते हैं ।
च वि द्रवन्ति	और भगवद्धर्म = भक्ति में विशेष रूप से संलग्न हो
अस्मभ्यम् इषवः	हम सब बाणाकित होने वाले को भगवद्बाण
शर्म यंसन् ।	लोक परलोक में कल्याण = परम सुख देते हैं । १६६

इस प्रकार भगवद्बाणों का माहात्म्य कह कर अब इस अग्रिम मन्त्र में श्रुति बता रही है कि बाणाङ्कित होते समय बाणों की इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये कि—

ऋजीते परिवृंधि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधिब्रवीतु नो अदितिः शर्म यच्छतु ।।१९७।।

ऋ० ६।७५।१२ शु० य० ६।४६, तै० सं० ४।६।६।४

ऋजीते	हे सीधा मार्ग बनाते हुये सीधे चलने वाले वाण !
नः परि वृंधि	आपसे अङ्कित होने वाले हमें काम क्रोधादि विकारों एवं तज्जन्य पाप कर्मों से बचाइये
नः तनूः	आपसे अङ्कित होनेवाले हमारे स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर

---

* लौह निर्मित तीर तब तक तीर ही कहाती है जब तक कि वह मन्त्रित नहीं होती । मन्त्रित होते ही उसकी बाण संज्ञा हो जाती है ।

अश्मा भवतु	पाषाणवत् दृढ़ हो जायँ जिससे हम अबाधित रूप से भगवद्भजन कर सकें जिससे सर्वोत्कृष्ट
सोमः नः	सौंदर्यामृत एवं सर्व श्री सम्पन्न श्री राम जी हमारे ऊपर कृपा करके हमें अपनी
अधि ब्रवीतु	सेवा में नियुक्त करें या हमारी भक्ति की प्रशंसा करें
अदितिः नः	और अविनाशी सीता राम जी हमें सदैव
शर्म यच्छतु ।	अपना कैंकर्य रूप परम सुख दें ॥१६७॥

(३१) चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविंदुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥१६८॥

ऋ० ६।६६।१६ साम० ६।१।२

शकुनः* गोविंदुः	पक्षी रूप भगवदंशभूत जीव
श्येनः	सामर्थ्य = प्रकाश स्वरूपभूतज्ञान युक्त होते हुये भी
चमूषत्	माया के कारण शरीररूपी पिंजड़े में बन्द रहता है,
द्रप्सः ।	माया बद्ध होने से आत्म प्रवञ्चन किया करता है ।
आयुधानि	भगवदायुधों = धनुर्बाण, शङ्ख चक्रादिकों को जब
बिभ्रत् अपामूर्मिम्	धारण करता है तब दुःख रूप लहरियों से भरे
समुद्रम् सचमानः	संसार-समुद्र को सेवन करता हुआ सुत वित कल-त्रादि को भोगता हुआ भी
महिषः तुरीयं धाम	परम समर्थ होकर भगवान् के दिव्य धाम को
विवक्ति ।	प्राप्त कर लेता है अर्थात मुक्त हो जाता है ॥१६८॥

इस प्रकार भगवदायुधों का माहात्म्य बतलाकर अब भगवच्चरणों में प्रार्थना करते हैं—

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्नतदामोऽश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥१६९॥

ताण्ड्य ब्रा० १।२।८ ऋ० ६।८३।१ साम० ५, ६, १२।४, ४, ७ । तै० आ० १।११।१

* 'द्वासुपर्णा सयुजासखाया० ऋ० १।१६४।१ में जीव को पक्षी कहा है ।

ब्रह्मणस्पते !	हे वेदों तथा ब्रह्मा के स्वामी श्री राम जी ! आप
प्रभुः विश्वतः	सबके स्वामी हैं, सम्पूर्ण चराचर मात्र में
गात्राणि पर्येषि । ते	व्याप्त होकर रहते हैं, आपका
पवित्रम्	प्रकाशमय "मन्त्रः पवित्रमुच्यते, रश्मयः पवित्र मुच्यते । निरुक्त ५।६ ।" अभिमन्त्रित
विततम्	बाण भी भक्तों के शरीर में व्याप्त होकर रहता है ।
अतप्ततनूः आमः	जो लोग भगवदायुधों से अपने शरीर को अभितापित नहीं करते वे लोग पाप में निमग्न रहने के कारण आपके
तत् न अश्नुते	उस प्रसिद्ध दिव्य धाम को नहीं प्राप्त कर सकते, और जो आपके संस्कारों से संस्कृत होकर
शृतासः तत्	अपने पापों को जला दिये हैं वे उस दिव्य धाम को
बहन्तः समाशत्	प्राप्त करके आपके दिव्यानन्द को भोगते हैं ।
इत् ।	यहाँ 'इत्' शब्द एवार्थक है अर्थात् इस मन्त्र में वर्णित सिद्धान्त निश्चित् तत्व ही है ॥ १६६ ॥

इस प्रकार श्री हनुमान् जी ने जब श्री राममन्त्र एवं धनुरंकन का माहात्म्य कहा और अपने पुरुषार्थ की चर्चा तक नहीं की तो श्री हनुमान जी की इस निरभिमानता को देख कर देवताओं एवं ऋषियों ने कहा कि—

(१४९) यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
बिप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीव चातनः ॥२००॥

ऋ० १०।९७।६ शु० य० १२।८० तै० सं ४।२।६।२

यत्र औषधीः	जिनकी शरीर में औषधी-सञ्जीवनी लाकर
समग्मतः	श्री राम-लक्ष्मण आदि के जिलाने-विशल्य करने की अपरमित शक्ति है,
राजानः समितः इव	राजा की सभा में बैठने, सलाह देने वाला जैसे सभासद ही कहा जाता है वैसे ही

स विप्रः भिषक् उच्यते	वह व्यापकगुण एवं सम्पूर्ण औषधी लानेवाला वेद पाठी पुरुष भी वैद्य ही कहा जाता है। अतएव
रक्षोहा सः	राक्षसों के मारने वाले, श्री रामादिकों को जीवन प्रदान करने के कारण वह वीरपुरुष
अमीव चातनः।	आधिभौतिक एवं आधिदैविक दुष्टों के नाश करने के लिये प्रार्थनीय है। अतएव उन श्री हनुमान जी से हम सब लोग भीतर बाहर के सभी दुष्टों के नाश की कामना रखते हैं ॥२००॥

अब निम्नलिखित तीन मन्त्रों में भगवान् की बाहुओं का वर्णन है। भगवान् ने अपने जिन-जिन अवतारों में राक्षसों को मारा है उन सभी अवतारों में से केवल श्री रामावतारकाल में ही आदि से लेकर अन्त तक दो बाहुओं से ही रहे और किसी भी राक्षसान्तक अवतार में सदैव द्विभुज नहीं रहे अतएव इन तीनों मन्त्रों में दो बाहुओं का ही वर्णन होने से बाहुओं को ही असुरों का नाशक कहा गया है। स्मरण रहे कि शचीपति देवराज इन्द्र तथा सभी देवतागण कोई भी चार भुजा से कम तो कभी रहता ही नहीं—

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ।
तौ युंजीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां सहो महत् ॥२०१॥

(साम० २१।१।२१ यह मन्त्र अथर्व १९।१३।१ में सामवेद के पाठ से बहुत उलट पलट में है)

योगे आगते	स्थूल जगत में बाह्य प्रतिद्वन्दी के सामने और सूक्ष्म जगत में मन, मोह मारादि शत्रुओं की प्रतिद्वन्दिता के लिये संग्राम भूमि में आने पर
इद्रस्य तौ बाहू	परमात्मा श्री रामजी के उन दोनों बाहुओं का ही
युंजीत	आश्रयण ग्रहण करना चाहिये जो बाहुवें
स्थविरौ युवानौ	मोटी मोटी पीन आयत युवावस्था के महान् बल से
अनाधृष्यौ सुप्रतीकौ	परिपूर्ण किसी से कभी न हारनेवाली, अत्यन्त सुन्दर

१३

असह्यौ	और जिनका वेग कोई न सह सकै
प्रथमौ	ऐसी वे दोनों बाहुयें प्रथम से ही हैं अर्थात् ब्रह्म का नित्य सनातन परविग्रह द्विभुज हीं है। चतुर्भुज अष्टभुज सहस्त्रभुज आदि नहीं।
याभ्याम् असुराणाम् महत् महः जितम्	परमात्मा ने जिन दोनों बाहुओं से बड़े-बड़े राक्षसों की बहुत बड़ी लड़ाकू सैन्यको जीत लिया। उन बाहुओं का आश्रयण करने वाला सर्वथा एवं सर्वदा के लिये निर्द्वन्द हो जाता है ॥२०१॥

उरूँ नो लोकमनु नेषि विद्वान् स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋभ्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उपक्षयेम शरणा वृहन्ता ॥२०२॥

(अथर्व १६।१५।४)

इन्द्र !	हे सर्वैश्वर्यमान् परमात्मन् श्रीराम जी !
विद्वान्, नः	आप सर्वज्ञ हैं। हमारे हित को जानने वाला अन्य नहीं केवल आप ही मात्र हैं, हमैं
उरूम् अनुनेषि यत्	निरावरण विस्तृत सर्वश्रेष्ठ लोक नित्यविभूति की प्राप्ति करा दीजिये। जो लोक
स्वः	स्वयं हैं अर्थात् किसी के द्वारा निर्मित नहीं हैं,
ज्योतिः, अभयम्*	जो सर्वदा एक रस अखण्ड प्रकाशयुक्त रहता है,

* इसे औपनिषदिक श्रुति, ब्रह्मसूत्र एवं गीता में स्वयं भगवान् ने भी स्पष्ट कह कर समझाया है। यथा—

"स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते, न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते" (छा० उ० ८।१५।१)

"अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।" (ब्रह्मसूत्र ४।४।२२)

मामुपेत्य तु कौन्तेय दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानोः संसिद्धिं परमां गताः ॥

	जो अभय स्थान है अर्थात् जहाँ से फिर कभी पतन (जन्ममरण) नहीं होता। जो
स्वस्ति	सदैव मङ्गलमय बना रहता है ऐसे धाम वाले
स्थविरस्य ते बाहू	सर्व समर्थ आपकी दोनों बाहुयें
ऋभ्वा (उग्राः)	परम सुन्दर दर्शनीय हैं। 'ऋभ्वा' के स्थान पर 'उग्राः' पाठ भी मिलता है जिसका अर्थ अत्यन्त बल पूर्ण होता है।
बृहन्ता	बहुत बड़ी बड़ी अर्थात् आजानुलम्बित है।
शरणाः उपक्षयेम।	वे बाहुयें सबकी रक्षा करने वाली हैं। उन दोनों बाहुओं का आश्रय लेकर हम अपने सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का सर्वथा नाश कर देंगे।

परमात्मा के युगलबाहू के सम्बन्ध में मानो इन्हीं श्रुतियों के उपबृंहण रूप ही आदि काव्य वाल्मीकीय रामायण में बारम्बार "बाहूते परिघोपमौ।" 'सर्वभूषणभूषार्हौ" "आजानुबाहू।" आदि कहा गया है और अन्य श्रुति-स्मृतियों में जहाँ जहाँ भी ब्रह्म के परतम स्वरूप का वर्णन है वहाँ वहाँ प्रायः सर्वत्र परस्वरूप के नित्य द्विभुज रहने का ही वर्णन है। यहाँ थोड़े से प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं—

१—उभाहिहस्ता वसुना पृणस्वा० (यजुर्वेद ५।१९)
हे प्रभो आप मुझे दोनों हाथों से ऐश्वर्य भर दें।

२—आरोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे॥ अथर्व ८।१।८।

आ ब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(गीता ८।१५।१६)

होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहैं॥
सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं। गीतावली उ० का० १३

हे प्रभो हम आपके दोनों हाथों की शरण-छाया चाहते हैं, हमें अन्धकार से निकाल कर प्रकाश = ज्ञान-भक्ति प्रदान कीजिये।

३—यदिन्द्र चित्रमहह नास्ति त्वा दातमद्रिवः।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्तया भर॥ ऋ० ५।३९।१। साम० ३।१२।४

आपको देने के लिये मेरे पास जगत् में कुछ नहीं है इसलिये हे सर्व सम्पन्न प्रभो हमको जो ज्ञान एवं प्रेम रूप धन हैं उसे आप अपने दोनों हाथों से दीजिये॥

४—प्रश्न—मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमुरू पादावुच्येते।
उत्तर—ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः॥यजु० ३१॥

५—प्रकृत्या सहितः श्यामः पीतवासा प्रभाकरः।
द्विभुजः कुण्डली रत्नमाली धनुर्धरः॥ रा० ता० उ० ४।७

६—पुरुषोत्तमस्य देवस्य शुद्धस्य स्फटिकत्विषः।
समपादस्य पद्मोर्ध्वे ह्येक वक्त्रस्य संस्थितिः॥
वरदाभय हस्तौद्वावप्रवृत्तारव्य कर्मणि॥ (संकर्षण संहिता)

७—दशहस्त्या अंगुलयो दश पद्या, द्वावूरू द्वौवाहू आत्मैनं पंच विशम्
एतरेय ब्रा०

८—पाणिभ्यां त्रयीं सम्भरति॥ (रहस्य आम्नाय)

९—युक्तः पाणिद्वयेन सः॥ (सात्वत संहिता)

१०—द्विभुजं पुरुषांकारं युक्तमादित्यसन्निभैः।
ध्वजैराभरणैश्चिन्हैश्शंखचक्रादि संज्ञितैः॥ (पुष्कर संहिता)

११—निरस्त्रा द्विभुजा सौम्या शङ्ख चक्र करांकिता।
महापुरुष रूपा च सुप्रसन्ना विलक्षणाः॥ (सुमन्तु संहिता)

१२—द्विवाहोश्चक्र धृत पाणिर्दक्षिणश्शङ्खधृत परः।
उपविष्टन्तु मोक्षार्थी उत्थितं विश्व सिद्धये॥ (भरद्वाज संहिता)

१३—मुद्रां ज्ञान मयीं वाम्ये यामे तेजः प्रकाशनः।
धृत्वा व्याख्यान निरतः चिन्मयः परमेश्वरः॥ रा० ता० उप०

१४—स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजम् ।
परं तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत् ॥ (ना० पां०)

१५—द्विहस्तमेकवक्त्रं च शुद्ध स्फटिक सन्निभम् ।
पीताम्बरधरं सौम्यं रूपमाद्यमिदं हरेः ॥ (ना० पां०)

१६—द्विभुश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्ट प्रपूरकः ॥ (हनु० सं)

१७—ततः सिंहासनस्थः सन् द्विभुजः रघुनन्दनः ।
धनुर्धरः प्रसन्नात्मा सर्वाभरण भूषितः ॥ रा० ता० उ०

१८—रामास्संजायते कामः कामाद्विश्वं प्रजायते ।
तस्माद्धनुर्धरात्सर्वे द्विभुजा मूल रूपिणः ॥

१६—परं ब्रह्म परंधाम जगतां कारणां परम् ।
नागशय्या शयानं च द्विभुजं रघुनन्दनम् ॥

२०—द्विभुजो जानकीजानिः सदा सर्वत्र शोभते ।
भक्तेच्छातो भवेदेष वैकुण्ठे तु चतुर्भुजः ॥ (महाशिव सं०)

परिदध्म इन्द्रस्यबाहू समन्तं त्रातस्त्रायतां नः ।
देव सवितः सोम राजन् सुमनसं मा कृणु स्वस्तये ॥२०३॥

अथर्व ६।६६।३

देव !	हे दिव्य कीड़नशील ! हे सर्व उर प्रेरक !
सवितः ! त्रातः	हे सृष्टि स्थिति संहार कर्तृन् ! सूर्य वंश के भी
त्रायताम्	सूर्य ! हे सर्व रक्षक ! रक्षा कीजिये
इन्द्रस्थ ते बाहू	सर्वैश्वर्यमान् आपकी दोनों बाहुयें
समन्तम् परिदध्मे ।	सबको सब ओर से धारण = रक्षण करती हैं ।
सोम ! राजन् !	हे कृपामृतश्राविन् प्रियदर्शिन् हे उभय विभूत्यधीश !
स्वस्तये मा	आप कृपा करके मेरे कल्याण के लिये मुझे
सुमनसाम् कृणु ।	सुन्दर निर्मल मन वाला बना दीजिये जिससे मेरा
	मन सदा आपके ही चरणों में लगा रहे ॥२०३॥

यहाँ तक श्री रामराज्य प्राप्ति एवं स्तुति आदि का दिग्दर्शन श्रुतियों से

कराकर श्री रामावतार के अवशिष्ट चरित्रों में कुछ प्रधान प्रधान चरित्र के सम्बन्ध की एकाध श्रुति सङ्कलित की जा रही है।

व्यवहार में जैसे श्री भरतादि तीनो भाई श्री रामानन्य थे तथ्यतः चारों भाइयों में ऐक्य था वैसे ही व्यवहार में श्री माण्डवी आदि तीनों बहिनें भी श्री सीता जी की अनन्या थीं और तत्वतः एक ही थीं। श्री राम जी सदैव तीनों भाइयों के पुत्रों को भी अपने पुत्रों के समान ही मानते थे और अपने पुत्रों की तरह ही भ्रातृ-पुत्रों के साथ भी व्यवहार करते थे, एक ही ब्रह्म चार रूप में था इसीसे श्रुति सब भाइयों के पुत्रों को भी श्री राम जी के ही पुत्र कह कर संकेत कर रही है कि राम जी के

(१५४) अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवाँ॰उपप्रैत्सप्तभिः परा मार्त्ताण्डमास्यत्॥२०४॥
(ऋ० १०।७२।८ तै० आ० १।१३।२ तांड्य ब्रा० २४।१२।६)

ये अष्टौ पुत्रासः	जो आठों पुत्र थे वे आठो
अदितेः तन्वः परिजातः	पृथ्वी के शरीर अर्थात् भूमंडल के राजा हुये और आठों पुत्रों को आठ स्थान का राज्य देकर
सप्तभिः देवान्	गृहस्थ धर्म वाले चारों वर्ण और ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थी, सन्यासी इन तीन आश्रमियों अर्थात् इन सातों तथा देवांश बानरों को भी इसी स्थूल शरीर से
उपप्रैत मार्त्ताण्डाम्	साथ लेकर दिव्य धाम को गये और उन्हें सूर्य मंडल को भेद कर जाने वालों के समान श्री राम जी ने
परा आस्यत्।	पराप्रकृति त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेत में ले जाकर रखा॥

राज्य में रहने वाले सभी राजा रानी के पुत्रवत् होते हैं अतः अवधेश श्री राम जी के राज्य में रहनेवाले चार वर्णों के सभी गृहस्थों एवं अन्य तीनों आश्रमों के सभी आश्रमियों को श्री सीता राम जी के पुत्र कहते हुये श्रुति कहती है कि श्री सीता राम जी के साथ अयोध्या की समस्त प्रजा त्रिपद्विभूति (साकेत) गई थी उसी का संकेत इस श्रुति में भी है—

(१५५) सप्तभिः पुत्रैरदिति रुपप्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्त्ताण्डमारभत्॥२०५॥
(ऋ० १०।७२।६ तै० आ० १।१३।२)

अदितिः	श्री राम जी के साथ साथ ही श्री सीता जी भी
सप्तभिः पुत्रैः	प्रजा रूप सात पुत्रों के सहित युगारम्भ से
पूर्व्यं युगम्	पूर्व में ही स्थित जहाँ काल की कोई माया नहीं उस
उपप्रैत् मृत्यवे	त्रिपाद्विभूति में चली गईं तो भी मरण शील
प्रजायै त्वत्	प्रजावों = बद्धजीवों के लिये अपने एक अंश से
मार्तण्डम् अभरत्।	"सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्।" सूर्य मण्डल को आप्यायित करती रहती हैं॥२०५॥

(१५७) नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वाऽवरेष्वदधादा परेषु॥२०६॥
(ऋ० १०।५६।७)

नावा, न, क्षोदः	जैसे नौका द्वारा जल धारा में विचरण किया जाता है उसी तरह श्री राम जी ने अपने
स्वस्तिभिः पृथिव्याः	दिव्यानन्त कल्याण गुणों एवं पुष्पकादि विमानों से पृथ्वी मण्डल के समस्त
प्रदिशः स्वाम्, प्रजाम्	प्रदेशों में विचरण कर अपनी समस्त प्रजाओं के
विश्वा दुर्गाणि अति	सम्पूर्ण लौकिक पार लौकिक संकटों को हटाया।
बृहदुक्थः अवरेषु	महान् कर्म करने वाले श्री राम जी ने भूलोक स्थित अयोध्या जी की एवं अन्यत्र की सारी प्रजा को
परेषु आ अदधत्।	अपने पर धाम में स्थापित किया।

इससे श्रुति ने यह भी दिखलाया कि भगवल्लोक = मोक्ष प्राप्ति के लिये महाकारुणिक श्रीराम जी की शरणागति ही लेनी चाहिये॥ २०६॥

यद्यपि श्रीराम जी ने अपने उस लीला विग्रह दाशरथी रूप को सबकी चर्म चक्षुओं से अन्तर्हित कर लिया परन्तु भक्तों एवं दिव्य दृष्टि प्राप्त ज्ञानियों के लिये सदैव उसी अवधेश रूप में विराजमान रहते हैं—

भोग स्थान परायोध्यालीला स्थानं त्विदं भुवि ।
भोग लीला पती रामो निरंकुश विभूतिकः ॥ म० शि० सं०

इसी तथ्य को श्रुति कह रही है—

अग्निः प्रियेषु धाम सु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥२०७॥ (शु० य० १२।११७)

अग्निः भूतस्य, भव्यस्य — तेजो विबृद्ध सर्वाग्रणी श्रीराम जी भूत और भविष्य के अद्वितीय चक्रवर्ती

एकः सम्राट् विराजति — एक मात्र सार्वभौम शोभित है अर्थात् श्री राम जी के समान राजा न तो भूत काल में कोई हुआ है और न भविष्य में होगा ही (सर्वज्ञ श्रुति को तो भूत भविष्य सबके लिये ज्ञान है ।) वे श्री राम जी सबकी सदैव एवं सर्वथा

प्रियेषु धाम सु कामः । प्रीतियुक्त सब सदिच्छाओं को पूर्ण करते हैं ॥२०७॥

श्री अयोध्या जी का वर्णन वेद के जिन मन्त्र में है उन मन्त्रों की टीका वेदोपनिषद्भाष्यकार 'पंडितराज' स्वामी श्री भगवदाचार्य जी महराज ने "अथर्व वेद में अयोध्या" शीर्षक लेख से 'तत्वदर्शी' पत्र में किया था । पश्चात् वह लेख केनोपनिषत् के भगवद्भाष्य के अन्त में भी प्रकाशित हुआ ।

पूज्य स्वामी जी से आज्ञा लेकर मैं उसी लेख को मूल के सहित इस ग्रन्थ के अन्त में दिये देता हूँ ।

अथर्व वेद (संहिता भाग) दशम काण्ड प्रथम अनुवाद द्वितीय सूक्त के २८वें मन्त्र के उत्तरार्ध से इस प्रकरण का आरम्भ होता है ।—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २०८ ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २०९ ॥

(अथर्व १०।२।२८, २९)

इन दोनों का एक में ही अन्वय है अतः साथ ही अर्थ दिया जाता है—

यः	जो कोई
ब्रह्मणः पुरम्	ब्रह्म की अर्थात् परात्पर, परमेश्वर, परमात्मा जगदादिकारण, अचिन्त्य वैभव श्री सीतानाथ श्रीराम की पुरी को
वेद	जानता है उसे वह भगवान तथा भगवान के पार्षद सब ही लोग चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं। किस पुरी को जानने के लिये कहते हो ?
यस्याः पुरुषः उच्यते	जिस पुरी का पुरुष बोला जाता है = कहा जाता है अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम स्मरण किया जाता है उस पुरुष की पुरी को जानने के लिये श्रुति कह रही है।
यः ब्राह्मणः	जो कोई अनन्त शक्ति सम्पन्न सर्वव्यापक सर्वनियन्ता सर्व शेषी और सर्वाधार श्रीराम जी की
अमृतेन आवृताम्	अमृत अर्थात् मोक्षानन्द से परिपूर्ण
ताम् पुरम् वेद	उस अयोध्या पुरी को जानता है
तस्मै, ब्रह्म, च ब्राह्मा	उसके लिये साक्षात् भगवान और ब्रह्म सम्बन्धी अर्थात् भगवान् के हनुमान् सुग्रीव अंगद, मयन्द, सुषेण, द्विविद, दरीमुख, कुमुद, नील, जल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख इत्यादि प्रधान षोडश पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सब जीव मिलकर—
चक्षुः प्राणं प्रजाम्	उत्तम दर्शनशक्ति उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा सन्तान आदि
ददुः।	देते हैं। 'ददुः' इस भूत कालिक प्रयोग को देखकर घबड़ाना नहीं चाहिये। वेद की सब बातें अलौकिक ही होती हैं ॥२०६॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २१० ॥
(अथर्व १०।२।३०)

यस्याः, पुरुषः	जिस पुरी का परम पुरुष
उच्यते	कहा जा रहा है अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद शास्त्रों में किया जाता है और यहाँ भी २८वें मन्त्र के पूर्व के मन्त्रों से जिस पुरुष का निरूपण किया गया है उसे
ब्रह्मणः तां पुरम्	भगवान् श्रीराम की उस पुरी अयोध्या को
यः, वेद तम्	जो कोई जानता है, उस प्राणी को
चक्षुः	दर्शनशक्ति अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र तथा
प्राणः जरसः	शारीरिक और आत्मिक बल मृत्यु से
पुरा न जहाति ।	पूर्व निश्चय ही नहीं छोड़ते हैं ।

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्री राम की इस लोकस्थ उस पुरी का दर्शन करने वाला सब प्रकार से सुखी और पवित्र जीवन इस लोक में व्यतीत करता है। अर्थात् जिला फैजाबाद में जो श्रीराम की पुरी है वह भी उतनी ही पवित्र है जितनी कि परधाम की पुरी पवित्र है तथा यहाँ का भी वैसा ही माहात्म्य है जितना कि उस दिव्य लोकस्थ पुरी का है। अन्तर इतना ही है कि यहाँ की अयोध्या माधुर्य लीला धाम है और वहाँ की भोग-ऐश्वर्य-लीला धाम है ॥ २१० ॥

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ २११ ॥
(अथर्व १०।२।३१)

इस मन्त्र का अर्थ जानने से प्रथम श्री अयोध्या जी का स्वरूप जान लेना चाहिये। भगवान् श्रीराम जी की अयोध्या पुरी के चारों ओर कनक प्राकार है। यह अष्टम चक्र है। इसी को अष्टमावरण कहते हैं। इस चक्र के पश्चात् सप्तम चक्र अर्थात् सप्तमावरण है। इसी में अनेक रत्नों से जटित घाटवाली श्री सरयू जी नित्य विहार करतीं हैं। इसके बाद षष्ठ चक्र अर्थात्

षष्ठावरण हैं। इसी आवरण में भगवान् का परमप्रिय प्रमोद बन है। प्रमोद बन की चारों दिशाओं में चार पर्वत हैं। पूर्व दिशा में शृङ्गारपर्वत, दक्षिण दिशा में मणिपर्वत, पश्चिम दिशा में लीलापर्वत और उत्तर दिशा में मुक्ता पर्वत है। इसी प्रमोद बन में शृङ्गार बन, बिहार बन, तमाल बन, रसाल वन, चम्पक बन, चन्दन बन, पारिजात बन, अशोक बन, विचित्र बन, कदम्ब बन, काम बन, और नागेश्वर बन ये द्वादश बन हैं। इसी बन में प्रतिक्षण सर्व ऋतु सर्व रागिणियाँ निवास करती हैं। इसके पश्चात् पञ्चम चक्र अर्थात् पञ्चमावरण है, इसी आवरण में मिथिलापुरी चित्रकूट, वृन्दाबन, महावैकुण्ठ वा मूलवैकुण्ठ इत्यादि विराजमान हैं। इसके पश्चात् चतुर्थ चक्र अर्थात् चतुर्थावरण है। इसी में महाविष्णु लोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूम पुरुषलोक, महाब्रह्म लोक और शम्भु लोक हैं। इसी के भीतर भगवान् भिन्न-भिन्न अवतार लेकर भिन्न-भिन्न लीलायें करते हैं। अतः सर्वलीला लोक इसी आवरण में विराजमान हैं। इसके पश्चात् तृतीय चक्र अर्थात् तृतीयावरण है। इसी आवरण में भगवान् का मानसिक ध्यान करने वाले योगी और ज्ञानी जन निवास करते हैं। इसके पश्चात् द्वितीयावरण है। इसमें वेद, उपवेद, शास्त्र पुराण, उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, इनके साधन, काल, कर्म, गुण इत्यादि सब देहधारी होकर निवास करते हैं। इसके पश्चात् प्रथमावरण है। इस आवरण में महाशिव, महाब्रह्मा, महेन्द्र, महावरुण, कुबेर, धर्मराज, दिग्पाल महासूर्य महाचन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किन्नर, विद्याधर, सिद्ध, चारण और अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशिता, वशिता, अवस्यति अर्थात् यथेष्ट सुखावाप्ति ये आठ सिद्धियाँ अथवा अनूर्मित्व, दूरश्रवण दूरदर्शन, मनोजव, कामरूप, परकाय प्रवेश, स्वच्छन्द मृत्यु, देव सहक्रीड़ा, सङ्कल्प सिद्धि और आज्ञाऽप्रतिघात ये दश सिद्धियाँ अथवा त्रिकालज्ञता, अद्वन्द्वता, परचित्ताभिज्ञता, अग्न्यर्काम्बुविष-प्रतिष्टभ और पराजय करना ये ५ सिद्धियाँ तथा पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्ब (या बर्ष) ये नव निद्धियाँ निवास करती हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में अयोध्या के सप्त आवरणों का ही उल्लेख है। उसमें और इसमें कुछ विरोध नहीं है। काञ्चन प्राकार जो अयोध्या के चारों ओर अव्यवहित रूप से विद्यमान है उसे ले लेने से आठ आवरण होते हैं उनके छोड़ देने से सात ही रहते हैं छोड़ने में हेतु यह है कि उस आवरण में श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त और कोई लोक नहीं है और अन्य आवरणों में अन्य लोक आदि बसे हुए हैं उस काञ्चन प्राकार को ग्रहण करने में हेतु यह है कि वह भी स्वरूपतः एक आवरण है। इसलिये कुछ विरोध नहीं है। कहीं कहीं भूमि, जल, अनल, वायु, नभ, त्रिप्रकारक अहङ्कार और महत्तत्व इनको ही सप्तावरण मान लिया है। यह श्री अयोध्या जी का वर्णन संक्षेप में किया गया है। इतने से प्रस्तुत मन्त्र का अर्थ सुगमता से अवगत हो जावेगा।

ब्रह्म की उस पुरी का नाम और स्वरूप अवगत हो जावेगा।

पूः अयोध्या	वह पुरी अयोध्या जी है, वह कैसी पुरी है?
अष्ट चक्रा	आठ चक्रों अर्थात् आवरणों वाली है। अर्थात् जिसमें आठ आवरण हैं।
नवद्वारा	जिसमें प्रधान नव द्वार हैं। तथा जो
देवानाम्	दिव्य गुण विशिष्ट, भक्ति प्रपत्ति सम्पन्न, यम—नियमादिमान, परम भागवत चेतनों से "सेव्याइति शेषः" = सेवनीय है।
तस्याम् स्वर्गः	उस अयोध्या पुरी में बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर
ज्योतिषा आवृतः	प्रकाश पुंज से आच्छादित
हिरण्ययः कोशः।	सुवर्णमय मंडप है।

ऐसा ही वर्णन भार्गव पुराण में भी आया है—

'त्रिपाद्विभूतिर्वैकुंठे विरजायाः परे तटे।
या देवानां पूरयोध्या ह्यमृतेनावृता पुरी॥

श्री तुलसीकृत रामायण की टीका में श्री रामचरण दास जी ने साम वेद की एक तैत्तिरीय श्रुति लिखी है वह भी इसी अथर्व वेद के मन्त्र के समान ही है यथा—

"देवानां पूरयोध्या तस्यां हिरण्मयः कोशः
स्वर्गोलोको ज्योतिषावृतो यो वै तां ब्रह्मणो
वेदामृतेनावृतां पुरीं तस्मै ब्रह्म च ब्रह्मा च आयुः
कीर्तिं प्रजां ददुः ॥"

अथर्व वेद के मन्त्र की व्याख्या समझ जाने के पश्चात् इस श्रुति का अर्थ अत्यन्त सरल हो जाता है अतः इसका अर्थ नहीं लिखा है ॥२११॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रि प्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्म विदो विदुः ॥२१२॥

तस्मिन् हिरण्यये कोशे	उस विशाल सुवर्ण मय मंडप में
तस्मिन् आत्मन्वत्	उसके अर्थात् उस मण्डप के आत्मा के समान
यद् यक्षम्	जो पूजनीय देव विराज मान है
तत् ब्रह्मविदः	उसी को ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान जन
विदुः ।	जानते हैं । अथवा 'ब्रह्मविदुः' में दो पद है 'ब्रह्म' और 'विदुः' । तबअर्थ यह हुआ कि
विदः तत्	विद्वान् जन, उसी यक्ष को उसी परमोपास्य देव को
ब्रह्म विदुः	परात्पर सनातन महापुरुष, जानते हैं । जिस कोश में वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है ?
त्र्यरे	उसमें तीन अरे लगे हुये हैं अर्थात् तीन अरों पर वह मंडप बना हुआ है । तथा
त्रिप्रतिष्ठिते ।	तीनों लोकों में वह प्रतिष्ठित है । इस मंत्र में जो 'तस्मिन्' पद आया हुआ है वह षष्ठी के अर्थ में है । इसीलिये मैंने उसका अर्थ 'उसके' किया है ।

इस मन्त्र में स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्या के मध्य में जो सुवर्णमय मणिमंडप है उसमें जो देव विराजमान हैं, उन्हीं को विद्वान लोग ब्रह्म कहते हैं । अयोध्या के मणिमंडप में भगवान् श्री राम जी के अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है अतः भगवान श्री राम जी ही परब्रह्म हैं । इसी

अर्थ को विशद करने के लिये मैं एक और श्रुति को यहाँ उद्धृत करता हूँ। इसे भी श्री रामचरण दास स्वामी जी ने ही अपनी रामायण टीका में उद्धृत की है वह यह है—

"याऽयोध्या पुरी सा सर्व वैकुंठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्य रत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहार स्थलमस्ति।"

इसका भावार्थ यह है कि 'जो अयोध्या पुरी है वह सर्व वैकुंठों का मूल आधार है। साम्प्रदायिकों ने अनन्त वैकुंठों का वर्णन किया है। उनमें से से ५ को प्रधान माना है। वे पांच ये हैं—

वैकुंठं पंच विख्यातं क्षीराब्धिं च रमाव्ययम्।
कारणं महाबैकुंठं पंचमं विरजापरम्॥

अर्थात् क्षीरसागर वैकुंठ, रमा वैकुंठ, कारण वैकुंठ, महा वैकुंठ और विरजापर अर्थात् आदि वैकुंठ। इन पाँचों वैकुंठों का वही मूलाधार है। यदि आदि वैकुंठ भी साकेत लोक का ही नाम हो तो वह आदि वैकुंठ अर्थात् श्री अयोध्या जी शेष चार प्रधान वैकुंठों तथा अन्य अनन्त वैकुंठों का आधारी भूता हैं। वह मूल प्रकृति से परे अखंड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजा के दूसरे पार में स्थित है, दिव्य रत्नजटित मंडप वाली है। उसी अयोध्या में श्री सीता राम जी की नित्य विहार भूमि है॥ २१२॥

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥२१३॥

(अथर्व० २।१०।३३)

ब्रह्म	सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीराम जी
पुरम्	उसी श्री अयोध्या पुरी में
आविवेश	प्रविष्ट है अर्थात् विराजमान हैं। वह पुरी कैसी है?
प्रभ्राजमानाम्	अत्यन्त प्रकाश मयी है। पुनः वह कैसी है?

हरिणीम्	मन को हरण करने वाली है अथवा सर्व पापों का आत्यंतिक नाश करने वाली है। पुनः वह कैसी है?
यशसा-संपरीवृताम्	अनन्त कीर्ति से युक्त है। पुनः वह पुरी कैसी है?
अपराजिताम्।	सर्व पुरियों में श्रेष्ठ है अर्थात् जिसकी तुलना कोई पुरी नहीं कर सकती है।

अथर्व बेद का प्रथम अनुवाक् यहाँ ही पूर्ण हो जाता है। इस अनुवाक के अन्त में इन साढ़े पांच मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से श्री अयोध्या जी का वर्णन किया गया है। इन मन्त्रों के शब्दों में व्याख्याताओं को अपनी ओर से कुछ मिलाने की आवश्यकता नहीं है। श्री अयोध्या जी के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरी का इतना स्पष्ट और सुन्दर साम्प्रदायिक वर्णन मन्त्र संहितायों में नहीं है॥ २१३॥

श्री भगवन्नाम

१—कस्यनूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम
(ऋ० १।२४।१)

प्रश्न है कि—अमरत्व धारण करने वाले किस देवता के कितने सुन्दर नामों को स्वीकार अर्थात् जप कीर्तन आदि करें ? अगले मन्त्र में उत्तर है कि—

२—अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामाहे चारु देवस्य नाम
(ऋ० १।२४।२)

अमरत्व धारण करने वाले देवताओं में सर्व श्रेष्ठ अग्रणी देवता ब्रह्म—परमात्मा का सुन्दर नाम स्वीकार अर्थात् जप कीर्तन आदि करैं। ('णी प्रापणे' अग्रेनयत्यग्निः = ब्रह्म)

३—नामानिचिद्दधिरे यज्ञियानि....। (ऋ० १।७२।३)

परमात्मा के यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले श्रेष्ठतम नामों को धारण अर्थात् जप कीर्तनादि किया।

४—नामानिते शतक्रतो ! विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। (ऋ० ३।३७।३)

हे सब यज्ञों के आराधनीय परमात्मन् ! परापश्यन्ती मध्यमा बैखरी आदि सम्पूर्ण वाणियों के द्वारा आपके नाम को हम लोग गान करते हैं।

५—भूरिनाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषायासे।
(ऋ० ५।३।१०)

जगत्पिता वासुदेव परमात्मा वन्दनीय होकर अनेकों नाम धारण करता है। अतः हे सर्व व्यापक परमात्मन् वासुदेव यदि वे आपके अनंत नाम आपको प्रसन्न करते हों तो हम उन्हीं नामों का सेवन करैं।

६—मर्त्या अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। (ऋ० ८।११।५)

मरण धर्म वाले हम मनुष्य गण, मरण धर्म से रहित आपके अनेक नामों का आदर अर्थात् जप कीर्तनादि करते हैं।

७—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानि रोरुवत्।
सीदन्योनौ वनेष्वा॥ (ऋ० ६।६५।१६)

जङ्गलों—एकांत में बैठकर, सकल जगत्कारण परमात्मा में चित्त लगा-कर अत्यन्त तेजस्वी-इन्द्रियजयी होकर तुम भगवन्नामों को रो रो कर उच्चारण करके ऊर्ध्वगति को प्राप्त करो। (साम संस्कार भाष्य से)

८—दधानानाम यज्ञियम्। (ऋ० १।६।४)

९—भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तं अमृत मेवैः।
(ऋ० १।६।८)

१०—नाम स्वधावन्! गुह्यंविभर्षि। (ऋ० ५।३।१)

११—यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्।
(ऋ० ५।३।२)

१२—प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि। (ऋ०)

१३—अस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन। (ऋ०)

इस परमात्मा के नाम का भावार्थ जानते हुये अर्थात् अर्थानुसंधान करते हुये कीर्तन जप करो।

१४—चत्वारिते असुर्याणि नाम अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति।
त्वमंग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवन् चकर्थ॥
(ऋ० १०।५४।४)

मघवन्=हे धनपते! लक्ष्मी-सीतानाथ श्री राम जी। महिषस्य ते=परम बलशाली आपके जितने भी। असुरकर्माणि अदाभ्यानि=राक्षस वधादि गुण कर्म वाले मधुसूदन, रावणारि, खरारि, कंसारि आदि। नामसन्ति=नाम हैं तानि विश्वानि=उस सम्पूर्ण नामों में। येभिः त्वम् चकर्थ=जिस किसी भी नाम से आप पुकारे जाते जप स्मरण किये जाते हैं। अङ्ग! तानि त्वम्=हे प्राण प्रिय प्रभो! उन सभी नामों से आप। चत्वारि वित्से=चारों फल प्राप्त करा देते हैं।

१५—नाम नाम्ना यो हवीति पुरा सूर्यात् पुरोषसः। यदजः प्रथमं सं बभूव सह तत् स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्।
(अथर्व १०।७।३१)

सूर्यास्त से पूर्व अर्थात् समस्त दिन, उषा काल से पूर्व अर्थात् समस्त रात्रि, ईश्वर के नाम का उसकी महिमा के साथ जो कोई भक्ति पूर्वक उच्चारण करता जपता है कीर्तन करता है वह नाम जापक पुरुष उस आत्मराज्य आत्मानन्द को प्राप्त करता है जों आत्मानन्द सभी आनन्दों से प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ है।

१६—नामानिते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे। (अथर्व २०।१६।३)

१८—इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयः। (अथर्व वेद)

ऋषिगण सर्वैश्वर्यशाली परमात्मा का नाम ग्रहण करते-जपते हैं।

१७—शिवोनामासि० (शु० यजु० ३।६३)

हे परमात्मन् आप कल्याण प्रद नाम वाले हैं।

१९—यत्ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। (शु० यजु० ५।९)

आपके जितने पूज्य-यज्ञीय नाम हैं वे सब सर्वोत्कृष्ट हैं। उन नामों से आपको धारण करता = भजता हूँ।

२०—यो देवानां नाम धा एक एव। (शु० यजु० १७।२७)

अनेक नामों को धारण करने वाला जो ईश्वर सम्पूर्ण देवताओं में एक ही = अद्वितीय है। (उसी के नाम का जप कीर्तनादि करना चाहिये।)

२१—घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः।
(शु० यजु० १७।८९)

सर्व पोषक परमात्मा के जितने गूढ़ नाम हैं वे सब परम भागवतों की जिह्वा पर अमृत के भी सारभूत के तुल्य विराजित रहते हैं अर्थात् परम भागवत लोग भगवन्नाम को अमृत से भी बढ़कर समझते हैं।

२२—वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्त अस्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः।
(शु० यजु० १७।९०)

इस यज्ञ में हम सब परमात्मा के नाम को कहते अर्थात् जपते कीर्तन कथन करते हैं और नमस्कार पूर्वक हृदय में धारण करते हैं।

२३—न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। शु० य ३२।३

उस परमात्मा का कोई भी प्रतिमानभूत जोड़ीदार नहीं है जिसके नाम का यश महान् सर्वोत्कृष्ट है।

२४—अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभिद्रोणानि रोरुवत् सीदन्योनौ वनेष्वा।
(साम पू० ५।४।७)

२५—दधानानाम यज्ञियम् (साम उत्त० ४।२।८)

२६—सदा ते नाम स्वयशो विवच्मि। (साम)

२७—यस्य वाक् ततिर्नामानि दामानि। (साम)

२८—पूयमानोभ्यर्षि गुह्यं चारुनाम। (साम)

२९—नाम वै ग्रहम् नाम्नाहीदं सर्वं गृहीतं किमुतद्यन्नाम ग्रहो बहूनां वै नामानि विद्माथ नस्तेन तेन गृहीता भवन्ति॥
(शतपथ ब्राह्मण ४।६।५।३)

३०—नाम कृत्वाथैनमुपतिष्ठते। (श० ब्रा० ६।५।१।५)

श्री मते रामानन्दय नमः

लेखक की गुरु परम्परा

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम ।
अस्मादाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ।। १ ।।
परधाम्नि स्थितो रामः पुंडरीकायतेक्षणः ।
सेवया परया जुष्टो जानक्यै तारकं ददौ ।। २ ।।
श्रियः श्रीरपि लोकानां दुःखोद्धरणहेतवे ।
हनुमते ददौ मन्त्रं सदा रामाङ्घ्रिसेविने ।। ३ ।।
ततस्तु ब्रह्मणो प्राप्तो मुह्यमानेन मायया ।
कल्पान्तरे तु रामो वै ब्रह्मणे दत्तवानिमम् ।। ४ ।।
मन्त्रराजजपं कृत्वा धाता निर्मातृतां गतः ।
त्रयीसारमिमं धातुर्बशिष्ठो लब्धवान् परम् ।। ५ ।।
पराशरो बशिष्ठाच्च सर्वसंस्कारसंयुतम् ।
मन्त्रराजपरं लब्ध्वा कृतकृत्यो बभूव ह ।। ६ ।।
पराशरस्य सत्पुत्रो व्यासः सत्यवतीसुतः ।
पितुः षडक्षरं लब्ध्वा चक्रे वेदोपबृंहणम् ।। ७ ।।
व्यासोपि बहुशिष्येषु मन्वानः शुभयोग्यताम ।
परमहंसवर्य्याय शुकदेवाय दत्तवान् ।। ८ ।।
शुकदेवकृपापात्रो ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थितः ।
नरोत्तमस्तु तच्छिष्यो निर्वाणपदवीं गतः ।। ९ ।।
स चापि परमाचार्यो गङ्गाधराय सूरये ।
मन्त्राणां परमं तत्वं राममन्त्रं प्रदत्तवान् ।। १० ।।
गङ्गाधरात्सदाचार्यस्ततो रामेश्वरो यतिः ।
द्वारानन्दस्ततो लब्ध्वा परब्रह्मरतोऽभवत् ।। ११ ।।

देवानन्दस्तु तच्छिष्यः श्यामानन्दस्ततोऽग्रहीत् ।
तत्सेवया श्रुतानन्दश्चिदानन्दस्ततोऽभवत् ॥ १२ ॥
पूर्णानन्दस्ततो लब्ध्वा श्रियानन्दाय दत्तवान् ।
हर्यानन्दो महायोगी श्रियानन्दाङ्घ्रिसेवकः ॥ १३ ॥
हर्यानन्दस्य शिष्यो हि राघवानन्द इत्यसौ ।
यस्य वै शिष्यतां प्राप्तो रामानन्दः स्वयं हरिः ॥ १४ ॥
रामानन्दस्य शिष्योभूदनन्तानन्द नामकः ।
तस्यशिष्यः कृष्णदासः पयोहारी प्रतापवान् ॥ १५ ॥
अग्रदासस्ततस्तस्य रामादिर्भगवानभूत् ।
तस्य लक्ष्मणदासोऽभून्मस्तरामस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥
लक्ष्मीरामश्च तच्छिष्यो नन्दलालस्ततोऽभवत् ।
ततश्चरणदासो भूद्धरिदासस्ततः परम् ।
तस्यरामप्रसादश्च मन्त्रानुष्ठानतत्परः ॥ १७ ॥
शिष्यो रामप्रसादस्य रामनेवाजदासकः ।
माणिकरामदासस्तु तस्य शिष्यो महामना ॥ १८ ॥
सदाराम सुदासस्तु तस्य शिष्यो हि भव्यधीः ।
दयाशीलः पराभक्ती रामायण्युपनामकः ॥ १९ ॥
रामदयालदासस्तु तस्य शिस्यो महातपी ।
फलाहारीति विख्यातो लोके खाकी च विश्रुतः ॥ २० ॥
श्री मद्धहरिनामदासस्तस्य शिष्यो महामतिः ।
त्यक्त्वा महान्तपदवीं गत्वा श्रीमणिपर्वते ॥ २१ ॥
वरविश्रामबागाख्या सुभगा बाटिका कृता ।
जानकीजीवनं तत्र स्थापित्वा सुप्रेमतः ॥ २२ ॥
अयोध्यावासरसिकः रामसेवन तत्परः ।
श्रीमद्धरिनामदासस्य कृपावात्सल्य भाजनः ॥ २३ ॥
कुत्सां च मारयति यो वै श्रीरामः करुणाकरः ।
दासोऽहं ब्रह्मणस्तस्य ह्यानन्दगतिकः सदा ॥ २४ ॥

१—भगवान् श्रीराम जी
२—भगवती श्री सीता जी
३—श्री हनुमान जी
४—श्री ब्रह्मा जी
५—श्री बशिष्ठ जी
६—श्री पराशर जी
७—श्री व्यास जी
८—श्री शुकदेव जी
९—श्री पुरुषोत्तमा चार्य जी
१०—श्री गङ्गाधराचार्य जी
११—श्री सदाचार्य जी
१२—श्री रामेश्वराचार्य जी
१३—श्री द्वारानन्द जी
१४—श्री देवानन्द जी
१५—श्री श्यामानन्द जी
१६—श्री श्रुतानन्द जी
१७—श्री श्री चिदानन्द जी
१८—श्री पूर्णानन्द जी
१९—श्री श्रियानन्द जी
२०—हर्य्यानन्द जी
२१—श्री राघवानन्द जी
२२—भगवान् श्री रामानन्दाचार्यजी
२३—श्री अनन्तानन्द जी
२४—श्री कृष्णदास जी पयोहारी
२५—श्री अग्रदास जी (रेवासा)
२६—श्री रामभगवानदास जी
२७—श्री लक्ष्मण दास जी
२८—श्री मस्तराम जी
२९—श्री लक्ष्मीराम दास जी
३०—श्री नन्दलाल दास जी
३१—श्री चरणदास जी (यधोरामजी)
३२—श्री हरिदास जी (सन्डीला)
३३—श्री रामप्रसादाचार्य जी (विन्द्वाचार्य)
३४—श्री रामनेवाज दास जी (बगही खैरा)
३५—श्री मणिकराम दास जी
३६—श्री सदाराम दास जी (रामायणी जी की कुटिया प्रमोदबन श्री अयोध्या जी)
३७—श्री रामदयाल दास जी फलाहारी

३८—अनन्त श्री स्वामी हरिनाम दास जी महाराज वरविश्राम बाग मणि पर्वत श्री अयोध्या जी

३९—पं० श्री रामकुमारदास जी रामायणी, वेदान्त भूषण, 'साहित्यरत्न' संस्थापक श्री राम ग्रन्थागम् वरविश्रामबाग, मणिपर्वत श्री अयोध्या जी।

मन्त्रानुक्रमणिका

जिन मन्त्रों पर * का चिन्ह है उन मन्त्रों में रामायण के विशेष पात्रों का नाम आदि है।